सुलभ-साहित्य-माला—१८

कविरत्न सत्यनारायणजी

की

जीवनी

लेखक

बनारसीदास चतुर्वेदी

शक १८८४

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण १००० प्रतियाँ सं० १९८३ वि०
द्वितीय संस्करण ११०० प्रतियाँ

मूल्य : चार रुपए

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

"जनम - मरन जग के रहस, जटिल गहन गम्भीर।
दुहुँ बिच जीवन उच्च भवि. विविध कुतूहल भीर॥"

Birth is a mystery death is a mystery.
Between them lies the tableland of life.

श्रीमान् महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़, बड़ोदा-नरेश

प्रकाशकीय

बड़ौदा नरेश महाराज सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर जो पाँच सहस्र रुपये साहित्य-निर्माण के लिए सम्मेलन को प्रदान किए थे उसी निधि से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" के अन्तर्गत यह पुस्तक १८ वाँ पुष्प है। इसका प्रथम संस्करण १९८३ वि० में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि प्रकाशित प्रतियाँ कुछ समय बाद ही बिक गई थीं किन्तु पुनर्मुद्रण का सुयोग इतने बिलंब के बाद अब आया है।

कविरत्न सत्यनारायण जी अल्पायु ही मे दिवंगत हो गए किन्तु अल्प-काल मे उन्होने जो कुछ लिखा है, वह व्रजभाषा और हिन्दी साहित्य के लिए एक अनुपम देन है। कविरत्न जी रससिद्ध सुकृती कवि थे, उनकी वाणी मे अतीव माधुर्य और उनके स्वभाव में विचित्र भोलापन था। उनकी कविता आधुनिक व्रजभाषा-काव्य की सीमा-रेखा बनी हुई है। ऐसे कवि का यह चरित निःसन्देह प्रेरक होगा।

मन्त्री

विषय-सूची

भूमिका भाग

अन्तरंग भाग

ब्रज-कोकिल

स्वर्गीय सत्यनारायण कविरत्न

बा ब्रज-कोकिल की बानी।
रसिक जनन की हिय हुलसावनि, काव्य-कुंज की रानी।
बा ब्रज-कोकिल की बानी।
तिलक, रबीन्द्र, गोखले, गाँधी मालवीय ने मानी,
सुनि सरोजिनी ने सुख पायो जन-जनता ने जानी—
बा ब्रज-कोकिल की बानी।
जनम भूमि-गुन-गरिमा गाई, औ, दुरदसा बखानी,
पराधीनता त्रास ह्रास की, मुक्तिमथी मति ठानी—
बा ब्रज-कोकिल की बानी।
गूँज गयी कविता-कानन मे, कल काकलि कल्यानी,
सरल, सुबोध, सफल सुख दायिनि सुन्दर सबरससानी—
बा ब्रज-कोकिल की बानी।
कीरति छाँड़ि सिधारो सुरपुर, कवि गायक, गुरु, ज्ञानी,
सेस रह गयी सत्यनरायन की अब अमर कहानी—
बा ब्रज-कोकिल की बानी।

शंकर सदन
आगरा

—हरिशंकर शर्मा

कविरत्न स्व० सत्यनारायण

सन् १९१० की बात है, गर्मी का मौसम था, कविरत्न पं० सत्यनारायण जी अपने अलीगढ निवासी साहित्य-प्रेमी मित्र स्व० छेदालाल शर्मा के साथ, मेरे पिता पं० नाथूराम शकर शर्मा से मिलने हरदुआगज पहुँचे। हरदुआगज अलीगढ से सात मील दूर पक्की सड़क पर है। पिताजी प० सत्यनारायणजी की कविताएँ पढ चुके थे। वे उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। कविरत्नजी ने मधुर स्वर से अपनी कुछ कविताएँ भी सुनाई, सुनकर अनेक श्रोता एकत्र हो गये, पिताजी ने भी अपनी कविताएँ सुनाईं। मै उस समय १७-१८ वर्ष का नवयुवक था। पिताजी के प्रेम पूर्ण आग्रह से कविरत्न जी और उनके साथी सज्जन ने भोजन भी हमारे घर पर ही किया। तीन-चार घंटे हरदुआगज ठहर कर उपर्युक्त दोनों महानुभाव अलीगढ वापस चले गये।

सन् १९१३ ई० मे, कविरत्नजी से आगरा में मेरी फिर मुलाक़ात हुई। उन दिनो पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी 'आर्य्यमित्र' के सम्पादक थे। मै उन्ही के यहाँ ठहरा था। शाम को नित्य पं० बदरीनाथ भट्ट, पं० श्री कृष्णदत्त पालीवाल, पं० ठाकुरदत्त शर्मा (भूतपूर्व एक्ज़ीक्यूटिव आफिसर, बनारस नगरपालिका), अध्यापक रामरत्नजी, पं० सत्यनारायणजी कविरत्न, आदि वाजपेयीजी के कार्यालय (बागमुजफ्फर खाँ महल्ला) में एकत्र हो साहित्य-चर्चा किया करते थे। वहाँ इन सब सज्जनों से अनायास ही मेरी मुलाकात हो गयी। 'ये शंकरजी के पुत्र हैं' यह कहकर वाजपेयीजी सब साहित्यिको से मेरा परिचय कराते थे। फिर तो मैं अनेक बार आगरा आया। ठहरा तो अन्य कृपालुओं के यहाँ, परन्तु वाजपेयीजी के यहाँ साहित्यिक सज्जनों से अवश्य मिला। इस प्रकार कविरत्नजी तथा अन्य महानुभावो से मेरा पर्याप्त परिचय हो गया था।

सन् १९१४ की बात है। मै बुलन्दशहर मे, उत्तरप्रदेशीय आर्य्य प्रतिनिधि सभा का उपमन्त्री था। वहाँ नागरी प्रचारिणी सभा स्थापित करने मे, अन्य साथियों के साथ मेरा भी पूर्ण सहयोग था। नागरी प्रचारिणी सभा का प्रथम वार्षिकोत्सव मनाना निश्चित हुआ। विद्वानो को बुलाने का कार्य मुझे सोपा गया। मैंने आचार्य्य प्रवर पं० पद्मसिंह शर्मा, प्रो० रामदास गौड़, साहित्याचार्य्य पं० शालग्राम शास्त्री और कविरत्न सत्यनारायणजी को पधारने के लिये लिखा। सबकी स्वीकृति आगयी। जिन्होंने जिस तारीख को जिस ट्रेन से आने को लिखा, वे उसी दिन और उसी ट्रेन से पधारे। सबके स्वागतार्थ निश्चित ट्रेन पर सवारी लेकर हम लोग पहुँचे और बड़े आदर से उन्हे लाये। कविरत्नजी ने जो ट्रेन लिखी थी, उससे वे नही आए, हम लोग स्टेशन से निराश लौटे और खयाल किया कि वे अब नही आयेगें!

उसी दिन रात्रि के समय, जब उत्सव में प्रो० रामदासजी गौड़ का सचित्र भाषण हो रहा था और आचार्य्य पद्मसिंह शर्मा अध्यक्ष-आसन पर विराजमान थे, एक वकील मित्र ने मंच पर आकर मुझसे कहा "अरे भाई, एक गवार गले में दुपट्टा और कन्धे पर खुर्जी डाले 'हरिशंकर'-'हरिशंकर' बकता फिरता है। मैं उसे फटकार कर आया हूँ कि तुम्हें किसी का नाम लेने की भी तमीज़ नहीं है।" यह सुनकर मैं ताड़ गया और तुरन्त सब साथियो से कहा कि लो मित्रो, कविरत्न सत्यनारायणजी आगये! ज्यों ही मैं कविरत्नजी के पास पहुँचा, वे बड़े प्रेम से गले मिले और बोले—"भैया हरीशंकर, कल मैं न आय पायो, माफ़ करिओ।" मंच पर आते ही सब आमन्त्रित विद्वान् सत्यनारायणजी से गले मिले। प्रो० रामदास गौड़ भी अपना भाषण क्षण भर के लिये बन्दकर, कविरत्नजी से चिपट गये। यह देखकर कचेसर कोठी के मैदान में हो रही, भरी सभा मे बैठे कई सहस्र श्रोताओ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कहाँ का ग्रामीण आगया, जिसका बड़े-बड़े विद्वान् इस प्रकार स्वागत-सत्कार कर रहे है! उस समय सब को बताया गया कि सरलता की मूर्ति कविरत्न श्री पं० सत्यनारायणजी आगरा

से आगये हैं । गौड़जी के व्याख्यान के बाद उनका कविता-पाठ होगा । थोड़ी देर बाद कविरत्नजी की कविता सुनकर श्रोतागण दग हो गये और वाह्-वाह् करने लगे । दो दिन मे बुलन्दशहर और उसके समोपवर्ती स्थानों मे सत्यनारायणजी की धूम मच गयी । सैकड़ों श्रोताओ ने जगह्-जगह् उनका यशोगान किया । ये एक दिन और रोक लिये गये । उस दिन निजी गोष्ठी मे उनका सफल कविता-पाठ और भाषण हुआ । फिर उन्हे स्टेशन पर विदा करने के लिये, मै और लगभग पचास सज्जन और गये ।

सन् १९१६ की जुलाई मे, मै 'आर्य्यमित्र' का सम्पादक होकर आगरा आया, तब तो कविरत्नजी से बहुत ही घनिष्ठता हो गयी । वे सप्ताह मे दो-तीन बार मेरे स्थान पर लोहामडी आते और खूब बात-चीत करते थे । 'चौ भय्या हरीशकर का है रयो है,' यह उनका प ला बोल होता था । कभी-कभी प० बदरीनाथ भट्ट के साथ मै भी धाँधूपुरा (सत्यनारायण जी का निवास-स्थान) जाता था । वैसे कविरत्नजी अधिकतर श्री पं० अयोध्याप्रसाद पाठक, बी० ए०, एल० एल० बी० वकील के यहाँ गुड़ की मण्डी महल्ले मे मिलते थे । पं० सत्यनारायणजी से मैने 'आर्य्यमित्र' के लिये अनेक कविताएँ लिखाईं जो 'भक्त की भावना' शीर्षक और 'भक्त' के नाम से प्रकाशित हुईं । उस बार मै दिसम्बर १९१९ तक 'आर्य्यमित्र' का सम्पादक रहा । फिर अस्वस्थ हो जाने के कारण पूज्य पिताजी के आदेशानुसार इस्तीफा देकर, अपने घर हरदुआगज चला गया । सन् १९१८ ई० मे जिस दिन कविरत्नजी का देहान्त हुआ मै अपने घर—हरदुआगंज से भी 'आर्य्यमित्र' का सम्पादन कर रहा था, क्योंकि उन दिनों आगरा मे भयंकर प्लेग फैला हुआ था बहुत से लोग आगरा छोड़कर बाहर चले गये थे ।

शंकर सदन,
आगरा

—हरिशंकर शर्मा

द्वितीय संस्करण

कविरत्न सत्यनारायण जी के जीवन-चरित के द्वितीय सस्करण के प्रकाशित होने के अवसर पर हमे कुछ निवेदन करना है।

इसका प्रथम सस्करण सन् १९२६ मे छपा था और तब से लगाकर अब तक पिछले ३७ वर्षो मे हमारे चरित्र-चित्रण सम्बन्धी विचारो मे परिवर्तन हो चुका है, फिर भी इस संस्करण मे (जिसे पुनःमुद्रण कहना ही ठीक होगा) हमने कोई रद्दोबदल नही की। इसका मुख्य कारण यही है कि सत्यनारायण विषयक समस्त सामग्री, जो सम्मेलन मे सुरक्षित थी, खो गई है।

यद्यपि सत्यनारायण जी को अपने जीवन में अनेक दुर्घटनाओ का शिकार होना पड़ा, तथापि यह अन्तिम दुर्घटना सब से अधिक दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि इससे उनके यशःशरीर को भयंकर आघात पहुँचा है। उक्त सामग्री के अभाव मे जीवन-चरित मे आवश्यक सशोधन करना असम्भव हो गया!

आपाधापी और रीडरबाजी के इस युग में जब तक किसी हिन्दी लेखक को पाठ्य-पुस्तक-क्षेत्र मे जाने का अवसर नहीं मिलता, तब तक उसकी रचनाओं का विधिवत् प्रचार नहीं हो पाता। यह स्थिति वाछनीय नहीं, फिर भी सत्य है। स्वर्गीय अध्यापक रामरत्न जी के उद्योग से सत्यनारायण जी का प्रवेश विश्वविद्यालयो में हो गया था, पर कुछ दिनों बाद वे वहाँ से बहिष्कृत कर दिये गये। पाठ्यक्रम मे दूसरों की लगी लगाई पुस्तकों को निकलवा देने और अपनी पुस्तकों को रखवा देने के लिये जिन-जिन हथकण्डों का प्रयोग किया जाता है, उनकी चर्चा करने के लिये यहाँ स्थान नही।

पर बावजूद तमाम दुर्घटनाओ के सत्यनारायण जी अब भी जीवित हैं—कीर्तिर्यस्य स जीवति—और उनके मित्र तथा ब्रजभाषा के प्रेमी उन्हे कभी-कभी याद कर लेते हैं यद्यपि ऐसे लोगो की संख्या भी कम होती जा रही है। सत्यनारायण जी के अनन्य मित्र पाठक अयोध्याप्रसाद जी बहुत वर्ष पहले चल बसे थे और उनसे भी पूर्व आचार्य पं० पद्मसिंह जी शर्मा का स्वर्गवास हो गया। जिन-जिन महानुभावो ने इस पुस्तक के प्रथम सस्करण के समय हमे सहायता दी, उनमे से कितने ही नहीं रहे—यथा प० नन्दकुमार देव शर्मा, पं० श्रीधर पाठक, श्री रामप्रसाद अग्रवाल, श्री केदारनाथ भट्ट, श्री लोचनप्रसाद पाण्डे, श्री लक्ष्मीधर बाजपेयी, श्री देवी प्रसाद चतुर्वेदी इत्यादि। श्री ब्रजनाथ गोस्वामी का स्वर्गवास तो अभी कल ही हुआ है। फिर भी हमारे सौभाग्य से सत्यनारायण जी के अनेक मित्र और प्रेमी अब भी विद्यमान है, जैसे आयुर्वेदपचानन प० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, श्री बियोगी हरि, श्रद्धेय बाबू गुलाबराय जी, श्रीभगवतनारायण जी भार्गव संसद सदस्य, डाक्टर हरिशंकर शर्मा, श्री कृष्णदत्त जी पालीवाल, श्रीठाकुर प्रसाद जी शर्मा, श्री सूर्यनारायण जी अग्रवाल, श्रीयुत महेन्द्र जी तथा डाक्टर सत्येन्द्र। कविरत्न जी के सहपाठी और सबसे पुराने मित्र श्री हरप्रसाद जी बागची से अभी-अभी मिलना हुआ है।

सत्यनारायण जी कुलजमा ३८ वर्ष जीवित रहे। उनका जन्म २४ फर्वरी सन् १८८० को हुआ था और स्वर्गवास १५ अप्रैल १९१८ को। इस अल्पआयु मे भी उन्होंने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की—उत्तर-रामचरित तथा मालती-माधव के अनुवादों द्वारा और हृदय तरंग और देशभक्त होरेशस की रचना से, यदि उसी को चिरस्थायी बना दिया जाय तो उनकी कीर्ति की रक्षा हो सकती है। अगर हिन्दी साहित्य सम्मेलन उनके समस्त ग्रन्थों को प्रकाशित कर दे तो कुछ अशों में तो उस क्षति की पूर्ति हो ही सकती है, जो उक्त सामग्री के खो जाने से हुई है।

आधुनिक काल के ब्रजभाषा कवियों मे सत्यनारायण जी का नाम स्वर्गीय श्रीधर पाठक तथा कविवर रत्नाकर जी के बाद ही आता है,

पर अभागेपन की बात यह है कि स्वयं ब्रजभूमि ने उनका यथोचित सम्मान नही किया। धाँधूपुर मे उनका निवासस्थान जर्जर अवस्था मे पड़ा हुआ हमारी कृतघ्नता तथा प्रमाद की घोषणा निरन्तर कर रहा है !

अभी उस दिन आगरा कालेज की हिन्दी यूनियन के सेक्रेटरी, जो बी० ए० के छात्र है, हमारे यहाँ पधारे। जब हमने उनसे पूछा "क्या सत्यनारायण कविरत्न का नाम आपने सुना है ?" तो उन्होने उत्तर दिया.—"नाम तो सुना है, पर उनके कार्य के विषय मे हम कुछ भी नही जानते।" यह उस आगरे की बात है जिसकी सड़को को सत्यनारायण जी के चरणों से पवित्र होने का सौभाग्य सैकडो नही, सहस्रो बार प्राप्त हुआ था। अपने कवियो के विषय मे अज्ञान की इस पराकाष्ठा का एक दूसरा दृष्टान्त भी सुन लीजिये। स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक के जन्मस्थान जौधरी मे एक अमर प्राइमरी स्कूल है, जिसमे २७० छात्र पढते है और उनमे से किसी ने भी श्रीधर पाठक का नाम तक नही सुना !

इस अज्ञान को दूर करने का कोई न कोई उपाय होना ही चाहिये। क्या यह सम्भव नही कि प्रत्येक जनपद के स्कूलों में एक पुस्तिका ऐसी भी पढाई जावे, जिसमे आसपास के लेखको तथा कवियो का परिचय हो ? अपनी रूस यात्रा मे तुर्गनेव के जन्मस्थान ओरल मे हमने एक ऐसा सग्रहालय देखा था, जिसमें उस ज़िले के सभी मुख्य मुख्य लेखकों तथा कवियों के चित्र यथास्थान एक नकशे में चित्रित कर दिये गये थे।

इस जीवन चरित्र की लेखन-पद्धति के विषय में दो मत हो सकते हैं। प्राचीनतावादी लोग इसे भारतीय परम्परा के प्रतिकूल कह सकते है, जब कि प्रगतिशील व्यक्ति इसका समर्थन ही करेंगे। स्वर्गीय पं० अमरनाथ जी झा ने अपने लखनऊ के एक भाषण मे अंग्रेजी साहित्य के हिन्दी पर प्रभाव का जिक्र करते हुए इस जीवन-चरित्र का प्रशंसात्मक उल्लेख किया था।

पुस्तक की लेखन-पद्धति सदोष है, अथवा निर्दोष इसका फैसला विज्ञ पाठक अपनी अपनी रुचि के अनुसार स्वयं ही करेंगे, पर इस अवसर

पर इतना निवेदन कर देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि सत्यनारायण जी के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा के कारण मै उस सन्तुलन को कायम नही रख सका, जो एक निष्पक्ष लेखक के लिये अत्यन्त आवश्यक है। कविरत्न जी के असामयिक देहावसान से मेरे हृदय मे जो भाव उठे, मैंने उन्हे ज्यों का त्यों चित्रित कर दिया है। अन्तरात्मा के प्रति वफादारी किसी भी लेखक के लिये प्रधान गुण है, लोगों की सम्मति सर्वथा गौण। सत्यनारायण जी ने स्वप्न मे भी यह आशा या आशङ्का न की होगी कि कोई उनका जीवन-चरित लिखेगा, वे इतने भोलेभाले और विनम्र व्यक्ति थे। फिर भी कई वर्ष के परिश्रम के बाद उनका यह जीवन-चरित प्रस्तुत किया गया था। यदि इसमे उनके आकर्षक व्यक्तित्व की कुछ भी झाकी पाठकों को मिल सके तो मै अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा। बन्धुवर ज्योति प्रसाद मिश्र निर्मल जी को धन्यवाद देना हिमाकत होगी, क्योकि वे ३५-३६ वर्ष से हमारे इतने निकट है।

९९ नार्थ ऐवेन्यू, नई दिल्ली।
३०—१—६३

बनारसीदास चतुर्वेदी

पुनश्च:—

भाई हरिशङ्कर जी शर्मा का यह आदेश है कि मै उस परिश्रम का जिक्र भी न करूँ, जो उन्होंने इस संस्करण के संम्पादन और प्रूफ संशोधन मे किया है। अपने अग्रज की इस आज्ञा का अक्षरशः पालन करना मेरा कर्तव्य है।

दो फूल

प्रिय पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के रचे हुए अपने मित्र के इस साहित्यिक श्राद्ध के अवसर पर उनकी स्वर्गीय आत्मा के प्रति श्रद्धा के दो फूल मै भी अर्पित करना चाहता हूँ।

कविरत्न प० सत्यनारायणजी का जीवन आदि से अन्त तक, सवाह्याभ्यन्तर, अत्यन्त मधुर था। मधुरता ही उनके जीवन का रहस्य है। आगरे मे मेरा उनका तीन वर्ष तक घनिष्ठ सत्सग रहा। ऐसा एक दिन भी नही बीतता था कि, जब वह शहर मे आवें, और मेरे द्वार पर आकर मधुरता की आवाज न लगावे। चाहे जितनी जल्दी मे हो, दो मिनट अपने सम्भापण का सुख मुझे अवश्य दे जाते थे। उनका हृदय जितना कोमल था, उनके वचन और उनके कार्य भी उतने ही कोमल थे। तीन वर्ष के अन्दर मैंने उनको कभी क्रोधित होते हुए नही देखा। मेरा उनका मतभेद भी जब कभी उपस्थित होता, इतनी कोमलता से अपना रोप प्रकट करते कि उनके उस रोष में भी मैं रमणीयता का अनुभव करता था—उनके उस रूठने मे मुझे एक प्रकार का आनन्द आजाता था। उन्होने अपने इस छोटे जीवन मे आनन्द, मधुरता और कोमलता क्षण-भर के लिए भी नही छोड़ी। उनकी याद आते ही मुझे वेद का यह बचन याद आ जाता है:—

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूमासौ मधुसदृशः॥

इस बचन को भगवान ने उनके जीवन में स्वाभाविक ही चरितार्थ कर रक्खा था। उनकी मधुर मिलन की मूर्ति मित्रो की स्मृति से कभी न जायगी।

यदि रमणीयता ही कवित्व का लक्षण है, तो सत्यनारायणजी मूर्तिमान् कवित्व के अवतार थे। उनका बोलना-चालना, हँसना, सब कवितामय था। उनका कोई कार्य कविता से खाली नही था। ब्रजभाषा की कविता का तो कम से कम अभी कुछ दिन के लिए जब तक कोई दूसरा वैसा कवि पैदा न हो--उनसे अन्त हो गया। उनको "ब्रज-कोकिल" कहना सदैव शोभा देगा।

इस ब्रजकोकिल का यह सुन्दर चरित्र हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से प्रकाशित होना हिन्दी ससार के लिए सचमुच ही बड़े सौभाग्य की बात है। परमात्मा इसके लेखक को यश दे।

लक्ष्मीधर वाजपेयी

चार आँसू

पडित सत्यनारायण, सरलता की—विनय की—मूर्त्ति, स्नेह की प्रतिमा और सज्जनता के अवतार थे। जो उनपे एक बार मिला, वह उन्हे फिर कभी नही भूला। मुझे वह दिन और वह दृश्य अबतक याद है। सन् १९१५ ई० मे, (अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह मे) उनमे प्रथमवार साक्षात्कार हुआ था। प० मुकुन्दराम का तार पाकर वे ज्वालापुर आये थे। मै उन दिनो वही महाविद्यालय मे था। वे स्टेशन से सीधे (प० मुकुन्दराम के साथ) पहले मेरे पास पहुँचे। मै पढा रहा था। इसमे पूर्व कभी देखा न था, आने की सूचना भी न थी। सहसा एक सौम्यमूर्त्ति को विनीत भाव से सामने उपस्थित देखकर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। दुपल्लू टोपी, वृन्दायनी बगलबन्दी, घुटनों तक धोती, गले मे अँगोछा। यह वेप-भूपा थी। आँखो से स्नेह बरस रहा था। भीतर की स्वच्छता और सदाशयता मुस्कराहट के रूप मे चेहरे पर झलक रही थी। उस समय 'किरातार्जुनीय' का पाठ चल रहा था। व्यास-पाण्डव समागम का प्रकरण था। व्यासजी के वर्णन में भारवि की ये सूक्तियाँ छात्रो को समझा रहा था—

"प्रसह्य चेत.सु समासजन्तमसंस्तुतानामपि भावमार्द्रम्"
"माधुर्य विस्रम्भ-विशेष भाजा कृतोपसंभाषमिवेक्षितेन"

इन सूक्तियों के मूर्तिमान् अर्थ को अपने सामने देखकर मेरी आँखे खुल गईं। इस प्रसंग को सैकड़ों बार पढ़ा, पढाया था, पर इनका ठीक अर्थ उसी दिन समझ में आया। मैं समझ गया कि हों न हों ये सत्यनारायण जी है; पर फिर भी परिचय-प्रदान के लिये पं० मुकुन्दराम को इशारा कर

ही रहा था कि आपने तुरन्त अपना यह मौखिक 'विजिटिंग कार्ड' हृदय-हारी टोन में स्वय पढ़ सुनाया—

"नवलनागरी नेह-रत, रसिकन ढिग बिसराम।
आयौ हौं तुव दरस कौ, सत्यनरायन नाम॥"

मुझे याद है, उन्होंने 'निरत नागरी' कहा था, (२२५ तथा २२८ पृष्ठ पर, इसी रूप मे, यह छपा भी है) 'निरत' 'रत' में पुनरुक्ति-सी समझकर मैने कहा—'नवलनागरी' कहिये तो कैसा ? फिक़रा चुस्त हो जाय। हस्बहाल मजाक़ (समयोचित विनोद) समझकर वे एक अजीब भोलेपन से मुसकराने लगे, बोले—"अच्छा, जैसी आज्ञा।"

यह पहली मुलाकात थी। इस मौके पर शायद दो दिन पं० सत्यनारायणजी ज्वालापुर ठहरे थे। उनके मुख से कविता-पाठ सुनने का अवसर भी पहली बार तभी मिला था।

सत्यनाराणजी से मेरी अन्तिम भेंट दिसम्बर १९१७ में हुई थी, जब वे 'मालतीमाधव' का अनुवाद समाप्त करके हम लोगों को—मुझे और साहित्याचार्य श्री पण्डित शालग्रामजी शास्त्री को—सुनाने के लिये ज्वालापुर पधारे थे। परामर्शानुसार अनुवाद की पुनरालोचना करके छपाने से पहले एक बार फिर दिखाने को वे कह गये थे, पर फिर न मिल सके। उनके जीवनकाल में दो बार मैं धाँधूपुर भी उनसे मिलने गया था। एक बार की यात्रा में श्री पं० शालग्रामजी साहित्याचार्य भी साथ थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी दो-तीन बार मैं धाँधूपुर गया हूँ और सत्यनारायण की याद में जी खोलकर रो आया हूँ। अब भी जब उनकी याद आती है, जी भर आता है। एक प्रोग्राम बनाया था कि दो-चार ब्रजभाषा-प्रेमी मित्र मिलकर छः महीने ब्रज में घूमें, ब्रज की रज में लोटें, गाँवों में रहकर जीवित ब्रजभाषा का अध्ययन करें, ब्रजभाषा के प्राचीन ग्रन्थों की खोज करे, ब्रजभाषा का एक अच्छा प्रामाणिक कोष तैयार करे। ऐसी बहुत-सी

बातें सोची थी, जो उनके साथ गयी और हमारे जी मे रह गयीं। अफसोस !

"ख्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफ़साना था !"

सत्यनारायण के कविता-पाठ का ढंग बड़ा ही मधुर और मनोहारी था। सहृदय भावुक तो बस सुनकर बे-सुध से हो जाते थे, वे स्वयं भी पढते समय भावावेश की-सी मस्ती मे झूमने लगते थे। ब्रजभाषा की कोमल कान्त पदावली और सत्यनारायणजी का कोकिलकण्ठ, "हेम्न: परमामोद"—सोने-सुगन्ध का योग और मणिकाञ्चन का सयोग था।

पठ्यमान—गीयमान—विषय का आँखो के सामने चित्र-सा खिंच जाता था और वह हृदय-पट पर अङ्कित हो जाता था। सुनते-सुनते तृप्ति न होती थी। कविता सुनाते समय वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि थकते न थे। सुनाने का जोश और स्वर-माधुर्य, उत्तरोत्तर बढता जाता था। उच्चारण की विस्पष्टता, स्वर की स्निग्ध गम्भीरता, गले की लोच में सोज़ और साज़ तो था ही, इसके सिवा एक और बात भी थी, जिसे व्यक्त करने के लिये शब्द नहीं मिलता। किसी शायर के शब्दो में यही कह सकते है :—

"ज़ालिम मे थी इक और बात इसके सिवा भी।"

सत्यनारायणजी के श्रुति-मधुर स्वर में सचमुच मुरली मनोहर के वंशीरव के समान एक सम्मोहनी शक्ति थी, जो सुननेवालों पर जादू का-सा असर करती थी। सुननेवाला चाहिये, चाहे जब तक सुने जाय, उन्हें सुनाने में उज्र न था। एक दिन हमलाग उनसे निरन्तर ६—७ घंटे कविता सुनते रहे, फिर भी न वे थके, न हमारा जी भरा।

सत्यनारायण स्वाभाविक सादगी के पुतले थे ; गुदड़ी में छिपे लाल थे। उनकी भोली-भाली सूरत, ग्रामीण-वेषभूषा, बोलचाल मे ठेठ ब्रजभाषा

देख-सुनकर अनुमान तक न हो सकता था कि इस चोले मे इतने अलौकिक गुण छिपे है। उनकी सादगी सभा-सोसाइटियो मे उनके प्रति अशिष्ट व्यवहार का कारण बन जाती थी। इसकी बदोलत उन्हे कभी-कभी धक्के तक खाने पड़ते थे। प्लेटफार्म की सीढियो पर मुश्किल से बैठने पाते थे। इस जीवनी में ऐसे कई प्रसङ्गो का उल्लेख है। इस प्रकार की एक घटना उन्होने स्वय सुनायी थी:—

मथुराजी मे स्वामी रामतीर्थजी महाराज आये हुए थे। ख़बर पाकर सत्यनारायणजी भी दर्शन करने पहुँचे। स्वामीजी का व्याख्यान होने को था; सभा मे श्रोताओ की भीड़ थी, व्याख्यान का नान्दी पाठ-मंगलाचरण हो रहा था। अर्थात् कुछ भजनीक भजन अलाप रहे थे। सद्यःकवि लोग अपनी-अपनी ताजी तुकबन्दियाँ सुना रहे थे। सत्यनारायणजी के जी में भी उमङ्ग उठी; ये भी कुछ सुनाने को उठे। व्याख्यान-वेदि की ओर बढ़े आज्ञा माँगी, पर 'नागरिक' प्रबन्धकर्ताओं ने इस "कोरे सत्य, ग्राम के वासी" को रास्ते मे ही रोक दिया। दैवयोग से उपस्थित सज्जनों मे कोई इन्हे पहचानते थे। उन्होंने कह-सुनकर किसी तरह ५ मिनट का समय दिला दिया। श्रीकृष्णभक्ति के दो सवैये इन्होने अपने ख़ास ढग में इस प्रकार पढ़े कि सभा मे सन्नाटा छा गया; भावुक शिरोमणि श्रीस्वामी रामतीर्थजी सुनकर मस्ती मे झूमने लगे, ५ मिनट का नियत समय समाप्त होने पर जब ये बैठने लगे तब स्वामीजी ने आग्रह और प्रेम से कहा कि अभी नहीं, कुछ और सुनाओ। ये सुनाते गये और स्वामीजी अभी और, अभी और, कहते गये; व्याख्यान सुनाना भूल कर कविता सुनने में मग्न हो गये। ५ मिनिट की जगह पूरे पौन घंटे तक कविता-पाठ जारी रहा। मथुरा की भूमि, व्रजभाषा मे श्रीकृष्णचरित की कविता, भावुक भक्त-शिरोमणि स्वामी रामतीर्थ का दरबार, इन्हें और क्या चाहिये था:—

"मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वोगुणानां गणः।"

का सुन्दर सुयोग पाकर रसवृष्टि से सबको शराबोर कर दिया---यमुना तट पर व्रजभाषा सुरसरी की हिलोर में सबको डुबो दिया। कहा करते थे, वैसा आनन्द कविता-पाठ में फिर नही आया।

हिन्दी-साहित्य की नि:स्वार्थ सेवा और व्रजभाषा की कविता का प्रचार, लोकरुचि को उसकी ओर आकृष्ट करना, व्रज-कोकिल सत्यनारायण के जीवन का मुख्य उद्देश था। उन्होने भिन्न भाषाभाषी अनेक प्रसिद्ध पुरुषों के अभिनन्दन मे जो प्रशस्तियाँ लिखी है उनमें प्रशस्तिपात्रों से यही अपील की है:---

"जैसी करी कृतारथ तुम अंग्रेजी भाषा।
तिमि हिन्दी-उपकार करहुगे ऐसो आशा॥"
(कवीन्द्र रवीन्द्र के अभिनन्दन मे)

"नित ध्यान रहे तव हृदय मे ईशचरन-अरविन्द को।
प्रिय सजन, मित्र, निज छात्रजन हिन्दी हिन्दू हिन्द को॥"
---(डाब्सन साहब के अभिनन्दन मे)

स्वामी रामतीर्थजी के वे इसलिये भी अनन्यभक्त थे कि उन्हें "व्रजभाषा-भक्त भक्ति-रस रुचिर रसायन" समझते थे। (अपने समय के महापुरुषों मे सबसे अधिक भक्ति उनकी स्वामी रामतीर्थजी मे ही थी। स्वामीजी भी सत्यनारायणजी के गुणों पर मुग्ध थे। उन्हे अपने साथ अमेरिका ले जाने के लिये बहुत आग्रह करते रहे, पर सत्यनारायणजी अपने गुरु की बीमारी के कारण न जा सके, और इसका सत्यनारायणजी को सदा पश्चात्ताप रहा)। अस्तु, सत्यनारायण, सभा-सोसाइटियों में भी इसी उद्देश मे, कष्ट उठाकर सम्मिलित होते थे, जैसा कि उन्होंने एक बार अपने एक मित्र से कहा था---

"मैं तो ब्रजभाषा को पुकार लै कें जरूर जाऊँगो" और कछू नाँयँ तो
ब्रजभाषासुरसरी की हिलोर में सब को भिजायँ तो आऊँगो!

सत्यनारायण मनसा, वाचा, कर्मणा, हिन्दी के सच्चे उपासक थे, और अपनी वेषभूषा, आचार-व्यवहार और भाव-भाषा से प्राचीन हिन्दुत्व और भारतीयता के पूरे प्रतिनिधि थे। बी० ए० तक अँगरेजी पढकर और अँगरेजी के विद्वानों की संगति मे रात-दिन रहकर भी वे अँगरेजी से बचते थे। अनावश्यक अँगरेजी बोलने का हमारे नवशिक्षितो को कुछ व्यसन-सा हो गया है। इनकी हिन्दी में भी तीन तिहाई अंगरेजी की पुट रहती है। सत्यनारायण इस व्यापक दुर्व्यसन का अपवाद थे।

एक बार जब वे ज्वालापुर मे आये हुए थे, हिन्दी-भाषा-भाषी एक नवयुवक साधु से मैने उनका परिचय कराया। मै भूल से यह भी कह गया कि सत्यनारायणजी अंगरेजी के भी विद्वान् है। फिर क्या था, यह सुनते ही साधु साहब प्लुत स्वर मे हाॅ.३ कहकर लगे अंगरेजी उगलने। यद्यपि वार्त्तालाप का विषय हिन्दी भाषा का प्रचार था। 'साधु महात्मा' बराबर अंगरेजी बूँकते रहे और सत्यनारायणजी अपनी सीधी-सादी हिन्दी मे उत्तर देते रहे। कोई एक घंटे तक यह अगरेज़ी-हिन्दी-संग्राम चलता रहा, पर सत्यनारायणजी ने एक वाक्य भी अंगरेज़ी का बोलकर न दिया वे अपने व्रत से न डिगे। अन्त मे हारकर साधु साहब ने पूछा—अंगरेज़ी बोलने की आपने क़सम तो नहीं खा रक्खी ?, इन्होंने गम्भीरता से कहा—"मै किसी भी ऐसे मनुष्य के साथ, जो टूटी-फूटी भी हिन्दी बोल-समझ सकता है, अंगरेज़ी नहीं बोलता। हिन्दी बोलने समझने मे सर्वथा ही असमर्थ किसी अंगरेज़ी-दाँ से वास्ता पड़ जाय तो लाचारी है, तब अंरेगज़ी भी बोल लेता हूं।" उक्त साधु अंगरेज़ी के कोई बड़े विद्वान् न थे, इन्ट्रेंस तक पढ़े थे। कुछ दिनों मद्रास की हवा खा आये थे और उन्हें अंगरेजी बोलने का संक्रामक रोग लग गया था।

सत्यनारायणजी ने समय अनुकूल न पाया। कविता के लिये यह समय वैसे ही प्रतिकूल है, फिर व्रजभाषा की कविता से तो लोगो को कुछ राम नाम का बैर हो गया है। व्रजभाषा की कविता का उत्कर्ष तो क्या, उसकी

सत्ता भी आजकल के साहित्य-धुरन्धरो को सह्य नही। सत्यनारायणजी के रोम-रोम ओर श्वास-श्वास मे ब्रजभाषा और ब्रजभूमि का अनन्य प्रेम भरा था। यह पूर्व जन्म की प्रकृति थी——

(सतीव योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमासमभ्येति भवान्तरेष्वपि)

जन्मान्तरीण संस्कार थे, जो उन्हे बरबस इधर खीच रहे थे। "मोइ तो ब्रज मे ही छोडि के अन्त कहू अच्छौ नाय लगै गौ। मैं तो व्रज मे ही आऊँगौ——मेरी व्रज की ही वासना है।"

(पृष्ठ ३४८)

उनके इन उद्गारो से दृढ धारणा होती है कि अष्टछापवाले किसी महाकवि महात्मा की आत्मा सत्यनारायण के रूप मे उतरी थी। अन्यथा इस .. ..काल मे यह सब कुछ कब सम्भव था। यह तो दलबन्दी का जमाना है, विज्ञापनबाज़ी का युग है, सब प्रकार की सफलता 'प्रोपगडा' पर निर्भर है, जिसे इन साधनो का सहारा मिला, वह गुब्बारा बनकर ख्याति के आकाश मे चमक गया। गरीब सत्यनारायण को कोई भी ऐसा साधन उपलब्ध न था। यही नही, भाग्य से उन्हे कुछ मित्र भी ऐसे मिले जिन्होंने उनके बेहद भोलेपन को अपने मनोविनोद की सामग्री या तफरीह तबा का सामान समझा; जिन्होने दाद देने या उत्साह बढ़ाने की जगह उनकी तथा व्रजभाषा के अन्य कवियो की कविताओ की हास्योत्पादक समालोचना करना ही सन्मित्र का कर्तव्य समझा था, और हाय उनकी उस जन्म-भर की कमाई 'हृदय-तरङ्ग' को, जिसे याद कर-करके वे सदा दु ख के साँस लेते रहे, दरिद्र के मनोरथ की गति को पहुँचानेवाले भी तो उनके सुहृच्छिरोमणि कोई सज्जन ही थे। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति मे पलकर ओर ऐसी कद्रदान सोसाइटी पाकर भी आश्चर्य है, सत्यनारायण "कवि-रत्न" कैसे कहला गये। इसे स्वामी रामतीर्थ जैसे सिद्ध महात्मा का आशीर्वाद या अदृष्ट की महिमा ही समझना चाहिए।

सत्यनारायण के सद्गुणों का पूर्ण परिचय अभी ससार को प्राप्त नही

हुआ था, नन्दन कानन का यह पारिजात खिलने भी न पाया था कि ससार की विषैली वायु के झोको ने झुलसा दिया ! व्रजकोकिल ने पञ्चम मे आलाप भरना प्रारम्भ ही किया था कि निर्दय काल-व्याध ने गला दबा दिया ! भारतीय आत्मा कृष्ण को पुकारती ही रह गयी और कोकिल उड़ गया ! "वह कोकिल उड़ गया, वह गया, कोकिल उड़ गया, गया, वह गया, कृष्ण दौड़ो, आओ।"

ससार मे समय-समय पर और भी ऐसी दुर्घटनाएं हुई है, पर सत्यनारायण का इस प्रकार आकस्मिक वियोग भारत-भारती हिन्दी-भाषा का परम दुर्भाग्य ही कहा जायगा।

इस जीवनी मे सत्यनारायण के सार्वजनिक जीवन पर, उनकी साहित्य-सेवा और व्यक्तित्व पर, अनेक विद्वानो ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया है, और खूब किया है; कोई बात बाकी नही छोड़ी। मैं भी प्यारे सत्यनारायण की याद मे चार आँसुओ की जलाञ्जलि दे रहा हूँ। मेरी इच्छा थी कि उनकी कविता पर (और यही उनका वास्तविक जीवन था) जरा और विस्तृत रूप से विचार करूँ। पर सोचने पर अपने मे इस काम की पात्रता न पायी, क्योकि मैं व्रजभाषा की कविता का पक्षपाती प्रसिद्ध हूँ, और सत्यनारायण मेरे मित्र थे। सत्यनारायण की कविता की समालोचना का यथार्थ अधिकारी कोई तटस्थ विद्वान् ही हो सकता है, जो इस समय तो नही पर कभी आगे चलकर सम्भव है—

"कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

दुर्भाग्य की बात है कि सत्यनारायणजी की उत्कृष्ट कविता का अधिकाश 'यार लोगों की इनायत' से नष्ट होगया। जिसके लिए वे अन्त समय तक तड़पते रहे। फिर भी उनकी बची-खुची जो कविता इस समय उपलब्ध है, वह उन्हें कम से कम कविरत्न प्रमाणित करने के लिये, मैं समझता हूँ, पर्याप्त है। भले ही कुछ समालोचक उन्हे 'महाकवि' मानने को तैयार न हों; अपनी-अपनी समझ ही तो है। सत्यनारायण के सम्बन्ध मे यह

विवाद उठ चुका है। व्रजभाषा के प्रवीण पारखी श्रीवियोगी हरिजी ने "व्रजमाधुरीसार मे लिखा है--

इसमें सन्देह नही कि सत्यनारायणजी व्रजभाषा के एक महाकवि थे"

इस पर एक विद्वान् समालोचक ने यह कहकर आपत्ति की--"... सत्य-नारायण को महाकवि कहना उनकी स्तुति भले ही हो, पर उसका औचित्य भी मानने के लिये कमसे कम हम तो तय्यार नही है"।

इस पर वियोगी हरिजी ने "नम्र निवेदन किया--

"जो कवि एक आलोचक को दृष्टि मे महाकवि है वही दूसरे की नजर मे साधारण कवि भी नही है। स्वर्गीय सत्यनारायण को अभी चाहे कोई महाकवि न माने, पर कुछ काल के बाद वे नि:सदेह महाकवियो की श्रेणी मे स्थान पायँगे। यह अनुमान मुझे महाकवि भवभूति, वर्डस्वर्थ ओर देव का स्मरण करके हुआ है।"

--"सम्मेलन-पत्रिका", भा० ११, अ० १०।

भगवान करे ऐसा ही हो। अब न सही, आगे चलकर ही सत्यनारा-यण को समझनेवाले पैदा हो और श्रीवियोगी हरिजी की इस सूक्ति का अनुमोदन करे--

"जगव्योहारन भोरौ कोरौ गाम-निवासी।
व्रज-साहित्य-प्रवीन काव्य-गुन-सिन्धु-विलासी।
रचना रुचिर बनाय सहज ही चित आकरषै।
कृष्ण-भक्ति अरु देस-भक्ति आनँद रस बरसै।
पढि 'हृदय-तरग' उमग उर प्रेमरग दिन-दिन चढ़ै।
सुचि सरल सनेही सुकवि श्रीसतनारायन जसु बढ़ै!"

--कविकीर्तन

सत्यनारायण की जीवनी करुण-रसका एक दु:खान्त महानाटक है। जिस प्रतिकूल परिस्थिति मे उन्हे जीवन बिताना पड़ा और फिर जिस

प्रकार उन्हे "अनचाहत को सग" के हाथो तंग आकर समय से पहले ही संसार से कूच करने के लिये विवश होना पड़ा, उसका हाल पढ़-सुनकर किसी भी सहृदय को उनकी दयनीय भाग्यहीनता पर दुःख और सवेदना हो सकती है। पर एक बात में वे सैकड़ो से बड़े ही सौभाग्यशाली सिद्ध हुए। गहन अन्धकार में भटकते को दीपक दीख गया! अपार सागर में थके हुए पंछी को मस्तूल मिल गया! सत्यनारायण को मरने के बाद ही सही, चुपकी दाद देने वाला एक 'भारतीय हृदय', मुर्दा हड्डियों में जान डालनेवाला—'यश'शरीर पर दया दिखानेवाला——एक 'मसीहा' मिल गया। जिसके कारण सत्यनारायण की स्वर्गीय, सतप्त आत्मा अपने सासारिक जीवन की समस्त दुःखदायी दुर्घटनाओ को भूलकर सन्तोष की साँस ले सकती है, ओर अन्यान्य परलोकवासी हिन्दी के वे अभागे कवि, लेखक जिनका नाम भी यह कृतघ्न और स्वार्थी संसार भूल गया, सत्यनारायण की इस खुशनसीबी पर रश्क कर सकते है, इस सौभाग्य-शीलिता को स्पृहा की दृष्टि से देख सकते है। यही नहीं, हिन्दी के अनेक जीवित लेखक और कवि भी, यदि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि मुर्दों को जिंदा करनेवाला कोई ऐसा 'मसीहा' हमें भी मिल जायगा, तो सुखपूर्वक इस संसार से सदा के लिये विदा होने को, उस लेडी की तरह तैयार हो जायं, जिसने आगरे के "ताज" को देखकर अपने पति द्वारा यह पूछा जाने पर कि कहो इस अद्भुत इमारत के विषय में तुम्हारी क्या राय है? उत्तर दिया था कि "मैं इसके सिवा कुछ नही कह सकती यदि आप मेरी कबर पर ऐसा ही स्मारक बनाये तो मैं आज ही मरने को तैयार हूँ।" मेरा मतलब इस जीवनी के लेखक 'भारतीय हृदय' पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी से है। चतुर्वेदीजी की पर-दुःखकातरता और दीनबन्धुता प्रसिद्ध है। प्रवासी भारत-वासियों की राम-कहानी सुनाने मे जो काम आपने किया है वह बड़े-बड़े दिग्गज लीडरों से भी न बन पड़ा।

अब उससे भी महत्त्व-पूर्ण कार्य में आपने हाथ लगाया है। अर्थात् साहित्य-सेवियों की जिनकी राम कहानी प्रवासी भारतवासियों से कुछ

कम करुणाजनक नही है) जीवनी लिखने का पुण्य कार्य प्रारम्भ कर दिया है, जिसका श्रीगणेश सत्यनारायण की इस जीवनी से हुआ है । इसके सम्पादन मे जितना परिश्रम चतुर्वेदीजी ने किया है, वह उन्ही का काम था और इसकी जितनी दाद दी जाय, कम है । हिन्दी-ससार मे अपने ढग का यह बिलकुल नया अनुष्ठान है । यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि हिन्दी के किसी भी कवि या लेखक की जीवनी का मसाला, उसकी मृत्यु के बाद, इस परिश्रम, लगन और खोज के साथ इकट्ठा नही किया गया । जाननेवाले जानते है कि सत्यनारायण की जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाली एक-एक चिट्ठी के लिये जीवनी-लेखक को कितना भगीरथ प्रयत्न करना पड़ा है, यदि इन सब बातो का उल्लेख किया जाय तो एक खासा जासूसी उपन्यास तैयार हो जाय । जो चाहे सत्यनारायणजी की जीवनी के उस मसाले को हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के हिन्दी सग्रहालय मे जाकर देख सकता है ।

सच तो यह है कि सत्यनारायणजी की यह जीवनी प० बनारसीदासजी ही लिख सकते थे । यो कहने को सत्यनारायणजी के अनेक अन्तरङ्ग और गाढ़े मित्र थे ओर है; पर मित्रता का नाता चतुर्वेदीजी ने ही निबाहा है । मानो मरते वक्त सत्यनारायण की आत्मा इनके कान मे कह गयी थी —

"यो तो मुँह देखे की होती है मुहब्बत सबको ।,
मैं तो तब जानूँ मेरे बाद मेरा ध्यान रहे ।।"

जीवनी लिखने का उपक्रम करके चतुर्वेदीजी प्रवासी-भारत-वासियो के पुराने राजरोग मे फँसकर जीवनी के कार्य को स्थगित कर बैठे थे, इस पर मैने तक़ाज़े के दो-तीन पत्र लिखकर उन्हे जीवनी की याद दिलाई, शीघ्र पूरा करने की प्रेरणा की, और पूछा कि क्या इस पचड़े मे पड़ कर सत्यनारायण को भी भूल गये । इसके उत्तर मे जो पत्र उन्होने लिखा, उसके एक-एक शब्द से नि स्वार्थ प्रेम, गहरी सहृदयता और सच्ची सहानुभूति टपकती है । मै उस पत्र का कुछ अश इस अभिप्राय से यहा उद्धृत

करना चाहता हूँ कि मित्रता का दम भरनेवाले और बात-बात पर सहृदयता की डींग मारनेवाले हम लोग उसे पढे, सोचे और हो सके तो कुछ शिक्षा भी ग्रहण करे। (चतुर्वेदीजी इस "दोस्त-फरोशी" के लिये मुझे क्षमा करे)। 'भारतीय हृदय' ने लिखा था :—

"..... 'सत्यनारायण के अन्य मित्र उन्हे भले ही भूल जायं; पर मै कभी नहीं भूल सकता। जितना लाभ उनकी जीवनी से मुझे हुआ है, उतना किसी दूसरे को नही हो सकता। उनकी कविताओ ने मेरा मनोरंजन किया है, उनके गृहजीवन के दुःखान्त नाटक ने मुझे कितनी ही बार रुलाया है, उनकी निःस्वार्थ साहित्य-सेवा ने मेरे सामने एक अनुकरणीय दृष्टान्त उपस्थित किया है, उनकी 'हृदय-तरङ्ग' ने मुझे कीर्ति प्रदान की है, उनकी सरलता के स्मरण ने मुझे समय-समय पर अलौकिक आनन्द दिया है, (उनके-सा भोलापन भला कहा मिल सकता है ?) और उनके निष्कपट व्यवहार और प्रेमपूर्ण स्वभाव की स्मृति ने मेरे हृदय को कितनी ही बार द्रवित करके पवित्र किया है।... ... ...'जीवन के कण्टकाकीर्ण पथ मे जब निराशा के मेघ हमे भयभीत करेंगे, जब चारो और व्याप्त 'व्यापारिकता' का अन्धकार चित्त को बेचैन करेगा, जब धन का भूत साहित्य-क्षेत्र को अपनी भयकर क्रीडाओ से कलङ्कित करेगा, उस समय सत्यनारायण का निःस्वार्थ साहित्यमय जीवन विद्युज्ज्योति का काम देकर हमारे पथ को आलोकित करेगा।"... .'सत्यनारायणजी उस संक्रामक भयंकर रोग से, जिसका नाम व्यापारिकता Commercialisim है और जो कुछ हिन्दी-साहित्य-सेवियो को बेतरह ग्रस रहा है, बिलकुल मुक्त थे। न उन्होंने धन के लिये लिखा न कीर्ति के लिये, जैसे कोकिल का स्वभाव ही मधुर स्वर से गान करना है उसी प्रकार उस ब्रज-कोकिल का स्वभाव ही सुन्दर कविता का गान करना था। ...'ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे अनेक साहित्यसेवी, 'सहृदयता' के पीछे हाथ धोकर पड़े है, दूसरों को उत्साहित करना, दूसरे के गुणो की प्रशंसा करके उन्हें ऊँचे उठाना, धैर्य-पूर्वक दूसरों की आकांक्षाओं को सुनना और उन्हे यथोचित

परामर्श देना, ये बाते तो वे जानते ही नही। विद्वान् तो ससार में बहुत से है, लेखक भी सहस्रो है, पर सहृदय कितने है? सच बात तो यह है कि हृदयहीन विद्वान् के सम्मुख मेरी तबीयत घबराती है, मुझे इस बात की आशंका है कि हिन्दी-साहित्य-सेवी, व्यापारिकता के कारण अपने कोमल भावों को तिलाजलि देकर शुष्क "पुस्तक-लेखक-मशीन" बनते जा रहे है। . ।"

जीवनी लिख चुकने के वाद चतुर्वेदीजी ने एक पत्र मे मुझे लिखा था —

.."सत्यनारायणजी के विषय मे मैने कई काम सोचे थे।

(१) **बचीखुची फुटकर कविताओं का संग्रह**—यह 'हृदय-तरङ्ग' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

(२) **जीवनचरित**—यह समाप्त करके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को दे दिया गया है। इसके लिए मुझे चार बार धाधूपुर जाना पड़ा, सैकड़ों ही चिट्ठिया लिखनी पड़ी, उनके बीसियो मित्रो से मिलना पड़ा।

(३) **चित्र**—एक रङ्गीन चित्र अपने पास से १००) व्यय करके भारती-भवन फीरोजाबाद को दिया, और भारत-भक्त एन्ड्रूज़ साहब को फीरोजावाद लाकर उसका उद्घाटन-सस्कार कराया और दूसरा चित्र ४५) व्यय करके प्रयाग हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को दिया।

(४) **सत्यनारायण कुटीर**—इसके लिये ८००) इकट्ठे करने का वादा कर चुका हू, जिसमे से ३२४) भिजवा चुका हूँ।

सत्यनारायणजी की 'जीवनी' से, या उनके 'हृदय-तरङ्ग' से एक पैसा भी मैने नही कमाया। इसमे अपने पास से कम से कम ३००) व्यय कर चुका हूँ।"........

पडित सत्यनारायण के चरित्र मे चतुर्वेदीजी का कितना अधिक अकृत्रिम अनुराग है, इसका कुछ आभास उक्त अवतरणो से मिल जायगा, इससे भी अधिक भक्तिभाव की झलक देखनी हो, तो जीवनी का अन्तिम

अध्याय "मेरी तीर्थयात्रा" ध्यान से पढ़ जाइये। जबतक किसी चरित्र-लेखक को चरित्र-नायक के साथ इतनी गहरी हार्दिक सहानुभूति न हो—उसपर ऐसी अशिथिल श्रद्धा न हो,—तबतक इस प्रकार का चरित्र लिखा ही नही जा सकता। उक्त अवतरणो के उद्धरण से यहा यही दिखाना इष्ट है।

परमात्मा दया करके 'भारतीय हृदय' का-सा विशाल, सहानुभूति-पूर्ण और प्रेमी हृदय हम सबको भी प्रदान करे, जिससे हम लोग अपने साहित्य-सेवियों का सम्मान करना सीखे और अपने सन्मित्रो की स्मृति और कीर्तिरक्षा के लिये इनके समान प्रयत्नशील हो सके।

चतुर्वेदीजी ने सत्यनारायण के अनेक मित्रो को कीर्तिशेष, स्वर्गीय मित्र के गुणगान-द्वारा वाणी और हृदय पवित्र करने का अवसर देकर उन पर एक बड़ा उपकार किया है। मैं चतुर्वेदीजी का कृतज्ञ हूँ कि मुझे भी उन्होंने इस बहाने सत्यनारायण की याद में 'चार आँसू' बहाने का मौक़ा देकर अनुगृहीत किया।

मैं प्रत्येक सहृदय साहित्यप्रेमी से इस जीवनी की राम-कहानी पढ़ने की सानुरोध प्रार्थना करूँगा।

काव्यकुटीर, नायक नगला,
पो० चाँदपुर, (बिजनौर)
कार्तिक सुदि ७, स० १९८३ वि०

पद्मसिंह शर्म्मा

भारत-भक्त सी० एफ० एण्ड्रूज

भारत-भक्त सी० एफ़्० एण्ड्रूज़

की सेवा में

उनकी ५१ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

सप्रेम और सादर

समर्पित

शान्ति-निकेतन

बोलपुर

सन् १९२१

बनारसीदास चतुर्वेदी

स्वर्गीय पं० सत्यनारायणजी कविरत्न

चार शब्द

आज आठ वर्ष बाद सत्यनारायण हिन्दी जनता तथा अपने मित्रो के सम्मुख फिर उपस्थित है। वही जीवनचरित सफलता पूर्वक लिखा हुआ कहा जा सकता है जो चरितनायक को ज्यो का त्यो—उसकी सजीव मूर्ति के रूप मे—पाठको के सम्मुख उपस्थित कर दे। इस कसौटी पर यह पुस्तक ठीक उतरती है या नही, इसका निर्णय तो विज्ञ समालोचक ही कर सकते है। मै अपनी ओर मे तो केवल इतना कहूँगा कि जो कार्य मैने अपने ऊपर लिया था वह आसान नही था। सत्यनारायणजी को स्वप्न मे भी इस बात की सम्भावना न थी कि उनकी मृत्यु के पीछे उनका चरित लिखा जाएगा, और इसलिये उन्होने अपने विषय की कुछ सामग्री भी संग्रह न की थी। अतएव मेरी कठिनाई और भी बढ गई। उनकी चिट्ठियो और उनमे सम्बन्ध रखनेवाली छोटी-छोटी बातो के लिये मुझे घंटो परिश्रम करना पड़ा, बीसियों पत्र लिखने पड़े और महीनो खुशामद करनी पड़ी, आज यह बात मै अभिमानपूर्वक किन्तु नम्रता से कह सकता हूँ कि जितना अच्छा संग्रह सत्यनारायण के जीवन के विषय मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सग्रहालय में सुरक्षित है उतना अच्छा सग्रह शायद ही किसी हिन्दी-लेखक के विषय मे सुरक्षित हो। यह जीवनचरित, जैसा कुछ है, आपके सामने है।

"तुमने सत्यनारायण को व्यर्थ ही इतना बढ़ा दिया है। वे इतने बड़े तो थे नही जितना तुमने उन्हे दिखलाया है" यह बात उन महानुभावो के मुँह से सुनकर जो सत्यनारायण के मित्र होने का दावा करते है, मेरे आश्चर्य की सीमा नही रहती। सत्यनारायण इतनी उच्च कोटि के

मनुष्य थे कि उन्हे बढाना मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य से बाहर था । वस्तुत. बात उल्टी ही हुई है । सत्यनारायण के इस कार्य से स्वयम् मुझे आवश्यकता से अधिक विज्ञापन मिल गया है ।

* * * *

सत्यनारायण की कविता कैसी होती थी और वे 'कविरत्न, थे या नही, इसका निर्णय मेरी बुद्धि के परे है । कविरत्न' शब्द का प्रयोग भी मैंने केवल इसी कारण से किया है कि यह शब्द बार-बार प्रयुक्त होने पर उनके नाम का एक आवश्यक अंग ही बन गया था । वैसे स्वय सत्यनारायणजी इस प्रकार की उपाधि को व्याधि ही समझते थे । सत्यनारायण जितने अच्छे कवि थे इसलिये नही, बल्कि आगे चलकर जितने अच्छे कवि होते, उसके लिये वे कविता-मर्मज्ञो के श्रद्धा पात्र है ।

* * * *

उनके अन्तिम दर्शन की बात मैं अभी तक नही भूला । इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से लौटकर वे घर आ रहे थे । स्टेशन से जब गाड़ी चलने लगी, मैंने कहा— "पंडितजी, एक बात हमारी मानियो । जब रेल चलन लगै तब चढियो और जौलौं खड़ी न होन पावै, उतर परियो ।" पंडितजी ने हँसकर कहा—"भैया तुम्हारी कहा जरूर मानिङ्गे ।"

गाड़ी चल दी और पंडितजी आंखों से ओझल हो गये । तबसे उनकी तलाश में हूँ । उनका पता नहीं चला । सम्मेलन के अधिवेशनों में उनका पता नहीं लगा, समाचार-पत्रों के आफिस मे वे नहीं पाये गये और लेखक-मंडल में उनकी मूर्ति नहीं दीख पड़ी । वह स्वाभाविक सरलता, वह नि:स्वार्थ साहित्य-प्रेम वह मधुर हास्य और वह कोकिल स्वर हिन्दी-जगत् में कही पर एकत्र नही मिले । कहीं आदर्शवादिता के आडम्बर में

व्यापारिकता दीख पडी, कही देश-भक्ति व स्वार्थ का विचित्र सगम देखा, कही अधिकार-लिप्सा और पद-लोलुपता के दर्शन हुए, पर सत्य-नारायणजी कही दृष्टिगोचर नही हुए। मै अब भी उनकी तलाश मे हूँ। मै नही तो कोई दूसरा ही उनका पता लगाएगा, क्योकि--

कालोह्यय निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी।

फीरोजाबाद
१२। १२। १९२६

बनारसीदास चतुर्वेदी

जन्म और बाल्यावस्था

अलीगढ जिले की तहसील सिकन्दराराऊ मे जरैरा नामक एक ग्राम है। वहाँ एक निर्धन सनाढ्य ब्राह्मण खुशालीराम रहा करते थे। खुशालीराम के चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थी। इनकी पाँचवी सन्तान का नाम तलफो था। तलफो को खुशालीराम ने भली भाँति पढाया-लिखाया था। वह रामायण अच्छी तरह पढ और समझ सकती थी। उसकी चौपाई पढने की शैली बडी आकर्षक थी। तलफो का विवाह कोयल (अलीगढ) के श्रीयुत ···दुबे के साथ कुछ ले-देकर दिया गया। दुबेजी का घर धन-धान्य-सम्पन्न था। वे प्रौढ़ अवस्था के थे। उनकी यह दूसरी शादी थी। तलफो की उम्र १४-१५ वर्ष की थी। निर्धन माता-पिता की सन्तान तलफो एक धनाढ्य वंश की बधू हुई अत उसका नाम रानी सर्दारकुँवरि रख दिया गया। दुर्भाग्यवश दुबेजी विवाह के थोड़े दिनों बाद ही स्वर्गवासी हो गये। सर्दारकुँवरि और उनकी सास मे, जायदाद के ऊपर, मुकद्दमेबाजी हुई, जिसमे सर्दारकुँवरि हार गयी। इस हार की वजह से उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। दीन-हीन होकर असहाय अवस्था मे उन्हे घर से निकल जाना पड़ा। वे सराय नामक ग्राम में रही और वही उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वे पढी-लिखी थी अतएव उन्होने जारखी, कोटला इत्यादि स्थानो मे पढाने-लिखाने का काम किया। फीरोजाबाद मे भी कुछ दिन रही। तदनन्तर उन्होने ताजगंज के निकटवर्ती ग्रामों मे लड़कियो को पढ़ाना शुरू किया और अन्त तक यही काम करती रहीं।

एक बार जरैरा ग्राम के एक वृद्धपुरुष, जिन्होने यह सब वृत्तान्त

बतलाया है, कार्य्यवश आगरे गये हुए थे। वहाँ, ताजगंज के निकट उनके एक नौकर ने तलफो को देखा। यह सुनकर वे वृद्ध भी उसे देखने के लिये गये और वृद्ध महन्त बाबा रघुबरदास के यहाँ तलफो को देखा। तलफो के पास एक छोटा-सा सुन्दर बालक खेल रहा था। वृद्ध महाशय ने कहा—"यह कौन है ?" तलफो बोली—"यह मेरा लड़का सत्यनरायन है।" यही सत्यनरायन हमारे चरित-नायक है।

सत्यनारायण का जन्म माघ शुक्ल १३ सोमवार संवत १९३६ को, रात के दो बजे, सराय नामक ग्राम मे हुआ था। उस दिन सन् १८८० ई० की २४ फरवरी थी। दीन-हीन निस्सहाय इधर-उधर भटकनेवाली माता की करुणाजनक स्थिति का प्रभाव पुत्र पर पड़े बिना कैसे रह सकता था। इसीलिये सत्यनारायण के जीवन के जिस भाग पर हम दृष्टि डालते है, वही करुणाजनक दीख पड़ता है।

सत्यनारायणजी का जन्म माता की करुणोत्पादक स्थिति में हुआ था। उनकी बाल्यावस्था उसी अवस्था में कटी। बड़े होने पर कई वर्षो तक श्वास से पीड़ित होने के कारण उनकी दशा और भी करुणोत्पादक बन गई। सम्भवतः इन्ही कारणो से उनकी रुचि करुणारस की ओर प्रवृत्त हो गई थी। करुणा रस-प्रधान उत्तररामचरित का अनुवाद उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक किया। उनका अशान्तिमय गृह-जीवन करुणोत्पादक था और अन्तत. उनकी मृत्यु मे तो करुणारस की पराकाष्ठा ही हो गई। अस्तु, इन बातो को तो पाठक आगे चलकर पढ़ेंगे यहा तो हमें जाटो के छोटे-छोटे बालकों के साथ खेलनेवाले सत्यनारायण का वृत्तान्त लिखना है। सत्यनारायण के लिए यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि उन्हे बाबा रघुबरदासजी का आश्रय मिल गया। महन्त होने पर भी बाबा रघुबरदास को लिखने-पढने का बड़ा शौक था। उन्होंने सैकड़ों हस्तलिखित पुस्तके संग्रह की थीं। दुर्भाग्यवश वे बहुमूल्य पुस्तकें अब मन्दिर की धूल मे पड़ी हुई वर्षा, शीत, आतप और दीमक का आनन्द अनुभव कर रही है। खैर, बाबा रघुबरदासजी हिन्दी-कविता के बड़े प्रेमी थे और उन्होंने

प्राचीन हिन्दी-कव्यग्रन्थो की कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ भी अपने यहाँ संग्रह की थी। जिस मन्दिर मे बाबा रघुबरदासजी रहते थे उससे कुछ भूमि भी लगी हुई थी। बाबाजी को अपनी निजी जायदाद से तीनसौ रुपये वार्षिक की आय हो जाती थी।

सत्यनारायण इन्ही बाबाजी के मन्दिर मे रहा करते और धाँधूपुर की धूल मे, जाटो के लडको के साथ, खेलते थे। कहा जाता है कि बाल्यावस्था मे वे कुरूप स्त्रियो की गोद मे नही जाते थे। गाँव मे जो होली या रगति हुआ करती थी उन्हे सत्यनारायण बडे ध्यानपूर्वक सुनते थे और उसी ध्वनि से गाया करते थे। उन्ही दिनो की एक रंगति उन्हे याद थी और वे उसे कभी-कभी ठीक गँवारूधुन मे गाते थे। पाठको के मनोरंजनार्थ उक्त रगति हम नीचे देते है--

रंगति

मोहिनी चरित्र

एक दिन की बात।
कामिनि ने लीला करी, सो सुनियो जुरिमिलि भ्रात ।।
शची शारदा रमा भवानी ताकी समता ना करैं।
पैदा भई राजदुलारी ।
सो कैसें परगट भई कामिनी।
जाके माता पितु नही, नही भ्रात और कन्थ।
कामिनि काम बढामिनी जाकूँ गामे ग्रन्थ।
जनम जब कामिनि ने लीन्यौ, मातु को ढिग नाऐ चीन्यौ।
पिता तिरलोकी मे नाएं, भई मों पैदा कन्याए।
ख़बर काऊ ने नाँय पाई।
लियौ नारि औतार कि जाने काँते कढि आई।
बैदा दिपि रह्यो लिलार लाल भई जोती।

और सिर सोने की खौर लागि रहे मोती ।
बिन सीसफूल सिन्दूर बाधि लई चोटी ।
चितवन ते मारे लेइ दृष्टि बल खोटी ।
नाक नथ तोता की भारी ।
दुलरी-तिलरी परी गरे मे

सुन्दर खंगवारी ।

वचन कोइल के ते प्यारे, नैन के बान खैंचि मारे ।
उठे खसबोई तन मे ते ।
छोडि-छोडि के ध्यान मुनीसुर भाजत बन मे ते ।
हार हमेल ररकि हियरा पै अँगिया जरद किनारी—
पैदा भई राजदुलारी ।

तहँ एक पुरुष चलि आयो, जे बिगिर बाप को जायो ।
बापुइ में ते कढि आयो ।
ता नर की महिमा कहै सुनी चित लाई ।
धर लायौ कैसो भेष नारि जनु पाई ।
सो सुन्दर रूप देखि नारि को नर ने देह बिसारी——
पैदा भई राजदुलारी ।

इस रंगति मे मोहिनी का स्वरूप जाटिनियों के रूप के अनुरूप वर्णन किया गया है । 'नाक नथ तोता की भारी' और 'गरे मे सुन्दर खंगवारी, पहननेवाली जाटिनियों को देखकर, मोहिनी के स्वरूप का भी वर्णन रगति-रचयिता ने वैसा ही कर दिया है । कभी-कभी सत्यनारायण एक 'देवी-स्तुति' भी गाया करते थे जिसका प्रारम्भ इस प्रकार था :—

सुमिरूँ आदि सुमिरिनी माता बैठ हिये में आ मेरे,
अरे पर्वत में भवन कटैमा, कलस धरै ररकैमा ।

सत्यनारायण ग्रामीण लड़कों की तरह ही रहा करते थे। खेत मे, खलिहान मे, और सर्वत्र उन्ही के साथ खेलते थे। उनमे ग्रामीणता जीवन-भर बनी रही। सच बात तो यह है कि सत्यनारायण के चरित्र मे यदि कोई सब से अधिक मधुर और आकर्षक बात थी तो वह उनकी निष्कपट और अकृत्रिम ग्रामीणता ही थी।

विद्यार्थी-जीवन

(सन् १८९०-१९१० ई०)

सत्यनारायण के विद्यार्थी-जीवन को हम दो भागो मे बाँट सकते है। एक तो हिन्दी-अध्ययन सन् १८९० से १८९६ तक और दूसरा अगरेजी अध्ययन सन् १८९७ से १९१० तक। यद्यपि सन् १८९० के पहले सत्यनारायण ने लुहारगली आगरे मे, वैद्यवर प० रामदत्त के साथ, सारस्वत पढना प्रारम्भ किया था, जब कि वे अपनी माता के साथ रामदत्तजी के पिता देवदत्तजी के यहाँ रहे थे; तथापि नियमानुसार पढाई धाधूपुर पहुँचने पर ही प्रारम्भ हुई। धाधूपुर आगरे लगभग तीन मील और ताजगंज से दो फर्लाङ्ग की दूरी पर हे। गाँव की आबादी लगभग हजार-बारह सौ होगी। यह जाट लोगो की बस्ती हे। फरास, आम, नीम और पीपल के वृक्ष यहाँ बहुत है। इसी ग्राम के एक कोने में खेतो से मिला हुआ बाबा रघुबरदासजी का मन्दिर है। मन्दिर मे भगवान् रामचन्द्रजी और हनुमानजी की मूर्तियाँ हैं और बाबा अयोध्यादास तथा बाबा रघुबर-दासजी के चरण है। मन्दिर की छत पर से पश्चिम की ओर ताजबीबी का रौजा दीख पड़ता है और यमुना नदी की धार भी बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देती है। मन्दिर से मिला हुआ एक कुआँ तथा इमली का वृक्ष है और सामने बहुत-से नीम के वृक्ष खड़े है। वर्षाऋतु मे जब चारो ओर हरियाली छा जाती है, धाँधूपुर बहुत सुन्दर लगता है। वह आगरे से निकट भी है और दूर भी। इसलिये धाँधूपुर निवासी शहर के दूषित वातावरण से बचकर अपने ग्राम के लाभों का उपयोग कर सकते हैं।

वास्तव में सत्यनारायण की शिक्षा का आरम्भ इसी गाँव से हुआ समझना चाहिए। पहले पहल वे ताजगंज के मदर्से में पढने गये थे।

अछनेरे के **पं० नारायणप्रसाद सारस्वत,** जो उन दिनो ताजगज के स्कूल मे अध्यापक थे, लिखते है :—

"मैं पहली मार्च सन् १८९३ ई० को स्कूल ताजगज मे पहुँचा। उस समय पं० सत्यनारायणजी स्कूल मे नही थे। इतना स्मरण है कि वे दर्जा २ या ३ मे भर्ती हुए थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनकी माता ओर बाबा रघुबरदासजी के द्वारा हुई थी। जहाँ तक मुझे याद है, ये पट्टी-बुद्दिका लेकर नही आये थे—कागज पर ही लिखते थे। स्वभाव सरल तथा कुछ गम्भीरतायुक्त था। सदा प्रसन्न रहा करते थे। प्राय बहुत चपल न थे; लेकिन गोबर-गणेश भी न थे। कभी किसी बालक से पिटकर भी शिकायत नही करते थे। एक दिन मैने देखा कि एक लड़का इन्हे मार रहा है। मैने मारनेवाले लडके को बुला कर दण्ड देना चाहा, यह देखकर सत्यनारामण मेरे पास आये और उसे क्षमा कर देने के लिये मेरे पैरो पर गिर पडे। इनकी माताजी प्राय· प्रतिदिन स्कूल मे मिठाई लेकर आती थी। ये पहले अपनी कक्षा के बालको को थोडी-थोडी मिठाई देकर तब आप खाते थे। इन्हे कहानी-किस्से बहुत पसन्द थे और बहुत-सी छोटी-छोटी कहानियाँ याद भी थी। स्कूल मे आने के पहले ही इन्हे १०० श्लोक कण्ठाग्र थे। उन दिनो मेरे पास "हिन्दी-बङ्गवासी" और "सुधा-सागर" नामक समाचार-पत्र आते थे। एक दिन मैने अपना बस्ता खोला और उसमे से 'बङ्गवासी' का एक पुराना अंक, जिसमे टेसू का एक विचित्र गीत था, निकालकर सत्यनारायण को पढने के लिए दिया। उस समय दोपहर की छुट्टी थी। कुछ देर के बाद सत्यनारायण ने यह गीत पढकर मुझे सुनाया और मुझ से नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि थोडी देर के लिए यह अङ्क मुझे दे दीजिए, मैं इसकी नक़ल करना चाहता हूँ। मैने प्रसन्नतापूर्वक वह अङ्क दे दिया। सत्यनारायण ने तीसरे दिन ही यह गीत याद करके मुझे सुना दिया।

श्रीमान् प० अम्बिकादत्त व्यास द्वारा सम्पादित "पीयूष-प्रवाह" पत्र की दो फाइले मेरे पास थी। उनमे "डूबि क्यो न मरे उल्लू चुल्लू भरि

पानी में" समस्या की बहुत-सी पूर्तियाँ थी । एक दिन मैने ये फाइले भी सत्यनारायण को दिखलाईं । उस दिन से वे प्राय. प्रतिदिन कुछ समय के लिए उन्हे देखते और कितनी ही पूर्तियाँ कण्ठाग्र करके सुनाते । इससे मुझे ज्ञात हो गया कि उनकी रुचि कविता की ओर है । मै स्वय भी कविता-सम्बन्धी जो पूर्तियाँ करता था उन्हे सत्यनारायण को अवश्य दिखलाता था । सत्यनारायण उन्हे कई-कई बार पढते थे । एक बार मैने "चातुरै न चाहिए कि पातुरा सों अटकै"—समस्या की निम्नलिखित पूर्ति "सुधा-सागर" नामक समाचार-पत्र के लिए की थी —

दामन ही हेत नित प्रीति ये बढावति है,
दामन ही हेत रांड़ बार-बार मटकै ।
तीय से छुड़ावति सनेह गेह नासति है,
गुरु-जन-लाज काज याके सब सटकै ।
याके फन्द फँसे सुख-मौन न सुहावत है,
मोन धरि बैठो तऊ हिये मांझ खटकै ।
कायर कपूत कर कुटिल कुचाली करे,
चातुरै न चाहिए कि पातुरा सों अटकै ॥

यह पूर्ति मैने सत्यनारायण को दिखलाई । उन्होंने इसे पढकर धरि के स्थान पर धारि मेरी सम्मति लेकर बना दिया । उसी दिन से मुझे सत्यनारायण पर विशेष प्रीति उत्पन्न हो गई । उस समय ये प्रधान अध्यापक के पास थे; परन्तु मैं उनकी आज्ञा लेकर इन्हे स्वयं पढाने लगा । वार्षिक परीक्षा निकट थी, इसलिये रात को भी मै प्रधान अध्यापक महाशय के तीसरे और चौथे दर्जों को पढाता था । उन दिनों सत्यनारायण संध्या समय कभी-कभी मेरे साथ रौजे मे टहलने चले जाते थे । रौजे के विषय मे बहुत से प्रश्न किया करते थे । यथा :—

इतने ऊँचे मीनार बनाने के लिये इतनी लम्बी लकड़ी सीढी बनाने को कहाँ से आई होगी ?

शाही जमाने के अच्छे-अच्छे पेड कटवाकर इन घास-फूस आदि के लगाने मे क्या लाभ है ?

जिन्होने यह रौजा बनाया था, क्या वे यह जानते होगे कि किसी दिन इस पर अन्य मताबलम्बियो का अधिकार हो जावेगा ?

अँगरेज मुसलमान बादशाहो की तरह अच्छी-अच्छी इमारत क्यो नही बनाते है ?

क्या योरप मे भी किसी ईसाई मतावलम्बी राजा ने अपनी बीबी या माता की यादगार मे ऐसा मकान बनवाया है ?

उन दिनो ताजगज मे खत्री तन्नूसिह नामक एक अच्छे कवि रहते थे। शहर आगरे के बहुत-से कविता-प्रेमी उन्हे अपना गुरू मानते थे। सत्य-नारायण भी उनके यहा जाया करते थे। सम्भवत सत्यनारायण ने तन्नू-सिंहजी से कविता करना सीखा। सत्यनारायण हिंदी के साथ इगलिश भी पढते थे। उन दिनो स्कूल मे जिला एटे के एक नायबमुर्दारिस थे जो अँग-रेजी मिडिल फेल थे। उन्हे २ या ३ रुपये मासिक सत्यनारायण की माँ देती थी। सत्यनारायण बडी योग्यता के साथ हमारे ताजगज स्कूल से पास हुए थे और उन्हे अन्य विद्यार्थियो की अपेक्षा बड़ा इनाम मिला था।

ताजगज से सत्यनारायणजी मिढाखुर के टाउन स्कूल मे पढने गये। सत्यनारायण के सहपाठी **श्रीयुत दरबारी लाल वर्मा** अध्यापक अकोला लिखते है :—

"प्रारम्भ मे मुंशी हरनारायणजी (वर्तमान अध्यापक फतहपुर) और मै छात्रवृत्ति-परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर मदर्सा कागारौल से, सत्यनारायणजी तथा प० चिरजीलाल (अध्यापक वजीरपुरा, आगरा) मदर्सा ताजगज से, पं० मूलचन्द (पुजारी मन्दिर फरह, जिला मथुरा) अछनेरा से, और पं० लखपतराय (वर्तमान मुलाजिम कानपुर) मदर्सा पैंतीखेडा से आकर, हम छही, मिढाखुर पाठशाला में, साथ-साथ पाँचवी कक्षा मे विद्योपार्जन करने लगे। कुछ समय बाद मेरे और सत्यनारायण के हृदय मे श्रीमान् मुंशी

कुन्दनलालजी के पद-पद्म-पराग के प्रबल प्रताप से कविताङ्कुर उत्पन्न हो गया। तभी से हम दोनो उठने-बैठने लिखने-पढने इत्यादि कार्यो मे 'एक प्राण दो शरीर' सदृश रहने लगे। इनकी माता रानी सर्दारकुँवरि बड़ी पडिता थी। अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा उन्हे तुलसीकृत रामायण अधिक प्रिय थी और उस पर उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। जब कभी उनके दिल मे आजाती तो अनेक कठाग्र चौपाइया सुना डालती, ओर उनसे ऐसे उत्तम-उत्तम अर्थ कहती कि मैने ऐसे योग्यतापूर्ण अर्थ बड़े-बड़े विद्वानों मे ही सुने है।

बाल्यावस्था मे सत्यनारायणजी का स्वभाव कुछ उग्र था, लेकिन वर्नाक्यूलर मिडिल पास करने के बाद यह उग्रता जाती रही थी। शान्ति-प्रियता, परोपकारिता और मिलनसारी इनमे बहुत थी। हिन्दी-मिडिल पास करने के बाद इन्होने कुछ उर्दू का भी अभ्यास किया था; लेकिन थोड़े दिनो के ही लिए। सत्यनारानणजी अपने पुराने सहपाठियो के साथ किस तरह मिलते थे, इसका यहा एक दृष्टान्त देना अनुचित न होगा।

ता० २० जून सन् १९११ ई० को बमरोली-कटारे के मन्दिर पर मेरी उनसे अकस्मात् भेंट हो गई। यह साक्षात् भेंट ११ वर्ष पीछे हुई थी, यद्यपि पत्र-व्यवहार हम लोगो मे कभी-कभी हुआ था। हृदयालिङ्गन के पश्चात् वार्त्तालाप होते-होते जब बहुत देर हो गई तो रामचन्द्र नामक एक आदमी ने, जो पंडितजी से अपरिचित थे, मुझ जैसे क्षुद्र मनुष्य के साथ सत्यनारायण जी का बातचीत करते देख बड़ा आश्चर्य किया और मेरी ओर सकेत करके पूछा—"ये कहाँ रहते है?" कविरत्नजी आँखों मे आँसू भर के बोले—"ये मेरे हृदय में रहते है।" यह सुनकर मैंने मन-ही-मन उनके कोमल हृदय को अनेक धन्यवाद दिये। तदन्तर मैने अपनी 'श्रीमद्रा-मयश दिनकर' के, जो अभी अधूरी पड़ी है, और सत्यनारायण ने 'उत्तर-रामचरित' के पद्य परस्पर दिखाकर बड़ा आनन्द उठाया।

सत्यनारायणजी अपने पुराने सहपाठियों के साथ बड़ी सरलता और

स्वाभाविकता के साथ मिलते थे, और उनके प्रेम की अकृत्रिमता ही उनके जीवन मे सबसे अधिक मनोहर वस्तु थी ।''

सत्यनारायणजी के एक अन्य सहपाठी **श्रीयुत् मूलचन्द गोस्वामी** (पाराशर कम्पनी आगरा) लिखते है —

सत्यनारायणजी मेरे साथ मिढाखुर मे दो वर्ष तक पढ़े थे। कविता करने का शौक़ उन्हे तभी से था। बडे प्रेम के साथ वे अपने गॉव की बोली मे—

देखौ अँगरेजन कौ खेल, निकार्यो माटी मे ते तेल,
जरै जैसे घिय कैसो दिवला ।

गाया करते थे । उनकी आदत भी मिलनसार थी और वे बडे हँसोड़ थे । हम लोगो के पिता जब गॉव से आते थे, तो उनके चले जाने के बाद सबकी हूबहू नकल उतारकर सहपाठियो को खूब प्रसन्न करते थे। इनकी माता जब आती थी तो सहपाठियो को अपने लड़के की तरह प्यार करती थी । सत्यनारायणजी अपनी माँ के लाडले होने के कारण ऐसे चलते थे कि हम लडको ने उनका नाम 'पङ्गा' रख दिया था। दरबारीलाल के पिता की-सी पगड़ी बॉधकर उनकी बोली की नकल करते थे । दरबारीलाल टोटा होने पर भी घूँसा मारने मे पटु था। उसके शरीर मे बल भी था। जब सत्यनारायण पर क्रोध करके कोई आता भी तो वे इस तरह बैठ जाते और हा-हा खाने लगते थे कि वह भी अच्छा मालूम होता था। मैं छोटा होने पर भी उनकी कलाई को मरोड़ देता था, क्योकि उनके हाथ भी नाजुक थे और शरीर मे बल भी कम था। लेकिन पढने मे वे बड़े तेज थे। व्याकरण, हिसाब और गुटका की कविता मे तो अव्वल ही रहते थे। लिखने-पढने मे अच्छे रहने से रौब भी जमाते थे; पर गर्व से नही, हँसी मे। सहपाठियो को सवाल बता दिया करते थे। बराबर हँसमुख रहते और सबसे प्रेम करते थे। उनके सरल तथा निष्कपट प्रेम का एक उदाहरण देना अप्रासङ्गिक न होगा।

जब मथुरा मे मै पहले पहल सत्यनारायणजी से मिला तो मै बडी खातिरी से पेश आया। यह बात सत्यनारायण को अच्छी नही लगी। गले से मिलकर आपने कहा—"**भैया मैं तो तेरौ वही पङ्गा हूँ**"।

कभी-कभी सत्यनारायणजी बडे प्रेम के साथ कहा करते थे—"कवि कुन्दनलाल मिढाखुरवारौ"। श्रीयुत् मुशी कुन्दनलालजी (मुख्याध्यापक टाउन स्कूल मिढाखुर) ने ही सत्यनारायण को हिन्दी-मिडिल की परीक्षा दिलवाई थी। मुशीजी अपने २९।७।१८ के पत्र मे लिखते है —

"अनुमान से २३ वर्ष व्यतीत हुए होगे कि सत्यनारायण यहाँ, मिढाखुर, मुझसे विद्याध्ययन करने के लिए आये थे। उस समय उनकी अवस्था १३ वर्ष की थी। बाल्यावस्था से ही वे सुशील स्वभाव तथा तीव्र बुद्धि कहे जाते थे। परिश्रमी अधिक थे और सहपाठियों की भलाई मे रहते थे। अध्यापको के शुभचिन्तक थे। विद्यार्थी-धर्म मे कोई त्रुटि नही करते थे। सदाचारी होने मे कोई सन्देह नही था। अहङ्कार का लेश भी नही जान पडता था। बाल्यावस्था से ही सत्यनारायण सनातनधर्मावलम्बी कहे जाते थे। उनकी कवित्व-शक्ति अच्छी थी। मैने कई विद्यानुरागी पुरुषो को उनकी प्रशंसा करते हुए सुना है। आरम्भकाल मे कविता की ओर उनका ध्यान यही से आकर्षित हुआ। श्रीमान् जो लिखते है कि 'सत्यनारायण ने आपसे कविता करना सीखा' सो यह लिखते हुए मुझे सङ्कोच यों है कि प्रथम तो मै कविता के अङ्गों से अनभिज्ञ हूँ, द्वितीय कोई बृहद् पिंगल ग्रन्थ देखने का अवसर मुझे प्राप्त नही हुआ। गणादि तक का ज्ञान भी मुझे पूर्ण रूप से नहीं है। छन्दों के लक्षण, काव्य के नव रस मात्र मैंने औरों से श्रवण किये है। काव्य का जानना, करना कठिन है। जब काव्य-शास्त्र मे मेरी यह अनभिज्ञता है तो पडित सत्यनारायण की योग्यता के विषय मे मै क्या लिख सकता हूँ। सत्यनारायण वर्त्तमान समय के 'कवियों' में कविरत्न कहे जाने योग्य थे। उन्होंने मेरे यहाँ शिक्षा पाई थी, इस कारण उनकी विशेष प्रशसा करना मुझे उचित नही जान पडता। कैसे दुर्भाग्य और खेद की बात

है कि शिष्य की मृत्यु के अनन्तर शिक्षक को उसके विषय मे लेख लिखना पड़े ।

अपने एक स्वर्गीय शिष्य के विषय मे अधिक क्या लिखूँ, कुछ समझ मे नही आता :—

सत्यनरायन नाम कवि, सत्य नरायन काम ।
सत्यनरायन ह्वै गये, सत्यनरायन धाम ।।
सत्यनरायन यश लह्यो, लहि साहित्य विचार ।
जिनकी कविता के पढ़े, मिटिहै मलिन विकार ।।

जिस समय सत्यनारायण मिढाखुर मे पढते थे उस समय की उनकी एक नोटबुक सौभाग्यवश हमे मिल गई है । इतिहास, भूगोल इत्यादि विषयो को याद करने के लिए उन्होंने इस नोटबुक मे कितनी ही तुकबन्दियाँ लिख रक्खी थी । गवर्नरजनरल तथा वाइसरायो के नाम याद करने के लिए यह पद्य लिखा गया था :—

कम्पनी सुविज्ञ ने प्रथम ही प्रबंध हेतु,
वार्न हेस्टिङ्ग गवर्नर जनरल बनाये है ।
सरजान मेकफर्सन चन्दरोजा राखि,
मार्क्विस आफ कार्नवालिस हिन्द मे पठाये है ।।
सरजान शोर को बनायो लार्ड टैनमौथ,
एलूरेड क्लार्क चन्द रोज़ ही टिकाये है ।
लार्ड मार्निङ्गटन हिन्द को बढ़ायो राज,
याही काज मारक्विस बिलिजली कहाये हैं ।।
इत्यादि ।

भूगोल भी सुनिये ।

इर्कटस्क रूस की अरु चीन की पेकिन जान,
तिब्बत की राजधानी लासा पहचानिये ।

क्रीनोला मचूरिया की किकिटाओ कोरिया की,
उरगा मगोलिया की निहचै कर मानिये।
टोक्यो जापान की अरु मंडले हे बर्मा की,
श्याम की बकाक ह्यू अनाम की बखानिये।
लका की कोलम्बो और मक्का अरब की जान,
यारकन्द तुर्किस्तान पूर्बी की जानिये।
इत्यादि।

ता० २२ सितम्बर सन् १८९६ ई० को सत्यनारायण ने वीर विक्रमाजीत के नवरत्न याद करने के लिए निम्नलिखित पद्य बनाया था —

धनोत्तरी श्यानक कहौ, अमरसिंह को मान।
शक बैताल बराह अरु, कालीदास बखान॥
घट खरपर और महरयुत, बररुचि जानो भाय।
वीर विक्रमाजीत के, ये नवरत्न कहाय॥

जिस समय सत्यनारायणजी हिन्दी-मिडिल में पढते थे उन्हीं दिनो उनकी माता बीमार पड़ गई। उस समय आपने यह पद्य बनाये थे .—

माता की आरोग्यता के हेतु विनय

सुनियो सामलिया साह मेरी गज की-सी टेर।
मम माता मेरी प्राण सजीवन वाके दिवस अब फेर।
भक्तन के दुख-हरण सदा ते मेरी बेर अबेर।
ध्रुव प्रहलाद उबारि कष्ट ते विरम रहे किहि फेर।
सत्यदेव आरत शरणागत मेरे दुःख निवेर।

करियो आनँद आनँद-कन्द।
तुम्हरी कृपा कटाक्ष के कारण विचरे जन स्वच्छन्द।
जब-जब भीरः परी भक्तन पै काटे तुम तिन फन्द॥

कठिन कष्ट बस मम माता अति सुनहु सच्चिदानन्द ।
कौन नसावे भला आप बिन सत्यनरायन के दुख द्वन्द ।।

इन पंक्तियो मे सत्यनारायण का प्रेम-पूर्ण स्वभाव प्रकट होता है । समालोचक महाशय कह सकते हैं कि "इन पंक्तियों मे कुछ भी नवीनता नही है । वेही पुराने शब्द और वेही पुराने भाव हैं । कविता की दृष्टि से इनका महत्त्व नकुछ के बराबर है । ये तो पुराने ढर्रे की सूखी तुक-बन्दियाँ है ।" यद्यपि समालोचक के इस कथन मे बहुत कुछ सत्यता होगी, तथापि इन पद्यो के यहाँ उद्धृत करने का उद्देश्य सत्यनारायण की कविता के महत्त्व को दिखलाना नही है । हम उनके स्वभाव पर प्रकाश डालना चाहते है, और साथ ही साथ उनकी कविता के क्रम-विकास को भी प्रकट करना चाहते है । सत्यनारायणजी की 'सरोजनी-षट्पदी' एक उत्तम कविता है, और 'सुनियो सामलिया साह मेरी गज की-सी टेर' 'भगवन अपनो विरद सँवारो' और 'करियो आनँद आनँदकन्द' ये तुकबन्दियाँ 'सरोजनी-षट्पदी' से बीस वर्ष पहले की है । यह आशा करना व्यर्थ है कि इन तुकबन्दियों मे 'सरोजनी-षट्पदी' की-सी सरसता और सुन्दरता हो । लेकिन विकास की दृष्टि से इन तुकबन्दियो का महत्त्व 'सरोजनी-षट्पदी' से कदापि कम नही है । किसी नसेनी के नीचे के डंडे भी उतने ही अधिक आवश्यक है जितना कि सब से ऊँचा डंडा । एक साथ छलाँग मारकर कोई पहाड़ पर नही चढ जाता । उसे धीरे-धीरे चढना होता है । पहाड़ की किसी ऊँची चोटी पर बैठे हुए आदमी को देखने से उतना मनोरंजन नही होता जितना उसे धीरे-धीरे चढते हुए देखकर होता है । जिन सत्यनारायणजी ने सन् १९१८ ई० मे इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मंच पर 'श्रीगान्धी-स्तव' जैसी उच्च कोटि की कविता पढकर सहस्रो मनुष्यो को मन्त्र-मुग्ध कर दिया, उन्होंने ही बीस वर्ष पहले अपने एक बीमार मित्र के अच्छे हो जाने के लिए निम्नलिखित तुकबन्दी की थी :—

जंगबहादुर* के रोग के हेतु

प्रभू तुम कैसे रूठ रहे ।
जब तुम नाथ उबार्‌यो करी कूँ नाना दुख सहे ।
गरुड़ त्यागि तुम आय बचायो नंगे पाँय बहे ।।
जगबहादुर दास तुम्हारो ताकूँ ताप गहे ।
भवज रोग चहुँ ओर सो आकर निशिदिन तनहि दहे ।।
जब-जब वह दुख पावत तब-तब रामहिराम कहे ।
सत्यनारायण बेगि बचावो क्यो यह ठाठ ठये ।।

कहाँ कूँ सिधारे हो हे करतार ।
गनिका कीस गृद्ध गज तारे दये तिन सकट टार ।।
जंगबहादुर तुम्हरो सेवक रोग गह्यो यहि बार ।
ताप कष्टदा अतिहि चढति है अब की लगाओ पार ।।
ताके मन की सकल कामना पूरण करि सुखकार ।
मौन भये कस बोलत नाही सब जग सिरजन हार ।।
अधिक कृपा करिये तुम स्वामी ! कहा कहूँ बारम्बार ।
सत्यनरायन आस तुम्हारी अब की बेर उबार ।।

जब सत्यनारायण चतुर्थ कक्षा मे थे, तब उन्होंने "फोर्थक्लास मे पास होने की यह बिनती" लिखी थी :—

हे भगवती कृपा करो तुम भक्त आपनि जानि के ।
पर्चा करौ सब ठीक 'रानी-पुत्र'† निज को जानिकें ।।
इम्तिहान रूपी काल ने अब मातु घेर्‌यो आय कें ।
मधवा उबार्‌यो मातु तैंने वेग तेग चलायके ।।

× × ×

*बाबू कल्याण सिंह भार्गव प्लीडर के कुटुम्ब के एक लड़के का नाम ।
† सत्यनारायणजी की माता का नाम 'रानी सरदारकुँवरि' था ।

सब जनन को तुम काज करिबे मातु जग मे अवतरी।
कहा खोट अब मैने कियो मम बेर कूँ देरी करी।।
हे मातु रसना बैठिके तुम बुद्धि की शुद्धी करौ।
सब काज करिकैं ठीक माता मोर भव-बाधा हरौ।।

एक बार फिर इसी "भवबाधा" "इम्तिहान रूपी काल" से घेरे जाने पर सत्यनारायण ने अपने उद्धार की यह प्रार्थना की थी :—

"**पैशाचवत् इम्तिहान** से हे जननि मोको उद्धरो।
आधि-व्याधिन मेटिके अस बुद्धि की शुद्धी करो।।
उत्तीर्ण करि मोकूँ सदा औ सफल मन-काजन करो।
इतरिक्त जाके और माता दुख सब मेरे हरो।।
बरदान दे मोहि मातु करिके कृपा तुव सेवक कहै।
जो भक्ति तुम्हरे चरण की मम हृदय मे व्यापी रहै।।"

उन्ही दिनो किसी पत्र मे 'भारत-निवासी को' समस्या छपी थी। सत्यनारायण ने उसकी पूर्त्ति इस प्रकार की थी —

दिन दिन देश-दशा होति जाति दूबरी है,
याको दुख देखि सुधिहू न रहै सांसी की।।
कृपन भये हो किधो मोन को गहे हो नाथ!
कृपाऊ न आवै यह बात नाहै हाँसी की।।
दयासिन्धु दया करो, बिने उर माझ धरो,
सामिग्री न जोरो स्वामि फेरि तुम फाँसी की।।
बेर-बेर टेर-टेर जीभ हू सिथिल भई,
अब सुधि लीजिये जू भारत-निवासी की।।

सत्यनारायणजी की उन दिनो की कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते है।

एक हू बार अरी ब्रजनागरि धारि दया किन कठ लगावै।
चारु चरित्रन हू ते रिझाय जिवाय के क्यो न बडो यश पावै।
और न चाहत मै कछुरी सतदेव जू एक यही चित भावै।
प्यारी प्रवीन सनेह सो हेरि के कंठ लगो तन ताप नसावै।

दूसरो के दोहो पर सत्यनारायणजी ने अपनी कुछ टीकाएँ भी की थी। यथा —

दोहा—हरी कंचुकी जरद कुच, अलसानी तिय भोर।
मनहु चन्द बदरी छिप्यो, निकसत आवै कोर॥

टीका—कारी किनारी हरी कुच कचुकी सावन कारी घटा सी सुहावै।
पीत उरोज लसैं विधुसी युग देख चकोर सदा मन भावै।
भामिनसोई भली बिधि चाय सो प्रात समै कछु ज्यो अलसावै।
बारिद तैं डुबकी निकरी जनु चन्द्रकला त्रय ताप नसावै।

× × ×

दोहा—सहज सहेलिन सों जु तिय, बिहँस बिहँस बतरात।
सरद चन्द की चांदनी, मन्द परत सी जात॥

टीका—सहज सहेलिन सो हँसि-हँसि प्यारी वह,
घूघट सों मुँह निकारि बतराति जात है।
लंक लचकति अति, कुच मचकत मंजु,
बनी है सुढार अरु रग वरसात है।
जंघन सुढाली अरु चाल मतवाली पुनि,
पैंजनी पगन झनकार सरसात है।
भाषत सो प्यारी ऐसी जानि परै सत्यदेव,
चन्द की ज्यौं ज्योति मन्द परत सी जात है।

× × ×

दोहा—नवल बधू करिके चली, वासर सुभग सिंगार।
मनहुँ लियो ब्रजभूमि पर, काम कला अवतार॥

टीका—सुन्दर रूप की राशि वधू शुभ साजि सिंगार चली सो नवीना।
नैन चलावति भौह मरोरति औ मुसक्याति है प्यारी प्रबीना।
लक वडी लचकै पचकै अरु पॉय महावर हू शुभ दीना।
शोभित मानो अहो ब्रजमडल काम कला अवतार सो लीना।
ए सजनी वह नन्द को सॉवरो देत रहै नित ही नित फेरी।
कानि करी कबहूँ नहि तैने सुनैंक नही वितको हँसि हेरी।
जोवन जोश के जोर मे आयकै चीन्हे नही पर पीर को एरी।
लाल गुपाल को देख भटू छतियॉ कसकी न कसाइन तेरी।

इन उदाहरणो से प्रकट होता है कि सत्यनारायणजी को उन दिनो शृङ्गाररस से विशेष प्रेम था। उनके इस प्रेम के कारण एक बार बड़ी मजेदार घटना हो गई। श्रीयुत सत्यभक्तजी ने विद्यार्थी मे लिखा था कि, एक दिन की बात है सत्यनारायणजी ने कृष्ण और गोपियो के विषय मे एक शृङ्गाररस-पूर्ण सवैया बनाया, और न मालूम क्या सोचकर उसे अपने गुरू महाराज बाबा रघुबरदासजी को सुना दिया। उन्होने तो सोचा होगा कि गुरूजी हमारी विद्या-बुद्धि पर प्रसन्न होकर शाबाशी देंगे; पर वहॉ उलटे लेने के देने पड़ गये। महन्तजी सवैया सुनकर बड़े नाराज हुए, और सत्यनारायणजी के पॉच-सात थप्पड जमा दिये और कहा कि "अबी ते ऐसी वाहियात कविता बनावै है, आगे चल कै न जाने का करैगौ। खबरदार जो अबते आगे ऐसे छन्द-बन्द बनाये"।

सुनते है कि गुरू की प्रेम पूर्ण इन धौलो ने सत्यनारायणजी की शृङ्गाररस की कविता को कम कर दिया; लेकिन सिर्फ थोडे दिनो के लिये ही। बाबाजी की इन धौलो की याद भूलकर फिर भी सत्यनारायण वैसे ही 'वाहियात छन्द-बन्द' बनाने लगे!

उनकी समस्या-पूर्ति सुनिये —

चाहै चबाव चहूधा करौ सतिदेव जू जोरि कहौ किन कासो,
काहू की ह्वा तो चलै न सखी नहि जानत रीझत कौन अदा सो।
राधा बिसाखा रही इक ओर ज़ु लेहु लगाय सबै ललिता सो*,
जोवन जोर मरोर मे आयके कूबरीहू नहिं ऊबरी जासो।

*　　*　　*

खन्दक खाई लखै न अगार जू नैक जुबान सम्हारि कें बोलो,
सत्यजू खूब फिरो निमटे सँग बाँधि के ग्वालन को यह टोलो।
वाह ! अबीर सो आँखिन फोरत ! खेलनो हो रग गाठि को घोलो,
जीजा की सौह परे सरको तुम औरु ही मीजा टटोरत डोलो।

इस प्रकार के 'वाहियात छन्द-बन्दो' पर वृद्ध बाबाजी का नाराज होना स्वाभाविक था। इस दृष्टान्त को लिखते हुए हमे अग्रेजी कवि 'पोप' की बात याद आती है। जब वे बाल्यावस्था मे पद्य बनाया करते थे तो एक दिन उनके पिताजी ने इसी बात पर नाराज होकर उन्हें पीटा। बालक तो थे ही, बड़े भोलेपन के साथ आप बोले .—

"Papa Papa pity take
No more verses shall I make."

दिसम्बर सन् १८९६ ई० मे सत्यनारायण ने सेकेण्ड डिवीजन मे हिन्दी-मिडिल पास किया और फिर वे नियमपूर्वक अंग्रेजी पढने लगे।

---

*अथवा "नेह लगायो अबै ललिता सो"।

अंग्रेजी-अध्ययन

(सन् १८९७—१९१०)

हम पहले ही लिख चुके है कि जब सत्यनारायण मिढाकुर मे पढते थे तो उनकी माता ने उन्हे अग्रेजी पढाने के लिए अंग्रेजी-मिडिल फेल एक मास्टर नियुक्तकर दिया था। लेकिन उस समय पढाई नियमानूकूल नही हो सकी थी। सन्१८९७ ई० मे सत्यनारायणजी ने अग्रेजी-अध्ययन फिर ठीक तरह से प्रारम्भ किया। दिसम्बर सन् १८९८ ई० मे उन्होने लोअर मिडिल-परीक्षा फर्स्ट डिवीजन मे पास की और दिसम्बर सन् १९०० ई० मे सुफीदआम स्कूल से अग्रेजी-मिडिल सेकेण्ड डिवीजन मे पास किया। जनवरी सन् १९०३ ई० मे वे सैण्ट जान्स-कालेजियेट हाईस्कूल से एण्ट्रेस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए। दो बार एफ०ए० परीक्षा मे फेल होने के बाद वे सेण्टजान्स-कालेज छोड़कर सेण्टपीटर्स कालेज मे भरती हो गये और अप्रैल सन् १९०८ ई० मे उन्होने सेकेण्ड डिवीजन मे एफ० ए० परीक्षा पास की। परीक्षाओ मे फेल होने का कारण यही था कि वे अपने समय का अधिकाश कविता करने मे लगाते थे। इसके बाद वे सेण्टजान्स-कालेज मे दाखिल होगये और सन् १९१० ई० मे बी० ए० परीक्षा मे बैठे, परन्तु फेल हो गये। सन् १९०९ तथा १९१० ई० मे उन्होंने वकालत परीक्षा देने के लिए कानून भी पढा था। इस प्रकार उनका अंग्रेजी-अध्ययन-काल सन्१८९७से १९१० ई० तक समझना चाहिए। सन १८९७ ई० से लेकर १९१० ई० तक आगरे की जो धार्मिक और राजनैतिक परिस्थिति रही थी उसका प्रभाव सत्यनारायण के स्वभाव और उनकी कविताओ पर अच्छी तरह पड़ा था। सन् १९०४ ई० तक तो आगरे मे आर्य्यसमाज और सनातनधर्म सभाओं के झगड़े चलते रहे थे और सन् १९०५ मे स्वदेशी-आन्दोलन का युग प्रारम्भ

होगया था। इसीलिए सत्यनारायणजी के १९०४ के पद्य या तो धार्मिक भावो से परिपूर्ण रहते थे अथवा श्रृङ्काररस से सम्बन्ध रखते थे। सन् १९०५ से उनकी कविताओ मे देश-भक्ति के भावो का संचार होने लगा था। किसी कवि की कविता पर चारो ओर की स्थिति का कैसा प्रभाव पड़ता है, सत्यनारायण की कविता इसका एक अच्छा उदाहरण है।

उन दिनों आर्य्यसमाजियो और सनातनधर्मियो मे किस प्रकार शास्त्रार्थ हुआ करते थे, उसका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नही है। ईश्वर साकार है, या निराकार—इस प्रश्न पर सिर फोड़ने की आवश्यकता अब जनता अनुभव नही करती। परन्तु उन दिनो शास्त्रार्थो की खूब धूम-धाम थी। इन शास्त्रार्थो से जनता का तो मनोरजन होता था, लेकिन आर्थिक लाभ होता था दोनो ओर के उपदेशको को और साथ ही मजा उड़ाते थे "भज राम कृष्ण गोपाल को इस ओ३म् से क्या होता है।"—गानेवाले सनातनी भजनीक और "मुर्दो का बहाना करके क्यो लेटर-बक्स भरा है"—गानेवाले आर्य्य भजनोपदेशक।

जब आगरे मे शास्त्रार्थो की लहर जोर पर थी तो बहुत-से नवयुवक विद्यार्थी उस बहाव मे पड गये थे। सत्यनारायण भी उन्ही मे से एक थे। (कभी सागर-सन्यासी आलाराम, कभी व्याख्यान-वाचस्पति दीनदयालुजी, कभी अनहद-शब्द-ब्रह्मज्ञान का उपदेश देनेवाले हसस्वरूप के व्याख्यान होते थे। कभी मुक़ाबले पर "आरिये महाशय" कट-कट जाते थे।) सत्यनारायणजी को तुकबन्दी करने का अच्छा मौका मिलता था। टूटी पेंसिल से रद्दी कागज पर लिखी हुई कविता, फूटी चिमनी के धुँधले उजाले में, आँख फाड-फाड़कर पढते और वाहवाही लूटते थे। सनातनधर्म-सभाओं मे आपकी खूब पूछ होती थी। सन् १९०० ई० में आपने एक पुस्तक लिखी थी जिसमे आर्य समाज का विरोध किया गया था।

× × ×

पुस्तक के अन्त मे लिखा था :—

निकट आगरे नगर के, धाधूपुर है ग्राम।
मुफीदाम विद्यार्थी, सत्यनरायन नाम ।।
हरि जस रसिक सुजान हित, करी विनय चित धारि।
होय शब्द जो दोषयुत, लीजी सुमति सुधारि ।।

उन्ही दिनो पण्डित भीमसेनजी आर्य्यसमाज को छोडकर सनातनधर्मी बन गये थे। आगरे मे भी वे पधारे थे और सनातनधर्मसभा मे उनके व्याख्यान हुए थे। सत्यनारायणजी ने उनके व्याख्यानो का वृत्तान्त पद्यो मे लिखा था और प० भीमसेनजी के अभिनन्दन के लिए निम्नलिखित पद्य बनाये थे —

मण्डो सराध सभी बिधिते सु रही नही नैंकहू और कचाई।
केहरि सो दुंद क्यो जु कर्यो सुसमाज सक्यो नहि नैंक चलाई।
माया के सागर ते हमको सुकृपा करि लीन्हेसि आप बचाई।
पडित भीमजू आये भले सब भाँति हरी हमरी दुचिताई।

भीमसेन-अभिवादन मे भी "आर्य्य" लोगो की खूब खबर ली गई थी।

"आर्य्य-कहते मे लाज आवति-जिनै नैंक
जीभ के चलैया बृथा मूड़के मरैया है" ।।
इत्यादि

इन पद्यो से प्रकट होता है कि सत्यनारायण को 'आर्य्यसमाजियो' से बहुत चिढ थी। जिन लोगो ने सत्यनारायणजी को आगे चलकर देखा है वे इन तुकबन्दियो की असहनशीलता पर आश्चर्य्य करेंगे; लेकिन उन्हें यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि जिस समय ये तुकबन्दियाँ रची गई थी, उस समय आर्य्यसमाजियो और सनातनियो मे इसी तरह की हवा बह रही थी।

श्रीमान् पडित अम्बिकादत्तजी व्यास के स्वर्गवास पर सत्यनारायण ने कई पद्य बनाये थे। अन्तिम पद्य यह था —

कामिनी काव्य किलोल भरी अति चाय सो डोले महा मदमाती।
आप के बाह भरोसे बिना वह रोय रही जलधार चुचाती।
व्यास जू हाय चले कितको तुम छाडि चले किहि पै यह थाती।
हाय रे हाय बिना तुमरे फटि जाति है भारतवर्ष की छाती।

महारानी विक्टोरिया के मरने पर भी सत्यनारायण ने तुकबन्दी की थी। उन तुको के अन्तिम शब्द ये थे :—

'रूप की छटोरिया' 'दुख-नीति की बटोरिया' 'रस की कटोरिया' और "भारत को त्याग गई हाय बिक्टोरिया!"

कभी-कभी मजे मे आकर वे आधी अंग्रेजी और आधी हिन्दी मे भी कविता कर डालते थे। यथा—

Doing kindness to me
सुकृपानिधि आन इते पग धारिये।
No one helps without you
इतनी हू स्वामि हिये मे बिचारिये।
Ah ! should, I go where Shyam !
सुशेष के शायी कलेश निवारिये।
That's prayer Satya to-day
दुखमोचन लोचन कोर निहारिये।

स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों का प्रभाव

जब स्वामी रामतीर्थजी ने मथुरा मे व्याख्यान दिये थे, तब सत्यनारायणजी आगरे से कई साथियो के साथ उनके व्याख्यान सुनने मथुरा गये थे। एक बार स्वामी जी ने सत्यनारायण को आचमन के लिये अपने

कमण्डल से जल दिया। सत्यनारायणजी थे रामफटाका-मन्दिर के शिष्य, बड़े घबराये और चिल्लू के बजाय अँगूठे के ऊपर के गड्ढे में जल लिया और मस्तक पर चढा लिया। फिर तो ऐसे चेले हुए कि स्वामीजी की तरह ॐ ॐ पुकारते फिरते थे। इसलिए आपका नाम "ॐ" भी पड गया था। स्वामीजी के एक व्याख्यान के बाद उन्होने एक कविता पढी थी, जिसके दो पद्य यहाँ दिये जाते है।

श्री नटनागर आगर औ बृषभान लली के अतीव पियारे।
वृन्दबने ललिताई युतै अति कुंजगलीन के खेलनवारे।
रक्षक भक्तन के अति ही अरु दुष्ट दयैतन मारन हारे।
स्वामि हमारे सभी विधि ते कछु बन्दि कहै पद कंज तुम्हारे।
हे जनरजन औ दुखभंजन गंजन सशय के तुम स्वामी।
शुद्ध सनातनधर्म के रक्षक याही के कारण ह्वै रहे नामी।
वाणी पियूप-प्रवाह ते आज कियो हमको कृतकृत्य अकामी।
बूडत पार कर्‌यो हमको जय तीरथराम नमामि नमामी।

स्वामी रामतीर्थजी सत्यनारायण पर बड़े प्रसन्न हो गये थे। कहा जाता है कि वे सत्यनारायण को अमरीका ले जाना चाहते थे, लेकिन उन्होने वृद्ध बाबा रघुबरदास की सेवा छोड़कर जाना उचित नही समझा। स्वामी रामतीर्थ जी जहाँ-जहाँ जाते उनके साथ सत्यनारायण भी जाते थे और उनके उपदेशों में लीन रहते थे। पढना-लिखना सब भूल गये थे। सत्य-नारायण के मित्रो ने बहुत कुछ समझाया, लेकिन उन्होंने किसी की बात पर ध्यान नही दिया। लोग उन्हे पागल कहने लगे और तरह-तरह से हँसी-मजाक उड़ाने लगे। उस समय सत्यनारायण ने गजल बनाई थी —

यह पागल होना तो हमको मुबारिक हो, मुबारिक हो,
सभी जगधंध से छुटना मुबारिक हो, मुबारिक हो।
जो कोई जानना चाहे कि दुनियाँ का रहस क्या है,
इक पागलपन समाजाना मुबारिक हो, मुबारिक हो।

सभी मिथ्या सभी मिथ्या, यह जीवनमरण भी मिथ्या,
अब प्रेमपूरण हो चुके मुबारिक हो, मुबारिक हो।
पागल होने को ऋषि-मुनि भटकते फिरते जगल मे,
पागलपन समझ जाना मुबारिक हो, मुबारिक हो।
असल को पा लिया जिसने उसी का नाम पागल है,
पागलपन गले पडना मुबारिक हो, मुबारिक हो।
सतदेव होना चाहता पागलो का बादशाह,
हमको हमारी यह दुआ मुबारिक हो, मुबारिक हो।

इसके बहुत दिन पीछे सत्यानारायण ने स्वामी रामतीर्थजी के विषय मे एक अष्टक भी बनाया था, जिसका नाम था श्रीरामतीर्थाष्टक यह 'सरस्वती' मे छपा था। पाठको के मनोरजनार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है.—

श्रीरामतीर्थाष्टक

जय जय ब्रह्मानन्द-मगन जन-मन-हरसावन,
जय अमन्द सुन्दर सनेह रस सुटि सरसावन।
जय विशुद्ध बेदान्त 'व्यास' नय मग दरसावन,
जय सिद्धान्त उजास 'राम-बरसा' बरसावन।

जय पुलकित तन पावन परम, प्रफुलित प्रिय प्रेमायतन,
जय जग दुरलभ आचार्य वर, आर्य्य रत्न-गर्भा-रतन।

जय तपचर्या-उदाहरण मनहरन जु अनुपम,
जय नित नवल उमङ्ग भरन युवकन हिय उत्तम।
जय उदार पर हित-सुधार-रत भारत प्रियतम,
जय जिय जाननहार राउ अरु रक एक सम।

जय वर विराग अनुराग प्रद, गद्‌गद हिय सत सुहृदवर,
जय पद-पद पर स्वातन्त्र्य प्रिय, बिसद प्रेम-पकज-भ्रमर।

जय पंजाब-मराल बाल गुन मञ्जु माल धर,
जयति स्वप्रन-प्रतिपाल सुमति-गति-रुचि रसाल वर।
जय विनोद-ब्रत-विमल सुधाकर कर उज्जल तर,
जय स्वजन्म वसुधा सेवा-रत निरत निरन्तर।

जय भव-भय दारुन दुख हरन भेद हरन तारन तरन।
जय पूरन मृदु स्वर सो "प्रणव" उच्चारन धारन करन॥३॥

जय कुभाव-कुल-कदन सरलता-सदन सुहावन।
चारुबदन मन मदन मदनमोहन मन भावन।
जय अगाध रस रङ्गी गङ्गी[1] सङ्गी पावन।
ब्रज-ब्रजभाषा भक्त भक्ति रस रुचिर रसावन।

जय जग कलोल कर लोल अति गोल चन्द प्रियतम परम।
धृति धरम प्रभाकर नरम हिय हारन भव भय भरम तम॥४॥

जय प्रन-प्रनय दृढावन दृढ तर छोह छुड़ावन।
आरज-सुयस बढावन वैदिक ध्वजा उड़ावन।
जय विदेश विद्वान चकित चचल चित चोरन।
नित अशेष उपदेश प्रचुर पीयूष निचोरन।

भुवि विश्रुत विविध प्रमान जुत दै दै श्रुति परिचय प्रबल।
जय जयकुमार[2] जय पान जिय भारत रति राची नवल॥५॥

विशद उपनिषद पदम 'अलिफ'[3] षटपद गुंजारन।
सुघर स्वच्छ स्वच्छन्द साधु उद्देश सँवारन।
सुलभ सुजान अमान मनोविज्ञान उधारन।
भारत-दशा सुधारन सब तन मन धन बारन।

---

१. अमेरिका। २. शालिग्राम-स्वरूप कृष्ण का प्यारा नाम।
३. उर्दू मासिक-पत्र।

जय मन्द-मन्द आनन्द-रस-पारायण पपिया अमद ।
जय निरत आत्मरत सतत सत, सतनारायण हिय सुखद ।।६।।

यह आतम अज अगम अमर अनुपम और अक्षय ।
तजि यासो सम्बन्ध प्रकृति मे प्रकृति होति लय ।
यो विचारि उर मरम प्रबल प्रगटत इमि निश्चय ।
रामतीर्थ भारतमय भारत रामतीर्थमय ।

कहा मिलन-बिछुरन जबै तुम हममे हम तुममे बसत ।
बस बिमल ब्रह्म वैभव विपुल विश्व व्याप्त केवल लसत ।।७।।

जब लौ देश हितैषिन को भारत मे आदर ।
जबलौ भुवि अखण्ड शङ्कर वेदान्त उजागर ।
जबलौ सुभग स्वदेश भक्ति निश्शेष बसति मन ।
जबलौ जगमग जगत जगत जगमगत प्रेमपन ।

तबलौ निस्संशय रहहि, रामतीर्थ कीरति अमल ।
नित अङ्कित प्रतिउर पटलपर, अजर अमर अविचल अटल ।।८ ।

माता की मृत्यु

जब सत्यनारायण लगभग १७ वर्ष के थे तब उनकी माता का देहान्त हो गया । उस समय उन्हे जो दुःख हुआ उसे उन्होंने "माता-विलाप" नामक कविता मे इस भाँति प्रकट किया था—

तेरे बिना मातु को मेरी काजर आँख लगैहै ।

हाथ पाँव करि ऊजर माता को मुख मोर धुवैहै ।।
भाँति भाँति के वस्त्र हाथ गहि को मोकौं पहरैहै ।
बडी फिकर करिके, को माता भोजन मोहि करैहै ।।
दत्तचित्त ह्वै मो कहँ माता तो बिनु कौन पढैहै ।
मार-पीट के जननि कौन मोहि बारम्बार खिजैहै ।

पढ़े-लिखे की मातु आजते कौन परीक्षा लैहै।
भीतर ते प्रसन्न ह्वै माता ऊपर ते जु बिरैहै।
रामचरित मानस की माता कौन छटा छहरैहै।
टेक मेटि औरन की को निज टेक केतु फहरैहै॥
खुशी होय कर माता मो पै को इनाम अब देगी।
समझि उठनि अपने लालन की कौन हीय भरि लेगी॥
हाय मात! निज वत्सहितजिके कितको जाय सिधारी!
बिना लखैं तुमरे जल बरसे नयनन ते अति भारी॥
जो मै जानतु ऐसी माता सेवा करत्त बनाई।
हाय! हाय!! कहा करूँ मात तुव टहल नही कर पाई॥

माता के मरने पर सत्यनारायण ने अपने गुरूजी के नाम एक चिट्ठी लिखी थी। उसे हम यहाँ उद्धृत करते है—

श्रीभगवत्यै नमः श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नम:

श्री ६ युत पडितजी महाराज—साष्टाग दंडवत के पश्चात् सेवक का नीचे लिखा सविनय निवेदन है:—

हमारे पापो के उदय से और पुण्यो के क्षीण होने से हमारी प्यारी सुखकारी दीनन हितकारी मा गत मगलवार ७ को स्वर्गनारी की गोद मे सो गई, यह तो सोच चित्त को डाह करही रहा था कि और दूसरी आपत्ति आकर सेवक पर उपस्थित हुई है। अब यहाँ के पंडितगण उनकी त्रयोदशी के विषय मे झगड़ा कर रहे है। कोई पन्द्रह दिन की कहता है और कोई ठीक तेरह दिन ही की मानते है। और महर्षि-प्रणीत गरुण पुराण मे भी यही दिया है यथा—

त्रयोदशेन्हि सम्प्रेतो नीयते यम किकरै।
पिंडज देहमाश्रित्य दिवारात्रौ क्षुधान्वितं॥

श्लोक १३८, अध्याय २

अपिच

त्रयोदशेन्हि सम्प्रेतो नीयते यम किंकरै· ।
तस्मिन् मार्गे व्रजति यो गृहीत इव मर्कट ।।

श्लोक ४४, अध्याय २ गरुड़

इसका और अधिक विवरण उक्त अध्याय के ३२ वे श्लोक मे अत के श्लोक तक दिया है। इस ग्रन्थ से मालूम होता है कि पश्चात् १३ दिन के हमारी मा को कुछ नही मिल सकता। इससे तेरह ही दिन का कार्य होना योग्य है। मेरे मतानुसार मासिक श्राद्ध, वार्षिक श्राद्ध वा अकाल-मृत्यु का विषय इससे जुदा है। महाराज! सेवक की प्रार्थना यह है कि पचको मे यदि तेरही करते है तो यहाँ के पडितो के मत-विरुद्ध है, और यदि उनके पश्चात् करते है तो गरुड़-पुराण के मत-विरुद्ध है; ओर मा को कुछ नही मिलता—अथवा उक्त ग्रन्थ झूठा है वा यह श्लोक मिलाये हुए है। हाँ, पचकों मे दाह-कर्म करना मना है सो यह काड उपस्थित नही। कृपा कर जैसी सेवक को आज्ञा हो वह करे, क्योकि यह प्रथा बहुत प्रचलित भी नही है। शेष मिलने पर।

अभागा सत्यनारायण

धाँधूपुर, आगरा

मित्र को पद्य में पत्र

उन दिनो सत्यनारायणजी सनातनधर्म का प्रचार करने के लिये भी कभी-कभी आस-पास के ग्रामो मे जाया करते थे, यह बात निम्नलिखित पत्र से प्रकट होती है, यह पत्र उन्होंने अपने किसी मित्र को भेजा था।

पत्र

सिद्धि श्री सद्गुण ते भूषित पावन परम पियारे।
राम-राम बहु बार हमारी लेहु प्रथम सुखकारे।।

ता पाछे चित दै सुन लीजे कछुक हाल अब मेरो।
यहँ प्रिय कुशल सबहि बिधि चाहत तेरो कुशल घनेरो।
बहु दिन ते नहिं भेजी पाती छाती दरकति मेरी।
करक करेजा नित ही करकत निठुर बुद्धि कहा तेरी॥
अब हू सोचि समझ कर चेतो कछुक दया उर लावौ।
मन तुव पीर तीर-सी खरकत ताको तुरत मिटावौ॥
कारण बिना हाय क्यो प्यारे इतक क्रोध तुम कीन्हो।
दुष्टराज के बस मे ह्वै के क्यो अपयस सिर लीन्हो॥
जाते लखी परै अब मोको क्रोध तुम्हार पियारो।
राखि लियो ताही ते निज उर मोको हाय बिसारो॥
कलुषित कर तेरो मन-दीपक तेल सनेह जरावै॥
हहरि हहरि कर तेरे हिय को ये ही मित्र हरावै॥
सबही काज नसावै याते दूर करौ तुम याको।
मन दृढ करि कटि कसै पियारे पकरहु शान्ती ताको॥
माता त्यागि स्वर्ग को धाई तुम क्यो अब मुख मोरचो।
सहपाठीपन भूलि मित्रका रह्यो प्रेम अब थोरचो॥
हा हा करि कर जोरि कहौं नैंक पत्री बेग पठावौ।
बिरह-बन्हि अभ्यन्तर लागी ताको बेग नसावौ॥
पाव लगन निज पितु-माता सन कहियो अति ही मेरो।
राखे कृपा जानि जन अपनो हौ उनकौ हौ चेरो॥
शुद्ध सनातनधर्म के रक्षक डालचन्द जो प्यारे।
छत्रसाल तिनके सुत आदिक अरु जो मित्र हमारे॥
आशिर्वाद कहो तुम मेरो खूबहि खुशी मनावैं।
दम्भी और पाखण्डी मत को जरते खोद नसावैं॥
पढ़े आगरे बीच विप्रवर जो बेनीपरसाद।
कह तिन सौं पालागन मेरो मित्र सहित अल्हाद॥
श्री पंडित ईश्वरप्रसादजू झगनलाल के भ्राता।

जाय मदरसा तिनते कहु तुम पालागन मम ताता ॥
विनय सहित विनती करि दीजो पत्रिहु नाँहि पठाई ।
किहि कारण इतने दिननि सों अदया-दृष्टि लखाई ॥
कछुक दिनन के माँहि आप के ग्राम बीच मैं आवौं ।
विजय सनातनधर्म सभा की तुमको खूब सुनावौं ॥
अब कछु ओर लिखत नहिं आवै करहुँ इत्यलम् ताते ।
सुधिकर शीघ्र पत्र तुम भेजो सुखी होय मन जाते ॥

श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त की भविष्य वाणी

२२ अगस्त सन् १९०३ "भारतमित्र" मे सत्यनारायण की निम्नलिखित कविता छपी थी—

बिरथा जन्म गमायो अरे मन ।
रच्यो प्रपच उदर-पोषण को राम को नाम न गायो ।
तरुनिन तरल त्रिवलि को लखि के हाय फिरचो भरमायो ॥
रह्यो अचेत चेत नहिं कीन्हो सगरो समय वितायो ।
माया जाल फँस्यो हा अपुते उरझि भलो बौरायो ॥
पर तिय को हिय देत न हिचकत नैंक नहीं सरमायो ।
भगवा भेष धरचो ऊपर ते नाहक मूड़ मुड़ायो ॥
जन-मन-रजन भव-भय-भजन अस प्रभु को बिसरायो ।
नित प्रति रहत पाप मे रत तू कबहुँ न पुण्य कमायो ॥
मगलमय को नाम तज्यो तू विषयन सो लिपटायो ।
सत्यनरायन हरिपद पकज भजो होय मन भायो ॥

२५।५।१९०३

इस पर टिप्पणी करते हुए श्रीबालमुकुन्द गुप्त ने लिखा था—

"यह एक बालक की कविता श्रीयुत प० श्रीधरजी पाठक की मार्फत हमारे पास पहुँची है। बालक तबियतदार है। यदि अभ्यास करेगा तो

भविष्य में अच्छी कविता कर सकेगा। अपनी तरफ़ से हम इतना ही कहते हैं कि भाषा ज़रा वह और साफ़ करे और कुछ नये ढङ्ग की कविता में अभ्यास बढ़ावे; क्योंकि जैसे ढङ्ग की वह कविता है वैसी हिन्दी में बहुत अधिक और उत्तम से उत्तम हो चुकी हैं।"

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस "तबियतदार बालक" के विषय में गुप्तजी की भविष्यवाणी कितनी सत्य सिद्ध हुई। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सत्यनारायण की कविता पं० श्रीधर पाठक ने "भारतमित्र"–सम्पादक के पास भेजी थी। सत्यनारायण पाठकजी की कविता के बड़े प्रेमी और उनके कृपा-पात्र थे।

द्विवेदीजी से परिचय

सन् १९०३ के अन्त में सत्यनारायण का परिचय आचार्य पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी से हुआ। द्विवेदीजी की एक चिट्ठी, जो उन्होंने सत्यनारायण को ३२।१०।०३ को भेजी थी, यहाँ उद्धृत की जाती है।

JHANSI 30-10-03

DEAR BABOO SATYANARAYAN,

The frankness with which yeu have written your letter has immensely pleased me. If I have occasion to come to Agra I shall ask you to kindly come to see me at G. I. P. Ry. Agra city Booking office in Rawatpara. Your description of Hemant will appear in Saraswati either in December or January.

Yours Sincerely
MAHAVIR PRASAD

इसके बाद ३० दिसम्बर सन् १९०३ को द्विवेदीजी ने एक कार्ड फिर अँगरेज़ी में भेजा था, जिसका तात्पर्य्य यह था कि पहली जनवरी

को ११ बजे सबेरे रावतपाड़े मे मुझसे आकर मिलो । हम समझते है, कि सत्यनारायण को द्विवेदीजी के दर्शन करने का सौभाग्य पहली जनवरी सन् १९०४ को ही प्राप्त हुआ था । निस्सन्देह द्विवेदीजी जैसे साहित्य-महारथी का प्रभाव सत्यनारायण के हृदय पर अवश्य पडा होगा। सत्यनारायणजी की मृत्यु के अनन्तर द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' मे लिखा था—

"सत्यनारायणजी से हमारा प्रथम परिचय उस समय हुआ था, जब वे ऐण्ट्रेस क्लास मे पढते थे। पेट की प्रेरणा से जब-जब हमे आगरा जाना पडता था, तब-तब वे मिलते थे । खबर पाते ही हमारे ठहरने के स्थान पर आ जाते थे । दिन-दिन भर साथ रहते थे । ताजगञ्ज के पास अपने गॉव भी एक बार वे हमे ले गये थे। इनका असामयिक निधन बडी दु खदायिनी घटना है ।"

सत्यनारायण की कविता कभी-कभी 'सरस्वती' मे छपा करती थी । इनकी 'वन्देमातरम्' शीर्षक कविता के विषय में आचार्य द्विवेदीजी ने इन्हे अपने २०।२।०५ के पत्र मे लिखा था :—

"नमस्कार

बन्देमातरम् पहुँचा । कविता बडी ही मनोहर है । थैंक्स—ऐसे ही कभी-कभी लिखा कीजिये । और सब कुशल है ।

भवदीय—
महावीरप्रसाद"

'स्वदेश-बांधव' से सम्बन्ध

जितने नवयुवक "स्वदेश-बाधव" द्वारा हिन्दी लिखने की ओर आकर्षित हुए, उतने बहुत कम पत्रो द्वारा हुए होगे । यह पत्र स्वदेशी-आन्दोलन के युग मे आगरा से निकाला गया था । इसके लेखों तथा कविताओ में देशभक्ति के भाव भरे रहते थे। "स्वदेश-बाधव" का मोटो भी सत्यनारायण का बनाया हुआ था ।

"देश-सेवा चारु उन्नति चातुरी सुविचार।
व्यापार प्रेम पसार अरु नय नागरी परचार॥
सत्काव्य औ कल कला कौशल करनको विस्तार।
कर्तव्य जानि "स्वदेश-बाधव" को भयो अवतार॥"

सन् १९०५ मे "स्वदेश-बान्धव" के मुख-पृष्ठ पर यह पद्य छपता भी रहा। सत्यनारायणजी "स्वदेश-बाधव" के पद्य-विभाग का सम्पादन भी करते थे।

श्रीयुत चतुर्वेदी पं० रामनारायण मिश्र से परिचय

सन् १९०४-०६ मे चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र आगरे मे थे। उनको हिन्दी-कविता करने का शौक था। मिश्रजी के प्रभाव से सत्यनारायणजी ने अपनी कविता मे अग्रेजी ढङ्ग के अनुप्रास लाना प्रारम्भ किया था। काश्मीर-सुषमा उन दिनो नयी निकली थी। उसी शैली पर बसत व पावस की कविताएँ रची गयी थी। चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद शर्म्मा ने "राघवेन्द्र" भी प्रयाग से उसी जमाने मे निकाला था। उसमे कभी-कभी सत्यनारायणजी की कविता भी छपा करती थी।

रैवरैण्ड एल० वी० जोन्स को हिन्दी पढ़ाना

जिन दिनो सत्यनारायणजी सेण्ट जोन्स कालेज मे पढते थे, उन दिनो वे एक एग्लोइण्डियन सज्जन को हिन्दी पढाते थे। पीछे ये महाशय ढाका के बैप्टिस्ट मिशन मे काम करने लगे। जब इन्होने रैवरैण्ड डेविस (प्रिसपल सेण्ट जान्स कालेज, आगरा) के पत्र मे सत्यनारायण की मृत्यु का समाचार पढा तो डेविस साहब को अपने ५ फरवरी सन् १९११ के पत्र मे लिखा था :—

"First let me say how grieved I am over the news you send. I discovered for my self, ten years ago, some of the worth of the Late Pandit and we became very

friendly. He was then in the Government College. He made me, through his close knowledge of it, a keen student of the Ramayan I have still a very good photo of him which I took in those days. I do not know if you would care to have a copy Once at my request he wrote a kind of Indian 'Nursery Rhyme' for me in Hindi I have often repeated it when travelling in North India and it never fails to catch on. It might be of interest to know how these lines came to be written. My elder sister Miss Edith M. Jones of Woodsfock Mussoorie, felt the need of some Indian equivalent to some of our English rhymes. I asked my Pandit to make the venture, and in Hindi gave him *e. g.* some idea of our Pat-a-cake baker's man in a crude jingle. He seemed very pleased when he produced the enclosed lines Personally I think he succeeded admirably. Before I came away to Dacca he brought me, much to my surprise and delight, about 20 lines of affectionate farewell at parting."

अर्थात्—"सब से प्रथम मै आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि आप के भेजे हुए (पं० सत्यनारायण की मृत्यु के) समाचार को पढकर मुझे बहुत खेद हुआ है। आज से दस वर्ष पहले मुझे स्वर्गीय पडितजी की योग्यता का कुछ परिचय मिला था। तभी से हम लोगों मे बड़ी मित्रता हो गई थी। वे उस समय गवर्नमेन्ट कालेज मे पढते थे। रामायण का उन्हे बहुत अच्छा ज्ञान था और उसी के द्वारा उन्होने मुझे भी रामायण का प्रेमी विद्यार्थी बना दिया। उन दिनो मैने उनका एक बहुत अच्छा फोटो लिया था। वह अब भी मेरे पास है। "मै नही जानता कि आप उस फोटो की एक प्रति

अपने पास रखना पसद करेगे या नही। एक बार उन्होने मेरी प्रार्थना पर हिन्दी मे बच्चो का एक गीत बनाया था। उत्तरी भारत मे यात्रा करते समय मैने इसको अनेक बार दुहराया है और जब कभी मेने इसे पढा है, लोगो को हँसी आये बिना नही रही। ये पक्तियाँ लिखी किस प्रकार गई, यह भी सुन लीजिये। मेरी बडी बहन मिस ऐडिथ० ऐम० जोन्स ने मुझसे कहा कि अग्रेजी मे जैसे बच्चो के गीत है, वैसे ही हिन्दी मे भी कुछ गीतो की जरूरत है। मैने अपने पडित (सत्यनारायणजी) से कहा कि आप कोशिश करके बनाइये और मैने उन्हे कई अँग्रेजी गीतो का भावार्थ हिन्दी मे बतला भी दिया। तभी उन्होने साथ की ये हिन्दी पक्तियाँ बनाई, और जब बन गई तो बडे खुश हुए। मेरी सम्मति मे उन्हे इन पक्तियो के बनाने मे अच्छी सफलता मिली। मेरे ढाका चले आने के पूर्व वे मेरे पास बीस पक्तियो का एक अभिनन्दन-पत्र लाये। उसे देखकर मुझे साश्चर्य प्रसन्नता हुई।"

बच्चो के जिस गीत का जिक्र मिस्टर जोन्स ने किया है, वह निम्न-लिखित है--

सुन सुन रे ए रे हलवाई, भूख लगी है मुझको भाई।
पूरी बेलो जल्दी-जल्दी, पीसो अभी मसाला हल्दी।
होवे ज्योही गरम कढाई, उसमे दो पूरी छुडवाई।
घी देखो छुन-छुन करता है, आँच लगी उबला पड़ता है।
पूरी मती जलाये डालो, कलछी से अब इमे निकालो।
यह मेरा है भूखा भाई, तूने अच्छी देर लगाई।

सत्यनारायणजी ने उन्ही दिनों इस प्रकार के और भी कई पद्य बनाये थे जो परिशिष्ट मे दिये गये है। रैवरैण्ड जोन्स को सत्यनारायणजी ने जो अभिनन्दन पत्र दिया था, वह इस प्रकार है

श्रीहरिः

श्रीयुत सद्गुन सदन सुभग सब भाँति सुहावन ।
मित्र एल० वी० जोन्स मृदुल मञ्जुल मन-भावन ।।
तव उदार गम्भीर प्रेम—पावन—रुचिराई ।
मुख सो बरनि न जाई प्रिय मन ही मन भाई ।।
तब सुचि सोहनि सरल प्रकृति की सुधि आवेगी ।
मनमोहनि जो अवै वुही पुनि तरसावेगी ।।
कछुक दिनन के हिलन-मिलन सुन्दर बोलनसो ।
लोल नेहमय लता लहलही लिपटति मनसो ।।
बिरह-बीजुरी गिरै अचानक जो कहुँ आई ।
जात नवेली अलबेली बेली मुरझाई ।।
अरु हिय तरु सतप्त होत अति जा अघात सों ।
सूखिजात चित-चिन्ता टपकति पात-पात सो ।।
अटल प्रकृति नियमानुसार जो दशा भई है ।
सो सब जिय जानत प्रियवर ! नहिं जाति कही है ।
लहि तव सुमिरन मधुर सघन घन की बरसाए ।
पिय तरु फूलहि फरहि अङ्कभरि नेहलता ए ।।
बिसरैयो जनि जौन्स निरन्तर रस बरसैयो ।
सरसैयो नवनेह, कुशलमय पत्र पठैयो ।।
निरत नागरी उन्नति में अपनो चित दीजौ ।
या अबलहि उद्धारि मुदित निरमल यश लीजौ ।।
ईश देहि तोहि शक्ति भक्ति नित निज चरनन की ।
तिनसो तब मन कसै शृङ्खला—रति सुवरन की ।।
आरत भारत शुभचिन्तक कर्त्तव्य-परायण ।
होहु, सदा आशीस देत यँह सत्यनरायण ।।

सत्यनारायण
धाँधूपुर—आगरा

पाठकों के मनोरंजनार्थ रैवरैण्ड जौन्स की एक हिन्दी-चिट्ठी की ज्यों-की त्यों नकल नीचे दी जाती है——

Regent's Park Hostel

Dacca. आगस्ट ३। १९१०

श्रीयुत प्रिय बन्धु सत्यनारायण,

अशीर्वाद

अनेक दिन से मैं आपकी ओर से एक पत्र की बाट देखता रहता हूँ क्योंकि अब तक आप बी० ए० पास हो गये कि ना, यह बात मैं ठीक जानता नहीं। क्यों भाई, हम दो जन भ्राता लोग है न, सो मुझको भूलियो ना—किन्तु पत्र लिखने की पारी मेरे है——आपका पत्रोतर पाया और इससे मैं अति आनन्दित हुआ।

आजकल न हो कि हिन्दी पढना लिखना भूल जाऊँ, मैं प्रत्येक दिन कुछ न कुछ पढा करता हूं। उचित है जो कि आप चेले की यह समाचार सुनके सुख रहे।

बहुत दिन से मैं जान लिया हूँ कि बङ्गला और हिन्दी मे बहुत मेल हे—किन्तु बङ्गला का उच्चारण मे इतना अन्तर है कि कान फटने को है और आगे यहाँ पर कथा-प्रसंग मे अनेक शब्द व्यवहार करते है जो हिन्दी मे केवल पुस्तक मे उपस्थित है। वास्तविक दोनों भाषा संस्कृत से निकली हैं—परन्तु भाई मेरी इच्छा हिन्दी पर सर्वदा चलती रहती है और क्या यह तो है न, मेरे जन्म-स्थान की बोली। क्या हम जन्म देश भूल सकते है, कभी नही।

दयामय परमात्मा आप को सुख दे यह मेरा प्रार्थना।

आप का चेला

एल० बी० जोन्स

अपने "चेले" से यह आशीर्वाद पाकर सत्यनारायण को अवश्य ही हँसी आ गई होगी।

सम्भवत इन्ही पादरी साहब की पढाई के विषय मे श्रीसत्य भक्तजी ने एक घटना "विद्यार्थी" मे लिखी थी, वह यह है—एक अग्रेजी पादरी आपसे हिन्दी पढता था। उसकी पढाई मे तुलसीकृत रामायण का राम-स्वयबरवाला अग भी था। जब पढते-पढते वह धनुष-भंग का वर्णन समाप्त कर चुका, और उसके पश्चात् उसने "त्रिभुवन घोर कठोर" वाला छन्द पढा तब उसने जिज्ञासा की कि अब तक तो इसमे बराबर दोहा और चौपाई आते रहे, अब क्या कारण है कि यह नवीन ढङ्ग का छन्द लिखा गया। इस अनोखे प्रश्न को सुनकर एक बार तो सत्यनाराणजी चकरा गये और चकराने की बात भी थी। पर धन्य है उनकी बुद्धि को, जिसने तुरन्त ही एक विचित्र उत्तर सोच निकाला। आपने कहा—'धनुष टूटने के पहले सब लोगो के विचार भिन्न-भिन्न थे। जनक धनुष न टूटने से सीता के अविवाहित रहने की बात सोच कर घबरा रहे थे। सीताजी की माँ रामचन्द्रजी के कोमल शरीर को देखकर उनसे धनुप का टूटना असम्भव समझ रही थी। स्वयं सीताजी रामचन्द्रजी द्वारा धनुप टूटने की प्रार्थना ईश्वर से कर रही थी। राजा लोगो को खयाल था कि अब धनुष को कोई नही तोड़ सकेगा। इसी प्रकार जनता के चित्त में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हो रहे थे। पर ज्यो ही रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ा कि सबके विचार बदल गये। इसीलिये सबके विचारों को बदला हुआ देखकर कवि ने भी अपनी छन्द-प्रणाली भी बदल दी और अपने विचारो को एक नूतन छन्द में प्रकट कर दिया! पादरी साहब यह सुनकर बड़े खुश हुए।

सेण्टजान्स कालेज में अध्ययन

सत्यनारायणजी कई वर्षो तक सेण्टजान्स कालेज मे पढ़े थे। जब कभी कोई अध्यापक कालेज छोड़कर जाता था तो उसके लिए अभिनन्दन-पत्र तैयार करना सत्यनारायण का ही कर्तव्य-सा हो गया था। सच तो यह है कि कालेज छोडने के बाद भी जबतक वे जीवित रहे, इस कर्तव्य से उनका पीछा नही छूटा। कही किसी स्कूल या कालेज से कोई शिक्षक या अध्यापक

जानेवाला हुआ कि वहाँ के विद्यार्थियो ने सत्यनारायण को आ घेरा और उनसे अभिनन्दन-पत्र तय्यार करा लिया। सत्यनारायण जी का अभिनन्दनीय व्यक्ति से परिचय या सम्बन्ध है या नही, इस बात की कोई आवश्यकता न समझी जाती थी। सत्यनारायणजी भी ऐसे सीधे-सादे आदमी थे कि किसी अपरिचित अध्यापक की बिदाई के उपलक्ष्य मे उनसे कविता बनवाना कोई कठिन काम न था। विद्यार्थी जानते थे कि पडितजी गुड की मडी मे, चतुर्वेदी अयोध्याप्रसाद पाठक के यहाँ मिलते है। बस, सीधे वही पहुँचते थे ओर अभिनन्दन-पत्र तैयार करा कर ही लौटते थे। इस प्रकार विद्यार्थी-जीवन मे और उसके बाद भी आगरे-भर मे 'स्वागत-कविता' और 'अभिनन्दन पत्र' तैयार करना सत्यनारायण का एक निश्चित कार्य्य हो गया था। इस प्रकार के अभिनन्दन-पत्रो को यहाँ स्थानाभाव से उद्धृत नही किया जा सकता। इन सब अभिनन्दनों मे एक से ही भाव है, इसलिये उदाहरण के लिये एक-दो का दे देना काफी होगा। प्रिन्सिपल हेथोर्न्थवेट को निम्नलिखित अभिनन्दन-पत्र दिया गया था।

श्री हरि

अभिनन्दन-पत्र

श्रीयुत प्रियतम परम सरल हिय सद्गुन आगर।
सदय निरन्तर धीर धर्ममय नितनय-नागर॥
कर्मनिष्ठ अति शिष्ट विमल जस चहुँ सरसावन।
सुठि रचना-चातुर्य्य सुभग उर मोद जगावन॥
दीन हीन छात्रनु के साँचे सुखद सहायक।
श्री जे० पी० हेथोर्न्थवेट सुन्दर सब लायक॥
उज्ज्वल उच्च उदारनीति सब मृदुल सुहाई।
मुखसों कहत बनै न मुदित मन ही मन भाई॥
कौन कौन से तुम्हरे गुन यहँ कोउ गिनावै।
'तुमसे हो बस तुमहिं' अन्य कोउ छन्द न भावै॥

जबलो इङ्गलिस भाषा को अर्गलपुर आदर।
जबलो सुठि सञ्जोन्स पुण्य कोलेज उजागर ।।
जबलो सत्य कृतिज्ञ-भाव उर बास लहैगो।
तब लो तुम्हरो नाम यहाँ पै अटल रहैगो ।।
सुधि आवेगी सरल प्रकृति प्रिय परम तिहारी।
होगी कैसी दशा देखिये हृदय बिचारी।
आप चले निज देश हमे सौंप्यो किहि हाथा।
जो सब भाँति हमेस देइगो हमरो साथा ।।
सब प्रकार सो हर्ष, करक बस करकत यहो हमारे।
मिलि तुमसो नित हाय! बिलग अब तुमको करहि पियारे ।।
तुमहि बताओ कौन भाँति हम धीरज हिय मे धारै।
करिके कठिन हृदय निज कैमे तुम्हरी सुध्रहि बिसारैं ।।
होत करै सन्ताप कहा बिधि यह बिधि प्रबल रचाई।
जाउ आप सन्तोष करै हम याही में सुघराई ।।
यद्यपि प्रेमीजन प्रेमी को परबस ह्वै के त्यागे।
परि उमङ्ग बस निज उर ताकी उन्नति मे अनुरागे ।।
यही सोचि हम तुमको प्यारे करत बिदा सुच पाई।
समाचार निज तुमहि पठावन चहियतु नित सुखदाई ।।
तव कर सो पल्लवित सुखद अति जो अनुपम अलबेली।
छई कलित कोलेज कीर्ति की कोमल बेलि नवेली ।।
जापै अचल नैम सो पूरण प्रेम रसहिं बरसैयो।
सुधि-बुधि जाकी त्यागि पियारे जनि जाको तरसैयो ।।
अधिक निवेदन करहि कहा तुम स्वयं चतुर गुणवाना।
सुमिरि पुरातन प्रीति-नीति नित सब को धरियो ध्याना।
श्री मिसेज़ हेथोर्न्थवेट अरु तुम को सुख सम्माना।
सत्य सनेह सुजस आयुस सुत देहि ईश भगवाना ।।

—सत्यनारायण

सेण्ट जान्स कालेज के Old boys association (पूर्व विद्यार्थी-सम्मेलन) के दिन सत्यनारायण ने जो पद्य-रचना की थी उसका कुछ अश नीचे उद्धृत किया जाता है ।

क्यो ये प्रसन्न मुख आज प्रकाशमान ।
क्यो ये सुरम्यमन कज विकाशमान ॥
उत्साह क्यो जु लघु दीर्घन मे समान ।
प्राचीन-शिष्य-शुभ-उत्सव विद्यमान ॥
ऐसो दुचन्द सुखकारक दृश्य देख ।
आनन्द-मग्न मन होत जु मो बिशेष ॥
देख्यो अतीव अब प्रेम जु औ निवाह ।
प्रत्येक वर्ष तव ऐस मिलाप चाह ॥
यासो हि क्योकि मिलिबो जग बीच नीको ।
याके विना सकल हास्य प्रियत्व फीको ॥
कालेज प्रेम कछुहूँ हिय मे जगाओ ।
तो सेलिब्रेशन ही वर्ष प्रत्येक आओ ॥

... .

वो नो प्रवीण नय हास्य रसाधिकारी
साहित्य-मग्न उर जास सुप्रेम भारी ॥
सर्दारसिह वर्नी अरु स्वर्णकार ।
दत्त प्रयत्न तव धन्य रच्यो अपार ॥
श्रीमत् डरैंट प्रिसीपल धर्म्मधीर ।
हेथोर्नवेट गुणशील समान बीर ॥
न्यायोपकार रत विज्ञ उदार हीय ।
हो छात्रप्रेम परिपूर्ण उर त्वदीय ॥
श्री हटल्के अति प्रफुल्लित चित घोष ।
घश्यामदास शर्मा ... ...

श्रीटोम्स प्रिय प्रभृति सु देविदास ।
औरो अनेक जिनको सुयश प्रकास ।।
शार्दीय काल बहु दुख उठाय भारे ।
प्राचीन्नवीन सब मित्र इते पधारे ।।
कीन्हो प्रफुल्ल हम चित्त तव कृपा सो ।
थैंकस्तु थैंक्स तुमको सब भाँति यासो ।।

इङ्गलैण्ड भाषा उद्धार वारे । धरै सदा ये सु पूर्व को तेज ।
हिल्लोर के सग कहो पियारे । "चिरायु होये सजोन्स कोलेज ।।"

जिस समय प्रोफेसर सरकार सेण्ट जान्स कालेज छोडकर आगरा कालेज गये थे, उस समय भी सत्यनारायण ने कविता बनाई थी। प्रिन्सिपल डरैण्ट, श्रीयुत राजू, श्रीयुत त्रिवेदी इत्यादि के लिये सत्यनारायण ने ही अभिनन्दन-पत्र तैयार किये थे ।

विशप डरैण्ट की सम्मति

सन् १७ मे सत्यनारायणजी ने बी ० ए० परीक्षा दी, लेकिन फेल हो गये । एक दिन प्रिन्सिपल डरेण्ट साहब ने कहा—

"Passing B A is not the goal of a man's life,,

"कि केवल परीक्षा पास कर लेना ही मनुष्य-जीवन का उद्देश नही है। " इस बात को बहुतो ने एक कान से सुनकर दूसरे मे बाहिर निकाल दिया। पर सत्यनारायण पर उसका पूरा-पूरा असर हुआ और उन्होंने उसी वर्ष से कालेज जाना छोड दिया ।

विशप डरैण्ट (Right Reverant H. B. Durrant, M. A., D. D, Lord Bishop Lahore) ने अपने २० मार्च सन् १९१९ के पत्र में लिखा था—

"Satyanarain was a pupil of mine for some years at St john's College, Agra. I remember him well. I had a

strong personal regard for him as an earnest high-minded student with a delightful enthusiasm for his own subject, Sanskrit." अर्थात् "सत्यनारायण आगरे के सेण्ट जान्स कालेज मे कई बर्ष तक मेरे शिष्य रहे थे। मुझे उनका अच्छी तरह स्मरण है। मेरे हृदय म उनके लिये बडा प्रेम था; क्योकि वे एक उद्योगी और उदार चरित्र विद्यार्थी थे और अपने विषय सस्कृत के लिये उनके हृदय मे आनन्द-दायक उत्साह था।"

सत्यनारायण का जिक्र करते हुए सैण्टजान्स काल्ेज के प्रिन्सिपल रैवरैण्ड केनन डेविस साहब ने अपने २७ फर्वरी १९१९ के पत्र मे लिखा था—

One whose literary gift it was not in my power to appreciate, but whose sweetness of character no one could fail to admire"

अर्थात् "यद्यपि उनकी साहित्य-सम्बन्धी योग्यता के मर्म या महत्त्व को समझना मेरी सामर्थ्य के बाहर था, लेकिन कोई भी उनके स्वभाव की मधुरता की प्रशसा किये विना नहीं रह सकता था।"

सत्यनारायणजी के एक अन्य अध्यापक साहित्योपाध्याय श्री प० गणेशीलाल सारस्वत' लिखते है —

"आपने "सरस्वती" में श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट के लिखे हुए लेख मे पढा होगा कि उसने सैण्ट पीटर्स कालेज आगरा से एफ० ए० पास किया था। वहाँ उसको सस्कृत पढाने के लिये प्रिसिपल साहब ने मुझे नियत कर लिया था। वहाँ वर्ष-भर मैने उसे एफ ० ए० कोर्स की सस्कृत पढाई थी। उसी वर्ष वह उत्तीर्ण होगया। उस समय प्रसन्न होकर उसने मुझसे कहा था— पण्डितजी, और लोग तो विद्यार्थियो को केवल पढाते ही है; परन्तु आप पढाने के साथ ही साथ उनके उत्तीर्ण होने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना भी किया करते है। कई वर्ष मै इस कक्षा मे सेण्ट जान्स कालेज से अनुत्तीर्ण होरहा था। आपसे पढकर यहाँ उत्तीर्ण होगया।"

विद्यार्थी-जीवन की विशेष बाते

प्रकृति-प्रेम

बाल्यावस्था से ही सत्यनारायण बडे प्रकृति-प्रेमी थे । सौन्दर्य्य उनके मनको मुग्ध करता था । बचपन मे यदि कोई कुरूप स्त्री-पुरुष उन्हे गोद मे लेता तो वे खिन्न होजाते ओर सुरूप स्त्री-पुरुषो के पास जाने मे प्रसन्न रहते थे ।

सत्यनारायणजी के प्रकृति-प्रेम के कारण ही विद्यार्थी-जीवन में एक दुर्घटना होगई । वर्षा-ऋतु मे पानी बरसने के बाद वृक्षो के निर्मल पत्तो का सौन्दर्य उनके चित्त को बहुत आकर्षित करता था । अपने कई पद्यो मे उन्होने इसका वर्णन भी किया है ।

पावस-प्रमोद मे आपने लिखा है :—

> "धोये धोये पात तरुन के हरसावत मन,
> नेक झकोरत डार झरत अनगिनत अम्बुकन ।"

भ्रमर-दूत मे लिखते है—

> "अलबेली कहु बेलि द्रुमन सो लिपटि सुहाई ।
> धोये-धोये पातन की अनुपम कमनाई" ॥

एफ० ए० की परीक्षा थी । Poetry (पद्य) का पर्चा था । वर्षा हो गई थी । तड़के अपनी अटरिया की खिड़की खोलकर पढने बैठे तो नीम, इमली इत्यादि वृक्षो के स्वच्छ पत्ते दिखलाई पडे । बस फिर क्या था ! पढना छोड़कर निम्नलिखित कविता रच डाली—

> "पौन की सनक घन सघन ठनक चारु,
> चचला चिलकि सतदेव चहूँ चाली है ।
> बादर की कड़ी झडी लगी चहुँधा सो वर,
> बोलत पपैया "पिय पिय" प्रन पाली है ॥

आतुर सो दादुर उछरि दुर दुर देत
दीरघ अवाज बाज गाज मतवाली है।
सीतल प्रभात-बात खात हरखात गात,
धोये-धोये पातनु की बात ही निराली है ।।

इस कविता को बनाने और बार-बार पढने मे सत्यनारायणजी इतने मग्न होगये रहे कि उन्हे अपनी परीक्षा का ध्यान तक न रहा! परीक्षा मे बैठे, तो सही किन्तु कविता की धुन मे इतने मस्त थे कि पर्चा गडबड हो गया और इम्तहान मे पास न हो पाये।

जब सत्यनारायणजी नवी कक्षा मे पढते थे तो बाइबिल के इम्तहान मे एक सवाल आया था, जिसमें कई पदो की व्याख्या कराई गई थी। उनमे एक पद था—"Render unto Caesar what belongs to caesar and render unto God what belong's to God" सत्यनारायणजी ने कुल परचा छोड हिन्दू-शास्त्रानुकूल इसी पद की व्याख्या मे कापी भर डाली। Mr. B. W. Thomas, जो परीक्षक थे, कापी वापिस करते समय बोले—

"सत्यनारायण तुम एक नई बाइबिल बना डालो!" मन मौजी ही तो ठहरे!

श्रीयुत सत्यभक्तजी ने "विद्यार्थी" मे निम्नलिखित घटना लिखी थी —

हास्यप्रियता

"हास्य-प्रिय आप बड़े भारी थे। सदा प्रफुल्लित रहते थे। शायद ही कभी क्रुद्ध होते हो। छोटे-बडे बराबरवाले सब के साथ आप हास्यपूर्ण मधुर वार्तालाप करते थे। और तो क्या, गुरुजनो से भी आप अनेक समय हँसी कर बैठते थे। आपकी सुनाई हुई एक घटना हमे याद है। धाँधूपुर गाँव तीन साढ़े तीन मील दूर होने के कारण आप को कालेज पहुँचने मे प्राय. बिलम्ब हो जाया करता था। एक दिन प्रोफेसर ने नाराज होकर

पूछा—"तुम हमेशा लेट करके क्यो आते हो ?" आप ने उत्तर दिया—"ये सभी लड़के लेट करके (सोकर) आते है, मै क्या न्यारा ही लेट करके आता हूँ ?" प्रोफेसर साहब ने और भी अधिक नाराज होकर पूछा कि ये लेट करके कैसे आते है। तब आपने कहा कि मुझे तीन-चार मील से आना सो जब शहर के आनेवाले ही लडके देर करके आते है तब मेरा क्या विशेष अपराध है। प्रोफेसर साहब चुप रह गये।

पढ़ने का ढङ्ग

जब कभी आप कोई अच्छी किताब पढते तो बस उसी के कोने पर कविता करके उसके अच्छे-अच्छे भावो को प्रकट कर देते थे।

एक बार आप (Pleasures of life) नामक पुस्तक पढ रहे थे। उसमे टेनीसन का यह पद्य आया—

And here the singer for his art,
Not all in vain may plead,
The song that nerves a nation's heart,
Is in itself a deed.

आपने पुस्तक के कोने पर लिख दिया—

"लहरि उठे जातीय हृदय जा गीतहिं को सुनि।
सो अति अनुपम कार्य सरस है तासु प्रतिध्वनि॥

इसके बाद एक वाक्य था—"Poetry is a speaking picture and painting is mute Poetry"

आपने लिखा :—

"काव्य मनोरम चित्र विसद बतरात सुहावत।
चित्र अनूपम काव्य न बोलत तउ मनभावत॥"

सत्यनारायणजी को उक्त पुस्तक के वाक्य ऐसे पसंद आये कि एक के बाद दूसरे का अनुवाद उसी पुस्तक के कोने पर करते चले गये देखिए—

"Poetry is the centre in which all arts unite"

रुचिर रसात्मक काव्य केन्द्र अस अनुपम अभिनव।
आइ आप सो आप मिलहिं जहँ ललित कला सब॥

"Poetry is the fruit of genius"

प्रतिभा प्रभा प्रकासत ता को काव्य सुभग फल।

Poetry is the light of fife, the very image of life expressed in its eternal truth."

कविता जीवन-ज्योति सत्य की साँची मूरति।

× × ×

एक बार आप 'रत्नाकर' जी की "समालोचनादर्श" नामक पुस्तक पढ रहे थे। झट आपने उसी के पृष्ठ पर यह पद्य-रचना कर डाली—

काउ देश की उन्नति अवनति कहति जहाँ है।
कविता को सम्बंध अवसि ही होत तहा है॥
कवि गन निज कर्तब्य प्रकासे भाव यथारथ।
जासो सब बिधि सधे देश स्वारथ-परमारथ॥
कठिन परीक्षा समय उपस्थित सामी तासो।
कविता सविता को विकाश अब चहियतु जासो॥
अविचल ईश्वर भक्ति भ्रातृ अनुराग पसारो।
अरु भविष्य मे होइ अटल विश्वास हमारो॥

× × ×

स्वतंत्रता समता सहयोगिता पियारी
सकल हृदय में करैं आइ निज निज उजियारी।
काव्य कला मर्मज्ञ परम हिन्दी हित आकर॥
"समालोचनादर्श" माँहि भासत रैतनाकर।

इस प्रकार सत्यनारायण जी के विद्यार्थी-जीवन पर दृष्टि डालते हुए हमे उनके कवित्व-प्रेम और कवित्व-शक्ति का उत्तरोत्तर विकास होता हुआ दिखायी देता है। सच तो यह है कि उनका जीवन ही कवितामय था। अपनी कविता कला द्वारा उन्होने समाज ओर साहित्य की क्या-क्या सेवाये की, इसका वर्णन अगले अध्याय मे किया जायगा।

समाज-सेवा और साहित्य-सेवा

(सन् १९१०—१९१६ फ़रवरी)

सत्यनारायणजी ने मार्च सन् १९१० मे कालेज छोड दिया था। इसके पश्चात् वे केवल आठ वर्ष जीवित रहे। उनका विवाह फरवरी सन् १९१६ मे हुआ था। विवाहोत्तर काल को वे अपनी Literary death अर्थात् "साहित्यिक मृत्यु" कहा करते थे। इस प्रकार सत्यनारायण की प्रतिभा को विकसित होने के लिये केवल ६ वर्ष का समय मिला, अर्थात् मार्च १९१० से फरवरी १९१६ तक। इन ६ वर्षों मे सत्यनारायणजी ने जिस नि.स्वार्थ भाव ओर जिस लगन से समाज तथा साहित्य की सेवा की उसी का यहाँ सक्षिप्त वर्णन किया जाएगा। यह पहले ही कहा जा चुका हे कि सन् १९०५ के स्वदेशी आन्दोलन से उन्होने अपनी कविता मे देशभक्ति के भाव भरने का प्रयत्न किया था। उस समय के पश्चात् की अधिकाश कविताओ से यह बात स्पष्टतया प्रकट होती है। सन् १९०७ ई० मे लाला लाजपतरायजी के आगरे आने पर सत्यनारायण ने उनके स्वागत मे निम्नलिखित पद्य बनाये थे—

> जय जय जग विख्यात बिमल भारत भुवि भूषण।
> जय स्वदेश-अनुरक्त भक्त नित अरि कुल दूषण॥
> जय निशङ्क निकलङ्क-पूर्ण भारत शशाङ्क वर।
> जय नीतिज्ञ सुजान वीर गम्भीर धीर धर॥
> जयति परीक्षित सुबरण सुन्दर सुलभ सुहावन।
> सकल गुप्त मन सुमन प्रेम गुन गहन गुहावन॥
> अग्रवाल-प्रिय अग्रवाल सौरभ सरसावन।
> कार्य शक्तिमयि देशभक्ति रस चहुँ बरसावन॥

परम पुण्य मति पूर्ण आप यश सो अनुरागत ।
प्रियतम लजपतिराय सुखद सब बिधि तव स्वागत ।।

हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिये अपील

जब माननीय प० मदनमोहन मालवीय श्रीमान् दरभगा नरेश के साथ हिन्दू-यूनीवर्सिटी के लिये चन्दा करने के लिये आगरा आये तब श्री राजा कुशलपाल सिह के सभापतित्व मे उनके स्वागतार्थ सभा हुई थी। उस सभा मे उपस्थित होने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ था। जब सभा समाप्त हो गई तो माननीय मालवीयजी की मोटरकार के पास मिर्जई पहने हुए एक नवयुवक खडा था, और मालवीयजी उससे बातचीत कर रहे थे। इसी नवयुवक ने मधुर स्वर मे उस सभा मे एक कविता सुनाई थी।

उस समय मेरे साथी किसी विद्यार्थी ने—मैं भी उन दिनो नवी कक्षा मे पढता था—मुझसे कहा था—'ये ही सत्यनारायण है।'' इस प्रकार पहले पहल तब मैंने दूर से सत्यनारायणजी के दर्शन किये थे। उस समय क्या मालूम था कि आगे चलकर मुझे इस सरल सोम्यमूर्ति की जीवनी लिखनी पडेगी। अस्तु, सत्यनारायणजी की उक्त कविता यहाँ उद्धृत की जाती है।

स्वागत यह सुख समय पुण्यमय, जो उछाह अति पागे।
आरज विविध कला कौशल कल भल विद्या अनुरागे ।।
पर-उपकार सुब्रत सुचि दीक्षित परम प्रेम रँग राचे।
जननी जन्मभूमि के नित नव सब बिधि सेवक साँचे ।।
तजि सुख दुख को ध्यान मान बिन हिन्दुन को सिरताजा।
परमोदार पुण्य मूरति श्रीदरभंगा-महाराजा ।।
सरल हृदय सहृदय सुख पोहन अखिल दुरित दल दूषन।
श्री सद्गुन गन ' सदन मदन मोहन मालवि कुल-भूषन ।।

तन सो धन सो मन वच क्रम सो जो आरज हितकारी।
स्वर्गादपि गरीयसी जिनकी भारत मातु पियारी॥
रचन भारती भवन बनावन अथवा जन मन भावन।
विश्वविदित हिन्दू-विद्यालय हिन्दू-गुन प्रगटावन॥

प्रान्त प्रान्त अरु नगर-नगर सो धनी गुनी जन भेटत।
वित अनुसार प्रजा का राजा सब सो दान समेटत॥
पालन निज कर्तव्य, आश करि, अति उमग सो छाये।
सब प्रकार प्रिय पूज्य अतिथि ये नगर आपके आये॥

उपजे या कुल शिव दधीच हरिचन्द आदि से दानी।
भुवि विश्रुत मोरध्वज नृप से जग जिन कहति कहानी॥
ता आरज हिन्दू-कुल के तुम पूत सपूत कहाओ।
उचित समय यह उचित भाँति सो निज कर्तव्य निभाओ॥

ध्यान-पूर्वक यदि सोचो तो जो तुम याहि यथारथ।
याही मे तुव सब बिधि स्वारथ याही मे परमारथ॥
ऋषि-मुनि की सन्तान उठो अब देखौ भयो सबेरो।
अपनी दशा मिलाय और जातिन सो जग मे हेरो॥

सभ्य समाज सिरोमनि पहिले रह्यो आपको भारत।
विद्या बिन जल-हीन मीन सम वही हाय अति आरत॥
प्रकृति-प्रसाद सुलभ सब याको पै बिद्या-बल नाही।
चितवत जासो औरन को मुख, दुख भोगत जगमाँही॥

जा कारन निज वृद्ध भारती माकी सेवा कीजै।
तन मन धन सो याहि पुष्ट करि जग दुर्लभ यश लीजै॥
ये सुन्दर आदरश विराजत प्रियतम इनहि निहारो।
सब को जो प्रिय काज ताहि सब पूरन भाँति सँवारो॥
कृपा कटाच्छ-कोरही सो जो सारि सकत सब काजा।
अहो भाग्य प्रिय बन्धु तिहारे द्वार पधारे राजा॥

हिन्दू जाति भलाई के हित भूपति घर-घर जावे।
उज्ज्वल कर्मयोग को ऐसो उदाहरण कहँ पावें॥
भारत को सौभाग्य-सूर्य्य वह निरखहु चिलकत आवत।
नसि अज्ञान सघन तम रासहि ज्ञान उजास जगावत॥
जहाँ स्वयं सम्राट जार्जपचम विद्या के प्रेमी।
का तुम कियो प्रजा बनि उनकी जो न होहु अस नेमी॥
वही सकल यह देस सुहावन पावन गुन-गन आलय।
वही गगन-चुम्बित भारत को उज्ज्वल उच्च हिमालय॥
गगा यमुना वही वही पूर्वज ऋषि मुनि के नामा।
धर्म-धीरता दान-वीरता वही अटल अभिरामा॥
पै कछु को तुम कछु देखियत निज-निज धुनि मे फूले।
रैनि अविद्या अँधियारी मे प्रियपूर्वज पथ भूले॥
चेत-हेत तुम्हरे ही यह सब रच्यो अमित आयोजन।
जानहु निज कर्तव्य सकल तुम याको यही प्रयोजन॥
कठिन परीक्षा समय आज है हिन्दू जाति तिहारो।
कहँ लो या मे चहिय सफलता उर निज तनिक बिचारो॥
शत्रु-मित्र सब ठाढ़े देखत चलत तिहारी स्वासा।
किंतु जबैलो स्वासा तब लो तुव जीवन की आसा॥
वरणाश्रम अरु जाति-पाँति को भेद सकल बिसराई।
हिन्दु-विश्व-विद्यालय की तुम सब मिलि करहु सहाई॥
निज भविष्य की भाग्य-डोरि अपने ही कर मे धारहु।
चाहे तुमहि सँवारहु याको चाहे तुमहि बिगारहु॥
अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष को शिक्षा अनुपम द्वारा।
जाही सो जग आत्मशक्ति की जगमग ज्योति अपारा॥
जामे सब संजोग देहु मिल यहि सों त्यागि विवादा।
हिन्दू-हिन्दी-हिन्द देश को जो चाहो मर्यादा॥

प्रति पद पावन हिय-हरसावन भावन परम पियारे।
मंजु मनोहर मधुर मालवी भारत मुख उजियारे॥
धर्म धैर्य अवतार नृपतिवर दरभंगा भुवपाला।
ब्रिटिश मान्य अरु नित स्वदेश हित अनुपम दीनदयाला॥

जासो ये पाहुने हमारे निज श्रम को फल चाखैं।
पूरन होय सकल विधि सो तिन उत्तम हिय अभिलाषैं॥
सकल ओर 'अभ्युदय' सूर्य की किरन माल परकासैं।
हृदय सरस सर ओज भरे नित मोद सरोज निकासैं॥

जिमि बसन्त के राज मुदित मन वृच्छावलि चहुँ फूलैं।
नेह निरन्तर मगन रहै सब निज पतझड़ दुख भूलैं॥
तिमि सुठि सुजन रसाल फरैं मृदु मंजु मजरी छावैं।
उपकृत मधुप रसिक गुजारत तिनको सुयश सुनावैं॥

सद्विद्या रुचि लता लहलही तिनहिय सो लिपटावैं।
दान सुफल भारनि सों लचि लचि भाव विनीत जनावैं॥
लहि आश्रय डहडही डार जो देश-भक्त पिक बोलैं।
धर्म कर्म उपदेश ध्वनी करि प्यारी करहि कलोलै॥

निरमल पर उपकार तरंगनि तरल तरग सुहावैं।
विद्या विनय विवेक प्रकृति छबि निज वैभव अधिकावैं॥
सुन्दर ज्ञान प्रभाव बहुरि जिय मे आनद जगावै।
दुख को हो बस अन्त सवै विधि शोभा मनहि लुभावैं॥

परमपिता जगदीश बनावौ हमहि स्वधर्म-परायण।
यही सदा माँगत बिनवत प्रभु तुम सो सत्यनारायण॥

बाबा रघुबरदास की मृत्यु

कहा जाता है कि जब सत्यनारायण बाल्यावस्था मे बहुत बीमार हो गये थे और उनकी असहाया अनाथ मा निराश हो गई थी, तब बाबा रघु-

वरदास ने औषधि देकर सत्यनारायण की जीवन-रक्षा की थी। इसके बाद ही सत्यनारायण की मा वृद्ध बाबाजी की शरण मे रहने के लिये, धाँधूपुर चली गई थीं। बाबाजी ने ही सत्यनारायण को पढाया-लिखाया था अतएव सत्यनारायण उनके बहुत ऋणी थे।

"मर्यादा" कार्यालय प्रयाग से, २३-१-१९११ के अपने पत्र मे सत्यनारायण ने बाबाजी को लिखा था--"मै भाग नही आया हूँ, न मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन करके आया हूँ। मै भला किस बात पर आपकी सेवा से विरत होता! हाय! इस शरीर ने आपको जन्म से दु ख-ही-दु ख दिये है; और अब भी इसी के कारण आप सुख से सो भी नही सकते! आपके अपराध और मै क्षमा करूँ! हरे-हरे!! आपने जो उपकार इस शरीर के साथ किया है उसको क्षण-मात्र को भी भूल जाने से "नहि निस्तार कल्प सतकोटी"। जब तक शरीर मे प्राण है, यह सत्यनारायण आपही का सेवक है--आपके ऋण से कभी कल्पान्त मे भी उऋण नही हो सकता।

इसके बाद इसी पत्र मे सत्यानारायण ने सुखदास, द्वारिका, जानकी चिरंजी, घूरेराम, रामजीत, जौहरी, भवानी, गोबिन्दा इत्यादि ग्रामीण मित्रो से प्रार्थना की थी कि आप लोग ऐसा यत्न करें जिससे बाबाजी कोई सोच न करे।

इस पत्र से प्रकट है कि बाबाजी के लिये सत्यनारायण के हृदय मे कितनी श्रद्धा थी। जुलाई सन् १९१२ मे बाबा रघुवरदास का देहान्त हो गया। उस समय सत्यनारायण को अत्यन्त दुःख हुआ था।

बाबाजी की मृत्यु के समय समीपवर्ती ग्रामो के ब्राह्मणो मे फूट फैली हुई थी। उस समय सत्यनारायण ने पचो के नाम जो चिट्ठी लिखी थी वह नीचे उद्धृत की जाती है--

श्री

श्रीमान्

मेरे दुर्भाग्य से मेरे आराध्यचरण परमपूज्य गुरुदेव श्री ६ युक्त रघुबरदासजी का देवलोक होगया है। उनके त्रयोदश की तिथि असाढसुदी

द्वादशी निश्चित हुई है। उस अवसर पर उनके सभी सज्जन प्रेमियो का कृपया यहाँ पधारना परमावश्यक है। यद्यपि उनकी स्थिति सब के साथ ही थी किन्तु फिर भी किसी जातीय रागद्वेष से उन्हे सर्वथा मुक्त समझना उचित है। इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए सब भेदभाव को भूलकर यथासम्भव सब सज्जनो की सेवा मे निमन्त्रण भेजने का प्रयोजन है। आजकल ब्राह्मण जाति की शोचनीय दशा सब पर विदित है। उस पर भी परस्पर विरोध के कारण विप्र-वश की शक्ति का ह्रास प्रतिदिन होता जाता है। ऐसे ही विरोध के लक्षण, निमत्रण देते हुए, दुर्भाग्य से तोरे ग्राम मे मुझे लक्षित हुए है।

सर्व सम्मति से निश्चय हुआ है कि जिन सदाशय पचो की उपस्थिति मे, इस विद्रोह-बीज का आरोपण हुआ था, उन्ही के फिर सम्मेलन होने पर उन्ही की आज्ञानुसार यह विद्रोह-विष-वृक्ष समूल नष्ट किया जा सकता है। ऐसी ही आशा के प्यारे प्रकाश से उत्साहित होकर आप सब सज्जनो के चरण कमलो मे सादर निवेदन है कि आप यथा समय स्वय अथवा अपना कोई विश्वास-पात्र प्रतिनिधि भेजकर इन उपस्थित विघ्नबाधाओ को दूर करते हुए मेरे भाव और परिश्रम का यथोचित फल देकर कृतार्थ कीजिये। आशा है कि आप आज ४ बजे सायकाल के समय मेरी ही कुटी को पवित्र करने का कष्ट अगीकार करेंगे।

सबका दास
विनीत
सत्यनारायण

अफ्रिका-प्रवासी भारतीयों के प्रति सहानुभूति

जिस समय दक्षिण अफ्रिका मे सत्याग्रह-आन्दोलन चल रहा था उस समय सत्यनारायणजी ने 'एक भक्त' के नाम से निम्नलिखित कविता 'प्रताप' मे छपवाई थी—

तुव जस विमल कहाँ लो गावैं।

जब जब आवति सुरति तिहारी नयन नीर भरि आवैं ।।
बहु बरसनु सो कठिन जतन करि—यदि किंचित नहि भूलो—
यह भारत-जातीय-समिति जो कर न सकी अजहू लौ ।।
सो निज भेद-भाव तजि, आरज जन जीवन धन प्यारी।
देश धरम मर्यादा थापी तुम सब जन हितकारी ।।
हिन्दू और अहिन्दू अन्तर, यदि वे भारतवासी ।
मेटि मुदित तजि स्वार्थ सकलबिधि तुम निज सुमति प्रकासी ।।
सहन शक्ति अरु स्वावलम्ब को उदाहरन दरसायो ।
लखि तुव आतम-त्याग मनोहर सब ससार लजायो ।।
अन्य कठोर जाति इक ऊपर दूजे देस बिरानौ ।
सकल भाति असहाय तऊ तुव धीरज नाहि हिरानौ ।।
तन मन धन सरबस सुत दारा सबको मोह विहायो ।
केवल भारत जन नैसर्गिक सत्व सुभग अपनायो।
तप्तस्वर्ण सम जगमगात नित राखत दृढ विश्वासा ।
श्रीनारायण पूर्ण करै तुव प्रेम-भरी प्रिय आसा ।।

उसी समय 'एक सभासद भारतीभवन फीरोजाबाद' के नाम से 'पति-पत्नी-सवाद, शीर्षक एक कविता भी आपने 'प्रताप' मे प्रकाशित कराई थी। वह यह है—

पति-पत्नी-संवाद

१

नाथ ! अब चलिये अपने देश ।

देख यहाँ की क्रूर नीति को होता हृदय कलेश ।।
निभ सकता नहि यहाँ हमारा पति पत्नी सम्बन्ध ।
बच्चों के भी वारिस बनने मे पड़ता प्रतिबन्ध ।।

प्यारे ! बस हो चुका तुम्हारा काम, न करिये देर ।
कौन सुनेगा, किससे कहिये, छाया अति अन्धेर ।।

२

प्रिये ! यह कापुरुषो का काम ।
अभी चलैं, पर स्वबान्धवो का होगा क्या परिणाम ?
कहाँ जॉयगे करेगे कैसे वे निष्क्रिय प्रतिरोध ?
राजनीति का जिन्है न प्यारी, हाय ! जरा भी बोध ।।
यही रहैंगे निज स्वत्वो के लिए करेगे युद्ध ।
चाहे प्राण रहो या जाओ सोचेगे न विरुद्ध ।।
जननी जन्मभूमि का भारी चलने मे अपमान ।
ऐसे अत्याचारों से क्या खो दे अपनी आन ?
कठिन परीक्षा समय हमारा उचित न करना भूल ।
इसमे जय होते ही होगा हमे दैव अनुकूल ।।
सदा सत्य की जय होती है यह निश्चय विश्वास ।
पूरा होगा निर्भय रहिये, मत हूजिये निरास ।।
भूल व्यक्ति-गत बिथा, जानि के इसे देश का काज ।
जगदीश्वर सब भला करेगे, वही रखेगे लाज ।।

यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक है कि यह कविता उस वार्तालाप के आधार पर रची गई थी जो महात्मा गाधीजी तथा माता कस्तूरबा के मध्य हुआ था। उन्ही दिनो सत्यनारायणजी ने 'गाधी-स्तव' शीर्षक कविता 'प्रताप' मे छपवाई थी। कुछ परिवर्तन करके यही कविता उन्होंने इन्दौर मे अष्टम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर भी पढी थी। वह कविता सत्यनारायणजी के उक्त सम्मेलन मे सम्मिलित होने के प्रसंग मे उद्धृत की गयी है।

कामागाटामारू की दुर्घटना

बाबा गुरुदत्तसिंह और उनके साथी कामागाटामारू जहाज से कनाडा गये थे, परन्तु वहाँ से लौटा दिये गये, उस घटना से देश मे बड़ा आन्दोलन हुआ। सत्यनारायणजी ने उस समय "श्री गुरुनानक के यात्री" के नाम से निम्नलिखित कविता 'प्रताप' मे प्रकाशित कराई थी।

करुणा-क्रन्दन

रे हतभागी भारत देश।
कितना और अधिक बाकी है सहना तुझे कलेश॥
सोचा था जब यहाँ नृपतिमणि पञ्चम जार्ज पधारे।
धन्य आज से हुए परम हम जागे भाग हमारे॥
स्वीकृत किया हमे श्रीमुख से अपनी प्रजा पियारी॥
शिक्षा का उत्साह दिलाया दी आशाये सारी॥
ब्रिटश-सुराज मात्र की जैसे और प्रजा सुख पावै।
वैसा ही अधिकार कदाचित हमको भी मिल जावै॥
वर्ण-भेद का नही लगेगा अबसे कोई रोग।
विमल नागरिक स्वत्व प्राप्त कर भोगेगे सुख भोग॥
बृटिश-पाणि-पल्लव-छाया मे जी चाहे जहँ जावैं।
बहु दिन नत निज सिर ऊँचा कर फिर इक बार उठावैं॥
निरपराध हमको यदि कोई अबसे कहीं सतावै।
तो उसके निरदय पञ्जो से 'ग्रेट ब्रिटेन' बचावै॥
इन आशाओ के सपनों ने जैसे जी बहलाया।
कान पकड़ 'कैनेडा' के लोगो ने हमै जगाया॥
जग को जो आश्रय देते थे सहकर भी दुख भारे।
फिरैं निराश्रय उन ऋषियो के सुत यो मारे-मारे॥
होता अगर हमारे सिर पर कोई हितू हमारा।
रक्खा रह जाता बस घर मे यह कानून तुम्हारा॥

जहाँ जाँय तहँ बडी घृणा मे बल से जाँय निकाले ।
प्रजा भूप निर्बल ऐसे की कहलाते हम काले ।।
काले हैं सन्देह नही हम किन्तु हृदय के गोरे ।
उच्च उदार सभ्य भावो से है नहि बिलकुल कोरे ।।

जब जब जन्म देइ जगदीश्वर तब तब हम हो काले ।
उन गोरो से सदा बचावै जो स्वारथ मतवाले ।।
ऐरे गैरे पचकल्यानी चले हिन्द मे आते ।
हम आरत भारतवासी कहिँ पैर न रखने पाते ।।
इस जहाज़ के लौटाने मे हमै न कुछ सकोच ।
पर इङ्गलैण्ड कलंकित होगा यही हृदय मे सोच ।।
जो इस तरह तरह दे देगा सम्मुख नही अडेगा ।
तो प्रचण्ड सब रोष सिंहका जग मे सिथिल पडेगा ।।

होते हुए नाथ के सिर पर हिन्दी जाति अनाथ ।
करै सहानुभूति नहि कोई भुविपर इसके साथ ।।
रहना या मरना है इसको कठिन प्रश्न ये भारी ।
एक इसी के सुलझाने से सुलझे उलझन सारी ।।
ऐसा क्यो कमजोर बनाया हमको निरदय दैव ।
जो इस भाँति भोगना—पडता हमको दु.ख सदैव ।।
कठिन परीक्षा समय हमारा आगे नहो टलेगा ।
बिना जाँच मे पूरा उतरे अब नहि काम चलेगा ।।

"दैव सहाय उसे देता है जो निज करै सहाय" ।
इसमे रख विश्वास हमै मी करना उचित उपाय ।।
तकते हुए पराये मुख को अब तक बहु दुख भोगा ।
अब से मारग सुगम आप ही अपना करना होगा ।।
कुछ चिन्ता नहि जो विपदा ने इतना हमै सताया ।
जगमगाय उतना ही सुबरन जितना जाय तपाया ।।

एक प्राण हो उच्चस्वर से यदि हम रुदन सुनावें।
सोते हुए शेष-शायी भी जगकर दौड़े आवें॥
उनसे ही कहना यथार्थ है वे सच्चे महाराज।
अपनी जन्मभूमि का हमको जान रखेंगे लाज॥

"श्रीगुरु नानक के यात्री"

रवीन्द्र-वन्दना

जब बिश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आगरे पधारे थे, तब सत्यनारायणजी ने उनकी सेवा में निम्न लिखित कविता भेट की थी।

रवीन्द्र-वन्दना

जय-जय कवि-कुल-तिलक भारती देवि उपासक।
रुचिर रम्य सद्भाव सुभग कर निकर प्रकासक॥
जय-जय भारत-कीर्ति धवल धुज जग फहरावन।
विद्युत इव जातीय प्रेम नस-नस लहरावन॥

जय बिश्वविदित विजयी प्रमुख, सौम्य मूर्ति तव लसत नित।
जिहि लखि-लखि प्रचुर विदेश जन, होत नेह नत चकित चित॥१॥

जय जय सहृदय सदय सुहृद नय नागर नीके।
बिमल बोल अनमोल चखावन हार अभी के॥
सुखद 'ब्रह्मविद्यालय' 'शान्तिनिकेतन' थापक।
पुण्य प्रभा प्रतिभा के पूरन प्रियतम ज्ञापक॥

जय जयति बंग-साहित्य के, उन्नतकर अनुपम अमल।
निज कविताकर विस्तारि वर, विकसावन जन हिय कमल॥२॥

सद्शिक्षा-आराधन 'साधन' गुन गन आगर।
योगी उपयोगी कारज कृत सुफल उजागर॥

विशद विवेक विकास प्रकास करत अति सुन्दर ।
महा महिम भुवि कोविद उर अधिवसत पुरन्दर ।।

यासों मंजु 'रवीन्द्र' तव, नाम सुभग सार्थक मधुर ।
जग अबके अखिल कबीन मे, लसत आप परबीन धुर ।।३।।

जैसी करी कृतारथ तुम अँगरेजी भाषा ।
तिमि हिन्दी उपकार करहुगे ऐसी आशा ।।

एक भाव सो रवि ज्यो वस्तुनि वृद्धि प्रदायक ।
बरसत सरसत इन्द्र सकल थल त्यो सुरनायक ।।

'रवि' 'इन्द्र' मिलै दोउ एक जहँ, तउ अचरज कैसो अहै ।
यह प्यासी हिन्दी चातकी, तव रस को तरसत रहै ।।४।।

धन्य धन्य वह पुण्य भूमि जिन तुम उपजाये ।
धन्य धन्य वह निरमल कुल तुमसे सुत जाये ।।

धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे ।
धन्य धन्य हमहूँ सब दरसन पाइ तिहारे ।।

अस देहिँ दिव्य 'देवेन्द्र' वर, करहु देश-सेवा भली ।
यह अर्पित तव कर-कमल में, सत्य सुमन गीताञ्जली ।।५।।

सन् १९२१ मे मैने शान्तिनिकेतन मे श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की सेवा मे उपस्थित होकर उन्हें सत्यनारायण का वह चित्र दिखलाया, जो हृदय तरग मे छपा है और पूछा—"क्या आपको सत्यनारायण का कुछ स्मरण है ?" कविवर ने उत्तर दिया—"हाँ, वही हिन्दी-कवि जिन्होने मेरे नाम के दोनो शब्दो को बड़ी खूबी के साथ अपनी कविता मे लिखा था ।" कविवर का अभिप्राय "रवि' 'इन्द्र' मिले दोऊ एक जहँ तउ अचरज कैसो अहै" इत्यादि पंक्तियो से था। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि कविवर को छह-सात बरस पहले की बात किस तरह याद रही । सत्यानारायण का मधुर स्वर

और कोकिल कंठ ही इसका मुख्य कारण था। जिसने उनके मुख से उनकी कविता सुनी वह उसे भूला नही।

सत्यनारायणजी की बीमारी

सन् १९१२ के अन्त मे सत्यनारायणजी को श्वास की बीमारी हो गई थी। इस बीमारी के कारण उनको बहुत कष्ट उठाना पड़ा। सन् १९१३ मे उन्होंने अपने मित्रो को जो चिट्ठयाँ लिखी थी उनमे प्राय अपनी इस बीमारी का ज़िक्र किया। भारतीभवन, फीरोजाबाद के प्रबन्ध-कर्ता लाला चिरजीलाल को उन्होंने १३ जून के पत्र मे लिखा था—'मेरी तबियत वैसी ही हैं। खाँसी कुछ जोर और पकड गई। सोते-सोते साँस—नही ऊँची-ऊँची साँस वेग से चलती है। उससे सो भी नही सकता।''

२० जुलाई सन् १९१३ के पत्र मे आपने फीरोजाबाद के डाक्टर लक्ष्मीदत्त को लिखा था—

भैया लक्ष्मीदत्त,

ग्रसि लयो पुनि मोहि बुखार ने,
नहिं गयो यहि कारन आगरे।
अधिक द्योसनि सों कछु ना परी,
खबरि उत्तर-रामचरित्र की।
किन्तु बुखार-प्रताप सो, कास-स्वास सताप।
बहुत अश मे अब भयो, न्यून आपसों आप॥

फिर १० सितम्बर के पत्र मे आपने लाला चिरंजीलालजी को लिखा था—"खाँसी चली जाती है। थाइसिस रोग मिटाने मे निपुण तथा इस कार्य मे परीक्षोत्तीर्ण यहाँ पर परम प्रसिद्ध दो डाक्टरों के पाले पड़ा हूँ—Assistant civil surgeon, मुहम्मद इस्माइल तथा स्वतंत्र जीविका-भोगी डाक्टर मुरारीलाल"। १४ मई १९१४ को आपने उक्त सज्जन को लिखा था—"मेरी खाँसी और साँस का हाल पूर्ववत् ही समझना चाहिये। ऐसी

दशा मे भी 'भवभूति' के नाटक 'मालती-माधव' का अनुवाद कर रहा हूँ। पूर्ण होना भगवान के हाथ है।"

८ जून १६१४ के पत्र मे सत्यनारायणजी ने मुझे लिखा था—"आजकल ग्रीष्मकाल मे सास का प्रकोप है।"

सत्यनाराणजी की गुरुबहन श्रीजानकी देवी ने मुझसे कहा था कि श्वास की बीमारी के दिनो मे रात-रात-भर उन्हे नीद नही आती थी। माथा जमीन पर रखकर बैठे रहते थे। उसी समय उन्होने यह कविता की थी—

बस, अब नहि जाति सही।
बिपुल बेदना बिविध भाति जो तन-मन व्यापि रही।।
कबलो सहें, अवधि सहिबे की कछु तो निश्चित कीजे।
दीनबन्धु यह दीनदसा लखि क्यो नहिं हृदय पसीजे।।
बारन दुख टारन तारन मे प्रभु तुम बार न लाये।
फिर क्यो करुणा करत स्वजन पै करुणा-निधि अलसाये।।
यदि जो कर्म-यातना भोगत तुम्हरे हूँ अनुगामी।
तो करि कृपा बतायो चहियतु तुम काहे के स्वामी।।
अथवा विरद बानि अपनी कछु कै तुमने तजि दीनी।
या कारण हम सम अनाथ की नाथ न जो सुधि लीनी।।
बैद बदत गावत पुरान सब तुम त्रय ताप नसावत।
शरणागत की पीर तनक हूँ तुम्हे तीर सम लागत।।
हमसे शरणापन्न दुखी को जाने क्यो बिसरायो।
शरणागत-वत्सल सत यो ही कोरो नाम धरायो।।

आराम कैसे हुआ ?

पडित सत्यनारायणजी ने अपने स्वास्थ्य-लाभ करने का वृत्तान्त एक चतुर्वेदी सज्जन को इस प्रकार सुनाया था—"मै अपनी बीमारी की दशा मे एक दिन अपने गॉव से कार्य्यवश किसी दूसरे गाँव जा रहा था। मार्ग में रात्रि हो जाने के कारण, बीच के एक गाँव मे ठहर जाना पड़ा।

मुझे खाँसी का प्रबल रोग था और उसने मेरे फेफडो को इतना बिगाड डाला था कि मुझे रात दिन चैन नही पडता था। मार्ग की थकान मे उस दिन खाँसी का वेग और भी बढ गया—यहा तक कि मै सीधा नही लेट सकता था। जब छाती के सहारे उलटा लेटता था तब पल-भर के लिये कल मिल जाती थी और फिर वही हाल हो जाता था। इस प्रकार मै एक गाँववाले की चौपाल मे पडा दु:ख की साँसे ले रहा था। ईश्वर की माया, उसी दिन मेरे दु ख का अन्त होनेवाला था। एक वृद्ध ग्रामीण कृषक ने मेरे पास आकर मेरा सब हाल पूँछा और मुझे धीरज देकर कहा—"घबडाने की बात नही, जल्दी अच्छे हो जाओगे। सबेरे मैं दवा बता दूँगा सो बना लेना और अभी के लिये मै दवा लाये देता हूँ।" ऐसा कहकर वह बूढा वहाँ से उठा और कोई ५ मिनट मे ही दवा लेकर वापस आया। मैने थोडी सी दवा खाली और कुछ दूसरी बार के लिये रख ली। खाने मे मुझे कुछ नमक कैसा स्वाद जरूर जाना पडा। पर न जाने वह बूढा मेरे लिये साक्षात् धन्वन्तरि ही था। जो खाँसी अनेक डाक्टरो और वैद्यो के हजार प्रयत्न करने पर भी नही रुकी थी वह केवल आध घटे मे ही रुक गई। मै थका तो था ही खासी बन्द होते ही गहरी नीद मे सो गया। मुझे सबेरे तक बीच मे दवा खाने की जरूरत नही पडी। सबेरा होते ही उस बूढे ने आकर मेरा हाल पूछा। मैने उसकी दवा की खूब सराहना की और दवा बतला देने की प्रार्थना की। उस बूढे ने बडी खुशी से मुझे दवा लिखा दी और अन्त मे बबूल के पेड की ओर इशारा करके कहा—"देखो यह तुम्हारे रोग के लिये रामबाण है। जैसे बने वैसे इसका सेवन करो। इसकी छाल को खाना, उसी को औटा कर पानी पीना और इसी की दतौन रोज करना। जब मरे हुए जानवर का निर्जीव चमडा बबूल की छाल से मजबूत और पक्का हो जाता है तब क्या तुम्हारे फेफड़ो का जीवित चमड़ा मजबूत नही होगा?" मैने उस बूढे के आज्ञानुसार दवाई बनाली और उसका सेवन करने लग गया। आज कुछ, कल कुछ—थोड़े ही दिनो मे बिलकुल भला-चङ्गा हो गया।"

इसी कारण सत्यनारायणजी को बबूल-वृक्ष बहुत प्यारा था। वे उसे 'सजीवनमूरि' कहा करते थे। प्रेम-मग्न होकर कभी-कभी बबूल वृक्ष की परिक्रमा भी करते थे और उसके गुण-वर्णन करते-करते मुग्ध हो जाते थे।

'विज्ञान' मे आपने बबूल की उपयोगिता पर एक लेख भी लिखा था और उसमे उस दवा का भी उल्लेख था जिसने आप को लाभ पहुँचाया।

श्रीमान् गोखले के स्वर्गवास पर कविता

सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पद्य माननीय गोपाल कृष्ण गोखले के स्वर्गवास पर लिखे थे—

श्रीगोखले

परम पूज्य सतकर्म-निष्ठ नय-नीति सुनागर।
अति उदार चित नित नव-ज्ञान प्रकास उजागर॥
जासु बचन बरषा सो नवल हृदय लहराये।
आक जवास क्रूर जन पजरे मनहिं लजाये॥

शिक्षा अनिवार्य प्रचार-हित कृत प्रयत्न पुरुषार्थ पर।
निस्पृह नि स्वारथ द्विजकमल हस-वस-अवतस वर॥१॥

श्रीरानाडे शिक्षा की प्रिय प्रतिमा निरमल।
भारतीय-जातीय-समिति-कर प्रभा समुज्ज्वल॥
सदा रह्यो दुरभेद्य प्रबल जाको यह निश्चय।
भारत नित ईश्वरमय ईश्वर नित भारतमय॥

यो देशभक्ति हरिभक्ति मे, रचि अभिन्नता चारु तर।
गोपालकृष्ण सत्कथन सो नाम, रुचिर चरितार्थ कर॥२॥

कुली-प्रथा उच्छिन्न करन जिन शक्ति प्रकासी।
जाके अमित कृतज्ञ प्रवासी भारतवासी॥

नित प्यारे स्वदेश हित कृत तन मन धन अरपन।
आत्मत्याग आदर्श दूरदर्शी अविचल प्रन ।।

जिह प्रतिभा गुन शासक सजग, शासित समयोचित फले।
जग विदित कर्मयोगी सदय, सहृदय श्रीयुत गोखले ।। ३ ।।

अब सो अन्तरधान भये पौरुष विकास मे।
जिमि प्रभात की प्रभा मिले पूरन प्रकास मे ।।
जननि जन्म भुवि गोद यदपि तिन देह सिरानी।
गूँजति उर नभ अजहु दिव्य वह विद्युतबानी ।।

सम्भव इन धन असुआन सन, नेह लता विस्तीर्ण हो।
अभिनव प्रसून सन्ताप हर, महाप्राण अवतीर्ण हो ।। ४ ।।

नहीं गोखले जगत जगत आदर्श पियारौ।
भारत जग जीवन जहाज हित ध्रुव को तारौ ।।
स्वत्व और अस्तित्व काज जब करत समर हम।
उत्साहित सो करत देत आदेश अनूपम ।।

निज स्वार्थ भेद बिसराय सब, मिलिये करि स्वविरोध-इति।
त्रिधि बद्ध समुन्नत कीजिये, भारतीय-सेवक-समिति ।। ५ ।।

अब तो हिन्दू सकल भेद बन्धन निरवारौ।
विपति जनित निज बिषम वेदना बि्ुल बिचारौ ।।
यदि तुम थापन चहत गोखले कीर्तिस्मारक।
साँचेमन सो तो शिक्षा के बनो प्रचारक ।।

जिहि लहि चहुँ भारत युवक, नवजीवन जागृति सचरैं।
उर अविकल धीरज धारि दृढ, सत्य देश-सेवा करैं ।। ६।।

श्रीसरोजिनी-षट्पदी

जब श्रीमती सरोजिनी देवी आगरे पधारी थी तब आगरा कालेज में उनके स्वागत में सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित कविता पढी थी —

श्रीसरोजिनी-षट्पदी

जय जय सहृदय सदय सुहृद कवि गुन गन आगरि ।
नय नागरि प्रिय परम गोखले कीर्ति उजागरि ।।
कोमल कवित कलाप अलापिनि नित नव नीको ।
लोल बोल अनमोल चखावन हारि अमी की ।।

जय भेद भाव के हरन को, सुकृत सुदृढ सकल्प वर ।
चित चकित करनि मुद भरनि नित, निज दिखाइ प्रतिभा प्रखर ।।१।।

आरज सुजस सुगध सुहावन विपुल विकासिनि ।
विहँसत अधर सुदल सो अनुपम छटा प्रकासिनि ।।
नव जातीय सरोवर की सुखमा सरसावनि ।
प्रेम प्रस्फुटित पुण्य प्रभा प्यारी दरसावनि ।।

नित मन बच क्रम सो रुचिर तर, नूतन भाव प्रयोजनी ।
प्रिय यथार्थ चरितार्थ तव, यासो नाम "सरोजनी" ।।२।।

लखि तव प्रफुलित दर्स हमारो होत सुनिश्चय ।
दुख की बीती रेनि उदित अब सूर्य अभ्युदय ।।
कर्म भीरु उल्लूक लुकन अब लगे अभागे ।
देश भक्त वर भ्रमर, भ्रमत गुजारन लागे ।।

श्रुति मधुर मुदित द्विज गान को, छाइ रह्यो उत्कर्ष है ।
अभिनव आभा सो पूर्ण यह, देखहु भारतवर्ष है ।। ३ ।।

निरुत्साह हेमन्त और पतझर के मारे ।
सके न मछु करि बिबस यहाँ के लोग बिचारे ।।

असन बसन बिन कम्पत तन अरु अस्फुट भाषा।
किन्तु जियावति तिन्है एक बस प्यारी आशा॥

ऐसे जीवन-सग्राम मे, होवहि वाछित काज है।
क्योकि सुखद आवन चहत, श्री ऋतुराज स्वराज है॥ ४॥

भारतीय कोकिल प्रियतम निज कूक सुनावौ।
या स्वदेश मे नवजीवन सचार करावौ॥
बहु दिन के सुसुप्त को करुणामयी जगावौ।
कल कोमल रसाल वाणी सो याहि उठावौ॥

जासों यहि आर्यावर्त को, नष्ट होइ सन्ताप है।
जग जगमगाय नव जोति सौं, अनुपम प्रबल प्रताप है॥ ५॥

धन्य धन्य वह पुण्यभूमि जिन तुम उपजाई।
धन्य धन्य वह कुल जिन तुम सी महिला पाई॥
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे।
धन्य धन्य हमहूँ सब दरसन पाइ तिहारे॥

सत् विनय प्रवाहित कीजिये, देश-प्रेम-रस की नदी।
बस अर्पित यह तव क्रोड मे, श्रीसरोजिनी-षट्पदी॥ ६॥

सत्यनारायणजी ने इस षट्पदी की एक प्रति आचार्य पद्मसिंहजी शर्मा के पास भेजी थी। शर्माजी ने उसके सम्बन्ध मे उन्हे एक चिट्ठी में लिखा था——

"कल प० मुकुन्दरामजी की भेजी हुई" श्रीसरोजिनी-षट्पदी" पहुँची। उसे पाकर मेरा मन-सरोज विकसित हो गया। खैर, कुछ हो, काव्यदृष्टि से तो यह "षट्पदी" आपकी बढिया रही। "श्रीसरोजनी-षटपदी" यह शीर्षक बड़ा ही औचित्यपूर्ण है। पढकर तबियत फड़क गई! जी चाहता है, धाधूपुर पहुँचकर धूमधाम से इसकी बधाई दूँ। भई वाह! क्या शीर्षक

ढूँढ़ा है "श्रीसरोजनी-षट्पदी" ! सचमुच "शीर्षकौचित्य" के उदाहरणों की चौटी पर बैठाने लायक है । मैं ख़्याल करता हूँ, इस शीर्षक के सूझते ही आप भी उछल पड़े होंगे और हर्षातिरेक से झूमने लगे होंगे ! ऐसा अनुरूप पद कभी भाग्य ही से हाथ आता है । क्या कहूँ पास नहीं, नहीं तो जी खोल कर 'दाद' के अतिरिक्त कुछ और भी देता ! 'सरोजनी' नाम की निरुक्ति "ऋतुराज-स्वराज" का रूपक और अन्त में समर्पण, सब ही अच्छे हुए हैं । शाबाश ! "ईंकार अजतो आयदो मर्दां चुनी कुनन्द ।"

इस पत्र के उत्तर में सत्यनारायणजी ने आचार्य्य जी को लिखा था, --"आपका कृपा-पत्र मैंने अपने सार्टिफ़िकेट के लिफ़ाफ़े में रख दिया है। सच जानिये, जितना उत्साह प्रदान आपके इस पत्र ने मुझे किया है, वैसा जागीर नहीं दे सकती थी !"

श्रीतिलक-वन्दना

जब लोकमान्य तिलक आगरे पधारे थे तब सत्यनारायणजी ने यह कविता पढ़ी थी--

जय जय जय द्विजराज देश के साँचे नायक ।
यदपि प्रभासत वक्र, सुधा नवजीवन दायक ।।
दृग चकोर आराध्य राष्ट्र-नभ-प्रतिभा भाषा ।
वन्दनीय विस्तार विशारद ज्योत्स्ना आशा ।।

जय चित पावन सद्भाव सों, जग शुभचिन्तक प्रति पलक ।
शिब-भारत-भाल-बिशाल के, लोकमान्य अनुपम तिलक ।।

देश-भक्ति-स्वर्गीय-गङ्ग-आघात-तीव्र तर ।
गङ्गाधर सम सह्यो अटल मन तुम गङ्गाधर ।।
नित स्वदेश हित निर्भय निर्भ्रम नीति प्रकाशक ।
जय स्वराज्य संयुक्त-शक्ति के पुण्य उपासक ।।

जय आत्म-त्याग अनुराग के, उज्ज्वल उच्च उदाहरन ।
जय शिव-संकल्प स्वरूप शुभ एक मात्र तारन-तरन ।।

कर्मयोग आचार्य्य आर्य आदर्श उजागर।
निर्मल न्याय निकुञ्ज पुञ्ज करुणा के सागर ।।
सुदृढ सिहगढ के सजीव-ध्वज-धर्म धुरधर।
अद्भुत अनुकरणीय प्रेम के प्रकृत पुरन्दर ।।

प्राणोपम राष्ट्र प्रतापवर, अघ त्रिताप हर मुरसरी।
जय जन-सत्ता के छत्रपति, महाराष्ट्र कुल-केसरी ।।

मर्यादा-पूरण स्वतन्त्रता-प्रियता प्यारी।
प्रकृति मधुर मृदु मजु सरलता देखि तिहारी।।
रोम रोम कृत-कृत्य भयो यह जन्म कृतारथ।
तव दर्शन करि लोचन पायो लाहु यथारथ ।।

चित होत परम गदगद मुदित, जबै बिचारत कृत्य तुव।
जय जीवन-जङ्ग-जहाज के, जगमगात जातीय ध्रुव ।।

धन्य धन्य यह देश जहाँ तुम देशभक्त अस।
जननी जन्मभूमि तन मन धन जीवन सर्वस ।।
धन्य आगरा नगर धन्य यहँ के बासी जन।
चरण कमल तव दरसि परसि भये जो पुनीत मन ।।

सत विनय यही जगदीश सो, होंय मनोरथ तव सफल।
हम हिन्दी पावे विश्व मे, स्वत्व मानवोचित सकल ।।

कुली-प्रथा के विरोध में पद्य-रचना

३ मार्च सन् १९१७ को कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिये एक सभा सेण्टजौन्स कालेज में, प्रिंसिपल डेविस साहब के सभापतित्व मे हुई थी। उस अवसर पर सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित कविता पढी थी।

दुखियों की पुकार

जगत मे किमे हमारी पीर।
लज्जा शोक घृणा से निशिदिन बहै नयन से नीर॥
जो स्वारथ के कारण अन्धे उनकी कुछ न कहानी।
हॉ! सो गये भारतवासी भी जो स्वदेश-अभिमानी॥
शत्रु मित्र सब खडे देखते अतिशय हमैं दुखारी।
हुआ बडा अपमान यहाँ पर मनुष्यता का भारी॥
मिटी गुलामी प्रथा जगत से जिसकी सुदया पाई।
उसी ब्रिटिन की प्रजा मुफ्त मे ऐसी जाइ सताई॥

*　　*　　*

जहाँ हुई दमयन्ती सीता सावित्री-सी नारी।
पुण्य-सद्मिनी प्रेम-पद्मिनी आर्य्य मुखोज्ज्वल कारी॥
अबला निपट द्रौपदी ने भी रक्खा मान जहाँ का।
दृढता के वश कोई कर सका उसका बाल न बॉका॥
तहॅ की पावन ललनाओ को दुष्ट बनावे दारा।
कहॉ सदय गोपाल कृष्ण प्रिय अनुपम मित्र हमारा॥
जो इस दुश्शासन के निरदय कर से हमैं बचावै।
जाती हुई लाजपति को जो सकरुण हृदय रखावै॥
किसे सुनावे ? कौन सुनेगा ? फूट फूट हम रोये।
सद्गुण सदन मदन मोहन मोह न तुमको कह सोये॥
आत्म-मान का महल जगत मे दृग पसार कर देखा।
नाथवान हम हा! अनाथ सम जी मे यही परेखा॥
यह भारत मानापमान का प्रश्न उपस्थित भारी।
इसके सुलझाने मे चहिये शक्ति लगाना सारी॥

पता नही सरकार करै क्यो जान बूझ आना-कानी ।
प्यारे हिन्दू और मुसलमा ईसाई हिन्दुस्तानी ।।
क्या बूढ़े क्या बडे मर्द क्या औरत क्या प्यारे बच्चे ।
जिनको अपना देश पियारा दयावान है जो सच्चे ।।
जिनके उर मनुष्यता देवी की पावन मूरति प्यारी ।
प्रथा, सोचिये कैसी है यह क्रूर लोम हर्षणकारी ।।
जो अपने निष्ठुर कामो से निष्ठुरता के कतरै कान ।
बोल गई "चो" हृदय-हीनता लख के हृदय-हीन सामान ।।
इज्जत जो सर्वस्व हमारी वह भी लुटती जाती है ।
होती शर्म देख शर्मिन्दा तुम्हे शर्म नहि आती है ।।
कहते छाती फटती है तुम वने हुए ऐसे अनजान।
तुम्हे न करुणा आती सुनकर भ्राताओं का कष्ट महान ।।
बहिन तुम्हारी बेबस होकर निज मर्यादा खोती है ।
हाय परम असहाय बिचारी विलख विलख कर रोती है ।।
जो भविष्य की उज्ज्वलकारी छोटी छोटी है सन्तान ।
"नही कही की रही" कीजिये इससे विपदा का अनुमान ।।
तन मन धन सर्वस्व निछावर इनके दुख पर कर दीजे ।
एक प्राण हो एक कठ से इसका आन्दोलन कीजै ।।
जिससे मिट जावै यह जड़ मे घृणित प्रथा सत्यानासी ।
तभी कहाओगे इस जग मे तुम सच्चे भारतवासी ।।
चिरंजीव एण्डूज हमारे सरोजिनी पोलक गतिमान ।
जिनकी करुणामयी कथा सुन द्रवता है कठोर पाषान ।।

* * *

इज्जत से भी रुपया पैसा अगर बड़ा सरकार ।
निडर कहै हम इस विचार को तो शतशः धिक्कार ।
ऋषियो के कुलीन पूतो को कुली बनाया जाता है ।।
रण मे उन्हे भेजते आगा-पीछा सोचा जाता है ।।

विमल हमारी राजभक्ति जो चली सदा से आई है।
कैसी अच्छी कदर हुई बस इसके लिये बधाई है ॥
खोकर मान प्रान का रखना पल भर को भी जहँ दुशवार।
कौन सहेगा पाँच साल तक ऐसा भीषण अत्याचार ॥

हमसे तो गुलाम ही अच्छा जिसका होता एक हुजूर।
ऐरे-गैरे-पचकल्यानी के चगुल मे रहता दूर ॥
भरा हुआ है अनन्त सागर उसमे हमे डुबा दीजे।
तोपो के मुहरो मे हमको बिना उज्र उड़वा दीजे ॥

चाहे जैसी नृशंसता भी अपने हाथो से कीजे।
कुली-प्रथा का किन्तु अन्त कर उभय लोक मे यश लीजे ॥
नहिँ उलाहना अगर किया नहिं जो कोई पूरा वादा।
जाती हुई बचा लीजे इस आर्य्य जाति की मर्यादा ॥

तीस कोटि के दंड मुड का जो तुमने पाया अधिकार।
होगे प्रभु के अवसि सामने बुरे भले के जिम्मेदार ॥
अनुचित दया न हमको चहिए, चहिए केवल न्याय उदार।
उसकी ही हम भीख माँगते सविनय तुमसे बारम्बार ॥

कबर किसी की मे नहिं सोना राजा को, जानैं ससार।
पक्षपात को छोड़ न्याय का करना चहिये पुण्य प्रचार ॥
ब्रिटेन! तुम्हारी न्याय-नीति मे है हमको अतिशय विश्वास।
गौरव निज प्राचीन सोचकर कीजे अब तो पूरी आस ॥
न हो आपका नाम कलकित, रक्षा भी हो सभी प्रकार।
सत्य दीन दुखियो की बस है हाथ जोडकर यही पुकार ॥

इन कविताओ के अतिरिक्त सत्यनारायणजी ने अन्य अवसरो पर भी कविताएँ रची थी। वैष्णव-महासभा के चतुर्थ सनाढ्य महामण्डल के २२वें, वैद्यक सम्मेलन के तृतीय, चतुर्वेदी-सम्मेलन के प्रथम और हिन्दू-सम्मेलन के प्रथम अधिवेशनो पर भी पद्य-रचना की थी। महायुद्ध के

दिनो मे उन्होने एक विजय-वंदना बनाई थी और गढ़वाली सेना के स्वागत मे भी 'रे गढ़वाली ज्वान*' नामक एक बढ़िया कविता रची थी।

इस प्रकार की कविताएँ जिस प्रकार बनाई जाती थी, उसके उदाहरण के लिये सैण्ट जौन्स कालेज के प्रिंसिपल डेविस साहब की चिट्ठी से निम्न-लिखित अंश उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। अपने २७ फर्वरी १९१९ के पत्र मे डेविस साहब ने लिखा था —

Particularly I remember the occasion of a Recruiting meeting for the Indian Defence Force which was held in St. John's College in the autumn of 1917 I was very anxious that Satyanarayan should read a poem as I knew how much influence his writings exerted upon students, and I therefore motored out to his home with one of our students. Unfortunately Satyanarayan was not to be found, but soon after my return he came up to the Bungalow and asked me whether I was looking for him. I told him that I was anxious that he should write a poem for the occasion. There then remained about half an hour, and I still have before my mind the picture of Satyanarayan walking up and down his lips moving and writing one line after another on a scrap of paper His ,poem was probably the most effective feature of the meeting."

अर्थात् "खास तौर से मुझे उस अवसर का स्मरण है जब सन् १९१७ की शिशिर ऋतु मे, सेण्ट जौन्स कालेज में इण्डियन डिफेन्स फोर्स के लिये रँगरूट भर्ती करने के लिये एक मीटिंग हुई थी। मुझे इस बात की बड़ी

* यह कविता कहीँ नही मिल सकी —लेखक।

उत्कंठा थी कि सत्यनारायण इस अवसर पर अपनी कविता पढ़े, क्योंकि मै जानता था कि उनकी कविता कितना अधिक प्रभाव डालती थी। इसलिये अपने एक विद्यार्थी के साथ मै उनके घर गया। दुर्भाग्यवश सत्यनारायण मुझे घर पर नही मिले। लेकिन वहाँ से लौटने के बाद ही वे मेरे बँगले पर आये और मुझसे कहा—"क्या आप मुझे तलाश करते थे ?" मैने कहा—मुझे इस बात की अत्यन्त उत्कठा है कि तुम इस अवसर पर एक कविता पढो ? उस वक्त मीटिग के समय को सिर्फ आध घटा बाकी था और सत्यनारायण की वह मूर्ति अब तक मेरी आँखो के सामने है जब कि वे इधर-उधर टहलते जाते थे। उनके होठ चल रहे थे और वे एक लाइन के बाद दूसरी लाइन कागज के एक टुकडे पर लिखते जाते थे। सभा मे सब से अधिक प्रभावपूर्ण बात कोई रही तो वह सत्यनारायण की कविता ही थी।"

यहाँ पर यह कह देना उचित और आवश्यक है कि सत्यनारायणजी का सब से बडा गुण उनकी असीम सरलता थी और यही उनकी सब से बडी निर्बलता थी। इसी कमजोरी के कारण लोग उनसे मन-माना लाभ उठाते थे। कभी उन्हे किसी वैद्य-सम्मेलन मे घसीट कर हर्र-बहेडे तथा आँवले की प्रशसा कराते थे तो कभी किसी रायबहादुर की तारीफ मे कुछ लिखवाते थे। यथा—

"जयति जयति भारती जुगल-पद-अलि मनभावन।
जय उदारता रतनाकर के रतन सुहावन॥"

किसी को नाराज करना तो वे जानते ही न थे, इसलिये कोई भी याचक उनके यहाँ से निराश होकर नही जाता था।

अपने प्रतिभा-प्रसूनों को इस प्रकार अट-सट आदमियो के सिर पर बखेरना सरस्वती देवी का एक प्रकार से निरादर करना था, किन्तु सत्यनारायण के हृदय-मन्दिर मे मानवता का आसन सरस्वती से भी

ऊँचा था। इसी कारण इस प्रकार की पद्य-रचना उनके लिये एक स्वाभाविक बात थी।*

यह बात ध्यान देने योग्य है कि देश के आन्दोलनो के साथ सत्य-नारायण बराबर चलते रहे थे। हिन्दी के अन्य किसी आधुनिक कवि ने अपने समय मे देश के आन्दोलनो के विषय मे इस प्रकार कविता की हो, इसमे सन्देह है। सत्यनारायणजी अपनी कविता द्वारा जन-समाज को प्रोत्साहन दे उसका मनोरजन करने मे वर्तमान कवियों मे सबसे अधिक सफल हुए, इस विषय मे तो किसी को मतभेद न होगा। अपनी रचनाओ से उन्होने साहित्य की क्या सेवा की यह बात हम अगले अध्याय मे फिर लिखेगे।

---

*श्रीयुत शालग्रामजी वर्मा ने अपने एक पत्र मे लिखा था—"मैने पडितजी से एक बार इस विषय मे कहा भी था कि आपकी ये विदाई-पत्र-सम्बन्धी रचनाये प्राय. एक सी हो जाती है और इनसे आपकी कविता पर परोक्ष रीति से भद्दा प्रभाव पड़ता है। इसके उत्तर मे हँसकर पंडितजी ने यही कहा था कि बहुत से लोगों के कहने का ख्याल करके मुझे ये विदाई-पत्र लिखने पडते है और विषय के एकाङ्गी होने से कविता भी एक-सी हो जाती है"।—लेखक।

साहित्य-सेवा

सत्यनारायणजी की साहित्य-सेवा का उल्लेख करते हुए प्रारम्भ मे यह कह देना उचित होगा कि उनकी कविता की आलोचना करना इस अध्याय का उद्देश्य नही है। यहाँ तो उनकी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण देकर केवल कुछ आलोचनाएँ उद्धृत की जा रही है। इनसे पाठको को सत्य-नारायणजी की रचनाओ का कुछ अनुमान हो सकेगा।

सत्यनारायणजी ने चार पुस्तकें लिखी थी—(१) 'उत्तर राम-चरित' (२) 'होरेशस' (३) 'मालती-माधव' और (४) 'हृदय-तरग'।

पहली तीनो पुस्तके अनुवादित है और चौथी पुस्तक उनकी फुटकर कविताओ का संग्रह है। विद्यार्थी-जीवन समाप्त करने के बाद सत्य-नारायणजी केवल ८ वर्ष जीवित रहे और इन आठ वर्षो मे उन्होने जो परिश्रम किया उसका फल हमारे सम्मुख उपस्थित है*।

उत्तर राम-चरित

महाकवि भवभूति कृत सस्कृत नाटक 'उत्तर राम-चरित' का यह हिन्दी-पद्यानुवाद है। इसे फीरोजाबाद के 'भारती-भवन' ने प्रकाशित किया था।

---

*सत्यनारायणजी की इच्छा एक महाकाव्य लिखने की भी थी। चित्तौड, हल्दी-घाटी इत्यादि जिन-जिन स्थानो मे भारतीय वीरो ने अपनी वीरता प्रदर्शित की थी उन सब स्थानो की वे यात्रा करना चाहते थे। प्रत्येक स्थान पर बैठकर वहाँ किये हुए वीरता-पूर्ण कार्य्यो का वर्णन वे अपनी कविता मे करने के इच्छुक थे। अपने मित्र श्रीयुत सूर्य्यनारायण अग्रवाल से उन्होने इस विषय मे कई बार कहा भी था। यह हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य था कि सत्यनारायणजी अपने इस विचार को कार्य्यरूप मे परिणत नही कर सके।—लेखक।

सत्यनारायणजी की इस पुस्तक के विषय मे, हिन्दी-सम्पादको ओर समालोचको की सम्मतियाँ यहाँ उद्धृत की जाती है—

साहित्याचार्यप० चन्द्रशेखर शास्त्री (सम्मेलन-पत्रिका मे)——

"हिन्दी मे इस ग्रन्थ के और भी अनुवाद हो चुके है, जिनमे दो-तीन मैंने भी देखे है। उन सब मे कविरत्नजी का अनुवाद कई कारणों से उत्कृष्ट कहा जा सकता है। एक तो इस अनुवाद की कविता सरस और मनोहर है; और दूसरे इसके साथ ग्रन्थकार की लिखी एक वृहत् भूमिका जोड़ दी गई है।

भूमिका मे बहुत-सी बाते केवल हिन्दी जानने वालो के लिये नयी है। इस सुप्रयत्न के लिए हम कविरत्नजी को और साथ ही इस ग्रन्थ के प्रकाशक फीरोजाबाद के 'भारती-भवन' को धन्यवाद देते है।"

आलोचना के अत मे साहित्याचार्य्यजी ने लिखा था——

"मेरी समझ मे अनुवादक मूल ग्रन्थकार के सर्वथा अधीन रहते है, क्योकि वे अनुवादक है। उन्हे केवल भाषा-परिवर्तन करने का अधिकार है। मूल ग्रन्थकार के भाव को इधर-उधर करना अनुवादको के अधिकार के बाहर की बात है। इस अनुवाद मे ऐसी स्वाधीनता देखी जाती है।" इसके दो एक उदाहरण देकर समालोचक महाशय ने लिखा था——'परन्तु इन उदाहरणो से यदि कोई यह समझे कि पुस्तक की सरसता मे किसी प्रकार की त्रुटि आ गई है, सो बात नही है। कहीं-कही अनुवादक ने भवभूति के भाव को रूपान्तर में ग्रहण किया है, अवश्य, तथापि पुस्तक पढने लायक और उपादेय है।

श्रीमान् पं० श्रीधर पाठक—"आपने जो पं० सत्यनारायणजी कृत 'उत्तर' राम-चरित का भाषा-अनुवाद मुझको समालोचनार्थ दिया था, उसको अवलोकन कर चित्त अति सन्तुष्ट हुआ। यह एक नवीन कवि की उत्कृष्ट प्रतिभा और सुहृदयता का सौभाग्य संदर्भ, आशा पूर्ण परिचय है। आशा है, हिन्दी-रसिकगण इसका रसास्वादन कर सुखी होगे।

श्रीमान् पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी--"आज तक इस नाटक के जितने अनुवाद हमारे देखने मे आये है, उन सब से यह अच्छा है।"

श्री बाबू श्यामसुन्दरदास--"यह अनुवाद बहुत ही उत्तम हुआ है। अब तक जितने अनुवाद इस नाटक के हुए है, उन सब से यह कही बढकर है। भवभूति की कविता का बहुत कुछ आनन्द इसमे आता है। इसमे कोई सन्देह नही कि उन विद्यार्थियो के लिये, जो सस्कृत नाटक अध्ययन किया चाहते है, यह अनुवाद बड़ा उपकारी होगा।"

"सुधानिधि" पत्र--"यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि यह अनुवाद जैसा सजीव है उससे पढने वाले इसे अनुवाद नही, बल्कि स्वतन्त्र रचना के समान समझेगे। 'उत्तर राम-चरित' करुणा रस प्रधान नाटक है और कविरत्नजी की ब्रजभाषा की कविता ऐसी उत्तम होती है कि वह करुणा रस को मानो साक्षात् कर देती है। यद्यपि मूल ग्रन्थ की उत्तमता और सरसता किसी भी अनुवाद मे आना कठिन है, तथापि यह रचना ऐसी उत्तम हुई है कि शायद ही कोई पाषाण हृदय हो जो इसे पढ, करुणा परिप्लुत हो, रो न दे।"

इनके अतिरिक्त 'प्रताप', 'ब्राह्मण-सर्वस्व' आदि पत्रो ने भी इस पुस्तक की प्रशसा की थी।

देशभक्त होरेशस

यह लार्ड मैकोले की पुस्तक का अनुवाद है। इस अनुवाद को समर्पित करते हुए सत्यनारायण ने लिखा था--

"देशभक्ति जिनके जीवन कौ लक्ष्य सुहावन।
जिनपर निरभर मानव-कुल को भविष्य पावन॥
भेद-भाव तजि जो स्वदेश-रक्षा-रँग रॉचे।
प्रिय आर्योचित धर्म कर्म के प्रेमी सॉचे॥

गहि सत्य न्याय को पक्ष जो, निज जीवन अरपन करत।
तिन वीर नरन के चरन मे, भेट अकिंचन यह धरत॥"

अनुवाद की कुछ बानगी देखिये—

"जबै झुकति हेमन्त-राति कारी कजरारी।
अरु उत्तर की सीरी सीरी चलति बियारी॥
बरफीले ठौरनु सो करकस कठोर आई।
उठि लिरियन को सदन देर लो परत सुनाई॥
जबै इकोसी परी झोपरी के चहु ओरी।
सनसनाति आधो आजर पाजर झकझोरी॥

*   *   *

जबै महोच्छव औसर पर पै करवे मिहमानी।
काढत पीपहिं खोलि नसीली सुरा पुरानी॥
धरत उजेरे काज बडो सो लम्प उजारी।
करत भूँजि अखरोट बिबिध भोजन तैयारी॥
जबै घेर अगिहाने कों मिलि सबरे बैठत।
बूढ़ेनु सो बतरात ज्वान निज मोछ उमेठत॥
बुनत बोइया ओर टुकनिया जबै कुमारी।
युवक बनावत धनुही जीय चुरावनहारी॥

*   *   *

प्रमुदित अरु प्रेमाश्रु बहावत अति रुचि मानी।
सुनत सुनावत सकल अजहुँ यहि वीर कहानी॥
सत्यधीर होरेशस जिहि विधि बल दरसाई।
लियो विमल प्राचीन समय मे सेतु रखाई॥"

'मालती-माधव'

यह भी भवभूति की इसी नाम की पुस्तक का अनुवाद है। इस अनुवाद के प्रारम्भ करने के सम्बन्ध मे स्वयं सत्यनारायणजी ने लिखा था—"सन् १९१३ के जाडे कें दिनों मे रुग्ण होकर चिकित्सा के लिए कुछ दिन

मुझे भरतपुर रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। मनोरंजन के लिये प्रार्थना करने पर परम पूजनीय सहृदय श्री पण्डित मयाशङ्करजी बी० ए० ने, जो आजकल दीध मे नाजिम हैं, प्राचीन हस्तलिखित सस्कृत हिन्दी-पुस्तको की खोज का कार्य आरम्भ कर दिया। उसी समय एक जीर्ण-शीर्ण पुस्तक के दर्शन हुए, जिसमे इधर-उधर के पत्र नही थे। खोलकर उसे बीच मे देखा तो सामने श्मशान का वर्णन! तुरन्त हृदय मे विचार उठा कि कही भवभूति प्रणीत सस्कृत मालती-माधव नाटक के आधार पर तो नही लिखा गया है? अच्छी तरह जहाॅ-तहाॅ पढने से विचार ठीक निकला। इस पुस्तक का नाम 'माधव-विनोद' है। इसके रचयिता व्रजभाषा के आचार्य कविवर श्रीसोमनाथजी चतुर्वेदी है। × × × 'माधवविनोद' मालती-माधव नाटक का सुन्दर आद्योपान्त पद्यात्मक किन्तु स्वच्छन्द अनुवाद है। उसे अनुवाद न कहकर अपने ढङ्ग का स्वतत्र ग्रन्थ कहना अनुचित न होगा। इस लेखक द्वारा किया हुआ 'उत्तरराम-चरित नाटक का हिन्दी-अनुवाद उस समय छप चुका था। मित्रो के अनुरोध से सन् १९१४ की वसन्त ऋतु मे 'मालती-माधव' नाटक का अनुवाद भी प्रारम्भ कर दिया गया"।

दु ख की बात है कि यह अनुवाद सत्यनारायणजी की मृत्यु, के बाद प्रकाशित हो सका, यद्यपि इसके कई फार्म उनके सामने ही छप चुके थे। इस पुस्तक के विषय मे सैयद अमीरअली 'मीर' ने लिखा था —

"भारत मानसजा ब्रजभाषा की, माधुरी जामे रही सरसाई।
भाव ते भाव भरे भवभूति के, भारत नीति की नीकी निकाई।
ओज प्रसादमयी कविता की बही सरिता सी सदा सुखदाई।
भाइ है 'मीर' मनै मन मोहिनी मालती-माधव मंजुलताई॥

"माडर्न-रिव्यू" के समालोचक ने इस पुस्तक की आलोचना करते हुए सत्यनारायणजी के विषय मे लिखा था:—

"The talented author who was a well known figure

in the Hindı world and who had command over both facile and attractıve style"

अर्थात् "सत्यनारायणजी हिन्दी-ससार के एक प्रतिभाशाली ग्रन्थकार थे आर उनकी लेखनशैली बड़ी धाराप्रवाह् और आकर्षक थी"।

श्रीमान् प० श्रीधर पाठक ने लिखा था—"यत्र-तत्र अवलोकन मे प्रतीत हुआ कि इसमे अनुवादक ने विशेष परिश्रम किया है और कृति उत्कृष्ट कोटि की है।"

'सरस्वती' ने लिखा था—"इस नाटक के जो दो-एक अनुवाद हमारे देखने मे आये है उन सब से यह अनुवाद अच्छा है। सत्यनारायणजी ने अपनी विज्ञप्ति के अन्त मे "नयी रोशनीवालो" पर जो कठोर आक्षेप किये है उनका उत्तर अब हम नही देना चाहते क्योंकि उसके सुननेवाले ही नही रहे।"

'सरस्वती' के समालोचक को जो बात बुरी लगी थी वह यहा उद्धृत की जाती है। सत्यनारायणजी ने लिखा था—

"आजकल नयी रोशनीवालो को ब्रजभाषा स कुछ चिढ-सी हो गई है। शृगार का नाम सुनकर उनकी आँखो मे खून उतर आता है। इसलिये इस अभागिनी भाषा तथा उक्त विषय पर पहले तो लोग लिखते ही बहुत कम है—जो लिखता भी है उसका ग्रथ आर्थिक दुर्दशा के कारण इस क्रय-विक्रयमय ससार मे अपनी सूरत ही नही दिखा सकता। इस भाँति उत्साह-भंग होते हुए भी यदि किसी के हृदय मे कुछ लिखने की तरग उठे तो उसे फक्कड ही समझना चाहिये। कुछ भी समझा जाय किन्तु प्रसन्नता की बात यह है कि जो काम सौपा गया था वह किसी प्रकार पूर्ण होकर सेवा मे उपस्थित है .. ... इत्यादि।"

हमे तो सत्यनारायणजी के उपर्युक्त शब्दों मे अनुचित या "कठोर आक्षेप" दीख नही पडते, या इस बात का खेद है कि "सरस्वती" की समालोचना निकलने के समय तक सत्यनारायणजी नही रहे।

'हृदय-तरङ्ग'

'हृदय-तरग' का नामकरण सत्यनाराणजी कई वर्ष पहले कर चुके थे; बल्कि उसका सम्पादन करके वे उसे भरतपुर के अधिकारी श्री जगन्नाथ दासजी विशारद के यहाँ रख आये थे। उसके दो फार्म प्रकाशित भी हो गये थे। पुस्तक पूरी न छपने पायी थी कि किसी ने उसे उडा दिया और आज तक उसका पता नही लगा। सत्यनारायणजी ने इन्दौर मे मुझसे कहा था––"मेरी अनेक कोमल रचनाएँ 'हृदय-तरग' के साथ ही विलीन हो गयी!" इसका उन्हे बड़ा दुख था। एक पत्र मे उन्होने मुझे लिखा था––"यदि आप उचित समझे तो अधिकारी जगन्नाथदासजी विशारद विरक्त-मन्दिर, भरतपुर से अथवा "चित्रमय-जगत्" के भूत-पूर्व सम्पादक से लिखा-पढी करे। मुझे तो वे ठीक ठीक उत्तर नही देते!" तदनुसार मैने दोनो सज्जनो से लिखा-पढी की।

श्रीयुत भालेरावजी का तो उत्तर आ गया कि 'हृदय-तरग' मेरे पास नही; लेकिन अधिकारीजी ने मेरे तीस-पैतीस पत्रो मे से केवल एक का उत्तर देने की कृपा की। अधिकारीजी को आशङ्का थी कि 'हृदय-तरङ्ग' भालेरावजी ले गये और भालेराव जी 'पितृ-हत्या' और 'गो-हत्या जैसी घोर शपथ लेकर कहते है कि मै 'हृदय तरङ्ग' नही लाया। भालेरावजी का ख्याल है कि "हृदय-तरङ्ग" श्रीयुत शालग्राम वर्मा के पास रही और वर्माजी का विश्वास है कि वह अधिकारीजी या भालेरावजी के पास से खो गई। सत्यनारायणजी द्वारा सम्पादित 'हृदय-तरङ्ग' कहाँ गयी और किसके पास है, यह तो परमात्मा ही जाने, परन्तु इतना हम भी अनुमान कर सकते है कि वह किसी 'हृदयहीन' के हाथ पड गयी। जो हो।

सत्यनाराणजी के स्वर्गवास के कई महीने पहले मैने अपने मनोरजन के लिये उनकी कविताओ का सग्रह करना प्रारम्भ कर दिया था। जब सत्यनारायणजी इन्दौर पधारे तो मैने यह सग्रह उन्हे सशोधनार्थ दिया था। मेरे इस सग्रह मे सत्यनारायणजी ने अपनी कई रचनाएँ लिख दी थी।

इस प्रकार कुछ रचनाएँ तो काल-कवलित होने से बच रही। तत्पश्चात् मैने जीर्ण-शीर्ण कागज़ो से कुछ और रचनाएँ नकल करके अपने सग्रह मे सम्मिलित की। अन्तत· सत्यनारायणजी के अनन्य मित्र चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक की कृपा से 'हृदय-तरङ्ग' प्रकाशित हो गया। अपनी मृत्यु के दो मास पूर्व, १२ फ़र्वरी सन् १९१८ के पत्र मे, सत्यनारायणजी ने मुझे लिखा था—"आपके पत्र से ज्ञात—विश्वास—हुआ कि 'हृदय-तरङ्ग' इस ससार मे उठ सकेगा—यह इस ग्रामीण हृदय का सच्चा नैसर्गिक उद्‌गार है। इसी से ऊपर कहा है कि जो आपके द्वारा संगृहीत हुआ है, जिसे आपका अवलम्ब मिला है वह अविलम्ब ही अवश्य-अवश्य प्रकाशित हो। यद्यपि आपको नही चाहिये, तथापि वह आपकी कीर्ति-कौमुदी से दिशाओ को मुग्ध करेगा, इसमे एक अक्षर भी मिथ्या नही।"

"हृदय-तरग" का हिन्दी ससार ने अच्छा आदर किया और सग्रह-कर्ता की भी खूब तारीफ की गयी, जिसमे तीन चौथाई के हकदार, सग्रह के असली सम्पादक चतुर्वेदी प० अयोध्याप्रसाद पाठक थे।

"हृदय-तरङ्ग" मे सत्यनारायणजी की लगभग वे सभी कविताएँ प्रकाशित हो गयी है जो पत्र-पत्रिकाओ मे निकली थी। उनके साथ ही 'प्रेमकली और 'भ्रमरदूत' नामक पद्य-प्रबन्ध भी छाप दिये गये है।

"भ्रमर-दूत" के विषय में कविवर लोचनप्रसाद पाण्डेय ने लिखा था—"यह हृदयोल्लासिनी और अनूठी रचना है। २५वॉ पद्य मेरे हृदय-ज्योति चि० माधवप्रसाद के वियोग मे तो कविरत्नजी ने नही लिखा? नहीं, नही, वैसा नही है—न होते हुए भी यह पद्य नहीं, कविताश—अनुपम कवित्वपूर्ण रचना—मेरे शोक मे, वियोग मे, सहानुभूति के लिये है।"

२५ वॉ पद्य, जिसने पाण्डेयजी के व्यथित हृदय में अपने स्वर्गीय पुत्र माधवप्रसाद की स्मृति उत्पन्न कर दी, निम्नलिखित है·—

"लगत पलास उदास शोक मे अशोक भारी।
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी।

तजि तजि निज प्रफुलितपनौ, बिरह-बिथित अकुलात।
जड ह्वै ह्वै चेतन मनौ, दीन मलीन लखात—

एक माधौ बिना॥"

"भ्रमर दूत" के विषय मे श्रीयुत मुकुटधर पाण्डेय ने जो सम्मति भेजी थी वह भी पढने योग्य है। आपने लिखा था:

"रचना मधुर है। यह व्रजभाषा का पहला ही काव्याश है जिसमे देश कालोपयोगी सामयिक भाव प्रदर्शित हुए है—विशेषता यह है कि प्राचीन विषय को लेकर। यथार्थ मे कविवर सत्यनारायण व्रजभाषा मे सामयिकता लानेके प्रयत्न मे शुरू से ही रहे है। भाव मे ही नही, उनके पद्यो के विषय और वर्णनशैली मे भी सामयिकता पाई जाती है। 'भ्रमरदूत मे उनका यह यत्न सम्पूर्ण सफल होता, यदि वह इतने शीघ्र लोकान्तरित न हो जाते। इसमे यशोदा ने जो सन्देश भेजे है उसके वर्ण-वर्ण और अक्षर-अक्षर मे से स्वदेश-प्रेम और जाति-हितैषिता टपक रही है। इसको पढते समय ऐसा जान पड़ता है मानो शोक-दु:ख जर्जरा स्वयं भारतमाता ही अपने हृदय का उद्गार निकाल रही हो! इन गुणों के साथ-साथ इसमे प्रासादिकता और स्वाभाविकता भी खूब भरी हुई है। आठवाँ पद्यस्वभावोक्ति अलङ्कार का खासा उदाहरण है। शब्दालङ्कार की तो सर्वत्र बहार है। अधिकाश अलङ्कार प्रेमी अलङ्कार के पचड़े मे पड़कर रचना-प्रवाह की स्वाभाविकता को नष्ट कर देते है; पर यहाँ यह बात नही। इसमे यमकानुप्रास का अनायास ही समावेश हुआ है। शब्दो का यथोचित प्रयोग कविकला का प्रधान अङ्ग है। भावमूलक कवि इस ओर विशेष ध्यान भले ही न दें, फिर भी प्रकृत कविता और श्रम-सिद्ध कविता के परख की मुख्य कसौटी वही है। कविवर सत्यनारायण इस परीक्षा मे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते है। "कूकि कूकि केकी कलित कुञ्जन करत कलोल" इस पक्ति को एक ओर मुँह से बोलिये और दूसरी ओर कान से केकी की ध्वनि सुनिये! खेद है, "भ्रमरदूत' ४० पद्यो मे ही रह गया, नही तो हम आगे

वंशी और मुरली का भी स्वर सुनते! चतुर्थ पद्य के "छटा चूई परै" मे चूई शब्द कितना उपयुक्त और अर्थवाहक है! इन शाब्दिक चमत्कारो के सिवा "भ्रमर-दूत" मे कल्पना-कामिनी का भी कुछ कम सौन्दर्य्य प्रदर्शित नही हुआ है। ३०, ३१ और ३२ वे पद्य मे भारतीय अगुआओ का फोटो उतारा गया है। 'भ्रमर दूत' अपने कवि को प्रतिनिधि-कवियो की श्रेणी मे स्थान प्रदान करता है। कविता की भाषा के विषय मे पाठकजी जैसे ब्रजभाषा मर्मज्ञ ही कुछ राय दे सकते है। कविवर सत्यनारायण ब्रज के पास ही रहते थे। ब्रजभाषा के अत्यन्त प्रेमी, प्रशसक और समर्थक थे। उसकी खूबियो और बारीकियो को समझते थे और समझने की चेष्टा मे रहते थे। इस अवस्था मे उनकी भाषा के विषय मे हमारे जैसे लोगो के कथन का मूल्य ही क्या हो सकता है? हाँ, उनके ब्रजभाषा प्रेम की तारीफ हम जरूर कर सकते है। ऐसे समय मे, जब कि सारा देश खडी बोली के पक्ष मे था, आप अकेले ही (यह कुछ अत्युक्ति नही, ब्रजभाषा के पक्ष समर्थक कुछ लोग इस समय भले ही हो, पर उसमे सुधार और सामयिकता लाकर लिखनेवाला कोई नही) ब्रजभाषा का झडा अन्त समय तक उठाये रहे! "भ्रमर-दूत" मे भी वह उसे नही भूले। कवि के आन्तरिक विचारों का पता उसकी कविता से ही लगाया जा सकता है। यशोदा के मुख से "लखियत जो ब्रजभाषा जाति हिरानी सोऊ" कहलाकर आपने ब्रजभाषा के अप्रचार पर खेद प्रकट किया है। यथार्थ मे ब्रजभाषा के अन्तकाल मे सत्यनारायण उसके एक प्रतिभाशाली कवि हो गये, पर उन्हे अपने प्रतिभा-प्रदर्शन का सम्पूर्ण अवसर नही मिला।

"भ्रमर-दूत" निर्दोष है—यह बात नही। छिद्रान्वेषी समालोचक इसमे कई दोष भी निकाल सकता है; पर हम यहाँ दोष ढूंढने नही चले हैं।

"कविरत्नजी ने एक जगह लिखा है—"लोल लोल तहँ अति अमल दादुर बोल रसाल" दादुर की बोली वर्षा मे सुखद अवश्य जान पड़ती है; पर उसे रसाल कहना कुछ खटकता है। गुसाईंजी का कथन "वेद पढत जनु बटु समुदाई" अवश्य ठीक है। कविता को सामयिक बनाने के लिये कवि ने

कही-कहो काल का ध्यान भुला दिया है। ब्रज से भगवान के द्वारका मे जाकर रहने और यशोदा के सन्देश भेजने के मध्य मे क्या इतना समय व्यतीत हो गया था कि वृन्दावन के तमाम कुज कट गये थे और वहाँ चौरस खेत बन गये थे। वही बात "कालीदह को ठौर जहँ, चमकत उज्ज्वल रेत-- काछी माली करत तहँ अपने-अपने खेत" के विषय मे भी कही जा सकती है। पर इस दोष से कविता की उपयोगिता बढ गई है--कोरे समालोचको की दृष्टि ही उस पर पड सकती है।"

साहित्य-सम्मेलनों पर की गयी कविताएँ

सत्यनारायणजी हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के तीन अधिवेशनो मे सम्मिलित हुए थे--द्वितीय, पचम और अष्टम। द्वितीय अधिवेशन प्रयाग मे हुआ था। इसके विषय मे स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी ने लिखा था--"द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का समय था। मित्र-मडली मेरी कुटी पर एकत्र थी। वही से मेयोहाल मे सम्मेलन देखने जाना था। प० केदारनाथजी, प० जीवनशङ्करजी, सम्पादक पन्नलालजी और मित्रवर बदरीनाथ उपस्थित थे। हम लोगो की प्रार्थना पर पंडित सत्यनारायणजी ने सम्मेलन मे पढने के लिये लच्छेदार ओज उपमा-प्रसाद पूर्ण पद तैयार किये थे। अपनी कविता को पढने का ढङ्ग भी उन्ही को मालूम था। जिस समय आप पडाल मे सम्मेलन की स्वागत-कविता पढने लगे, लोग मुग्ध हो गये।"

वह कविता निम्नलिखित थी :--

श्रीराधावर प्रेम-मूर्ति-जन-वत्सल ललित ललामा।
बिगत छद्म सुख-सद्म सकल बिधि तव पद-पद्म प्रनामा॥
जन-मन-रञ्जन खल-दल-गञ्जन भञ्जन हित भूभारा।
पुनि बन्दौ भारतभुवि जहँ प्रभु स्वयं लियो अवतारा॥

श्रीपति-जन्म-स्थान शान्तिमय वेद बितान पुराना।
गुन मण्डित पण्डित रत्ननि को जाकौ कोश महाना॥

नसी यदपि जो नासवान छिनभंगुर जिह प्रभुताई।
तदपि बिमल बिलसति जाके हिय प्रणव वेद निपुनाई।
अटल भारती-प्रभा-प्रभाकर जा भुवि परम प्रकासा।
का आश्चर्य तहाँ बुधवर मन-पंकज करहि बिकासा ?
ज्ञानवान साहित्य-तत्त्वविद सुभग सरल हिय सुन्दर।
क्यो न होहि तहँ भारतेन्दु सम पूरण प्रेम धुरधर ॥

तिन कीरति की चारुचन्द्रिका-चुम्बन को चित भावै।
जनु हिन्दी-साहित्य-रसिक-उरउदधि उमङ्गत आवै ॥
वा साहित्य-सरोज-मधुर-मधु-चाखन को ललचाये।
अलबेले अलि-वृन्द चहूँ दिसि सो मानो घिरि आये ॥

सरस प्रेमघन-स्वाँति-बूँद के पीवन को मतवारे।
'हिन्दी' 'हिन्दी' रटत सबै ये सज्जन यहाँ पधारे ॥
जननी-जन्मभूमि भाषा के जे अविचल अनुरागी।
तिन दरसन लहि चरन-परसि हमहूँ अतिशय बड़भागी ॥
बड़े भाग सो आज जुरयो यह सम्मेलन मनभावन।
समयोचित सुप्रयागराज मे पुण्य-हृदय-पुलकावन ॥
बृद्ध नागरी-भक्त-भक्ति की लता लहलही प्यारी।
जाकर जनु यह स्वच्छ पुष्प है सरस सुलभ उपकारी ॥

अथवा हिन्दी-दुःख-दलन को बालकृष्ण को रूपा।
मजुल मधुर मनोमोहन अति सोहन नवल स्वरूपा ॥
'हिन्दी' 'हिन्दू' हृदय भाव के ऐक्य रसहिं बरसावन।
मुरझाई साहित्य-बेलि-हित यह धाराधर पावन ॥

जाके दरसन को हमरो मन सदा रहत अनुरागत।
अस नित नव साहित्य-देह धर करत तिहारो स्वागत ॥
हे गोविन्द ! प्रेमघन ! याकी सब बिधि रक्षा कीजौ।
सुधा-सलिल सरिसाय सुहावन सत्य याहि सुख दीजौ ॥

पंचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

के अवसर पर लखनऊ मे सत्यनाराणजी ने 'व्रजभाषा' नाम की जो कविता पढी थी वह उनकी अन्य सब रचनाओ से उत्तम कही जा सकती है। चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक इस कविता के विषय मे लिखते है:—

"लखनऊ-साहित्य-सम्मेलन मे श्रीश्यामसुन्दरदास व श्रीपुत्तनलाल विद्यार्थी के प्रबन्ध के कारण सत्यनारायणजी को मौका मिलना कठिन था कि वे उसे पढे या सुनावे। इसलिये सम्मेलन के सभापति श्रीमान् श्रीधर पाठकजी को शाम के वक्त डेरे पर जा घेरा। वे घूमकर आये थे। कपड़े उतारने जाते थे। "व्रजभाषा" सुनाई गयी। पाठकजी बड़े प्रसन्न हुए और कहा—"आहा! रासपञ्चाध्यायी का आनन्द आ गया!" दूसरे दिन प्रोग्राम के बीच मे ही पाठकजी ने सूचना दे दी कि सत्यनारायणजी कविता सुनावेगे। पडितजी प्लेटफार्म की सीढियो पर बड़ी मुश्किल से बैठने दिये गये थे। झट लपककर ऊपर चढ गये और कबिता सुनाना प्रारम्भ किया। बडा प्रभाव पड़ा। जिन महाशयो ने पण्डितजी का अनादर किया था वे हाथ जोड़कर क्षमा प्रार्थना करने लगे, लेकिन पडितजी ने बुरा ही नही माना था, क्षमा क्या करते?"

'व्रजभाषा' इतनी बढिया कबिता है कि उसको यहाँ पूर्णतया उद्धृत किया जाता है*—

श्रीहरि

श्रीव्रजभाषा

सजन सरस घनश्याम अब, दीजे रस बरसाय।
जासो व्रज-भाषा-लता हरी भरी लहराय॥
भुवन विदित यह यदपि चारु भारत भुवि पावन।
पै रसपूर्न कमंडल व्रजमंडल मनभावन॥

*यह कविता पहले अलीगढ-सम्मेलन मे पढी गयी थी। लेखक

परम पुण्यमय प्रकृति छटा यहँ बिधि बिथुराई ।
जग सुर मुनिनर गजु जासु जानत सुघराई ।।
जिह् प्रभावबस नितनूतन जलधर शोभाधरि ।
सफल काम अभिराम सघन घनश्याम आपु हरि ।।

श्रीपति पदपंकज रज परसत जो पुनीत अति ।
आइ जहाँ आनन्द करति अनुभव सहृदय मति ।।
जुगल चरन अरविन्द ध्यान मकरन्द पान हित ।
मुनि मन मुदित मिलिन्द निरन्तर बिरमत जहँ नित ।।

तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी ।
भोरे भारे वसत नेह बिकमत ब्रजवासी ।।
जिनके उच्च उदार भाव-गिरिसो जग आसा ।
जनमी तारनि-तरनि कलिन्दिनि यह ब्रजभासा ।।
जासु सरस निरमल जगजीवन जीवन माही ।
लखियत उज्ज्वल सूर चद की नित परछाही ।।
जिन प्रकास सो औरु प्रकासित सुन्दर लहरी ।
नित नवल रसभरी मनहरी बिलसत गहरी ।।

जिह् आश्रय लहि कलिमलहर तुलसी सौरभ जस ।
मजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन सरबस ।।
केशव अरु मतिराम बिहारी देव अनूपम ।
हरिश्चन्द्र से जासु कूल कुसुमित रसालद्रुम ।।

अष्टछाप अनुपम कदम्ब अघ-ओक-निकन्दन ।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जगबन्दन ।।
तुरत सकल भयहरनि आर्य जागृति जयसानी ।
जन मन निज बस करनि लसति पिक भूषन बानी ।।
बिबिध रग रञ्जित मनरजन सुखमा आकर ।
सुचि सुगंधि के सदम खिले अगनित पदमाकर ।।

जिन पराग सो चौकि भ्रमत उत्सुकता प्रेरे ।
रहसि-रहसि रसखान रसिक अलिगुंजि घनेरे ।।
बरन-बरन मे मोहन की प्रतिमूर्ति बिराजत ।
अक्षर आभा जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजत ।।
सुरपद बरन सुभाव बिबिध रसमय अति उत्तम ।
शुद्ध सस्कृत सुखद आत्मजा अभिनव अनुपम ।।

देसकाल-अनुसार भाव निज व्यक्त करन मे ।
मजु मनोहर भाषा या सम कोउ न जग मे ।।
ईश्वर मानव-प्रेम दोउ इक संग सिखावति ।
उज्ज्वल श्यामलधार जुगल यो जोरि मिलावति ।।

भेद-भाव तजिवे की प्रतिभा जब रसएनी ।
योग गहत तिनसो तब सुन्दर बहत त्रिवेनी ।।
करी जाय यदि जासु परीक्षा सविधि यथारथ ।
याही मे सब जग कौ स्वारथ अरु परमारथ ।।

बरनन को करिसकत भला तिह भाषा-कोटी ।
मचलि-मचलि जामे माँगी हरि माखन-रोटी ।।
जाकौसो रस अवगाहत जाही मे आवै ।
कैसोहू गुनवान थाह जाकी नहि पावै ।।

रह्यो यही अवसेस एक आरज जीवनधन ।
चिन्तनीय यह विषय तुमनु सो सब सज्जन गन ।।
बङ्ग और महाराष्ट्र सुभग गुजरात देस मे ।
अटक कटक पर्य्यन्त कहिय भारत असेस मे।।

एक राष्ट्रभाषा की त्रुटि जो पूरत आई ।
इतने दिन सो करति रही तुम्हरी सिवकाई ।।
सत समरथ कबियनु को कबिता प्रमान जामे ।
निरखहु नयन उघारि कहा लौ सबनु गिनामे ।।

इकदिन जो माधुर्य्य कान्तिमय सुखद सुहाई।
मंजु मनोरम मूरति जाकी जग जियभाई॥
देखत तुम निश्चिन्त जात ताके अब प्राना।
अभागिनी शोकार्त्त कहहु को तासु समाना॥

लिखन रह्यो इक ओर तासु पढिबोहू त्याग्यो।
मातासो मुख मोरि कहाँ तुव मन अनुराग्यो॥
शुभ राष्ट्रीय बिचारनु को जब पुण्यप्रचारा!
कैसो याके संग कियो तुमने उपकारा!!!

रह्यो बनावन याहि राष्ट्रभाषा इकओरी।
उलटो जासु अनिष्ट करन लागे बरजोरी॥
या जीवन-संग्राम माहिं पावत सहाय सब।
नाम लैन हू तज्यो किन्तु तुमने याको अब!
क्यो जासो मन फिरयो कृपा करि कछुक जतावौ।
वृथा आतमा या ब्रजभाषा की न सतावौ॥
जिनके तुम बस परे अहहिं ते सकल बिमाता।
ब्रजभाषा ही शुद्ध संस्कृत सांची माता॥

मातृहृदय को प्रेम मातृहृदही मे आवै।
ताकौ पावन स्वाद बिमाता कबहुँ न पावे॥
टपकावति प्रेमाश्रु पुलकि तन पूत प्रेमसो।
भरि-भरि देखत नैन तुमहिं जो नित्यनेम सो॥

तिहदिसि चितवत नाहिं कहां की नीति बिहारी।
पुण्यप्रकृति तजि प्रतिकृति ताकी लगति पियारी॥
काज न जब कुछ करत सिथिलता तन में व्यापत।
यही सोचि जननी ब्रजभाषा निसिदिन कापत॥
सुत-सेवा-हित तासु रुचिर रुचि रहत सदा हीं।
जनमे पूतकुपूत कुमाता माता नाहीं!!

जाय कहाँ अब, बनहि तुम्है यहि पाले पोसे।
याको बल याको जीवन बस आप भरोसे ॥
निरालम्ब यह अम्ब याहि अवलम्बनु दीजै।
तनसो मनसो धनसो याकी उन्नति कीजै ॥

यही रहति जननी की केवल नित अभिलाषा।
सफल होहि तुव सबै उच्च उन्नत प्रिय आशा ॥
सकल ओर अभ्युदय-सूर्य्य की किरनि प्रकासैं।
नसहि अविद्या रैनि ज्ञान-नय-कमल बिकासैं ॥

जागृति त्रिविधि बयारि बसन्ती नित सरसावैं।
निरमल पर उपकार हृदय मधि लहरि सुहावैं ॥
सोहै सुजन रसाल प्रेम मंजरि चहुँ छाये।
निजभाषा रुचि लता अङ्क लहि परम सुहाये ॥

कवि कोयल सत्काव्य कूक अपनी उच्चारैं।
गुनिगुन गाहक रसिक भ्रमर मंजुल गुंजारैं ॥
जगमगाय जातीय प्रेम सुधरै चरित्रबल।
सब के हो आदर्श उच्च उत्तम अरु उज्ज्वल ॥

बिद्या बिनय बिवेक प्रकृति छवि मनहि लुभावै।
दुख को हो बस अन्त देस भारत सुख पावै ॥
परब्रह्म परमातम घट-घट अन्तरजामी।
पूरहि यह अभिलास सत्यनारायण स्वामी ॥

इसी सम्मेलन मे सत्यनारायणजी ने पैसा-फड की अपील और सम्मेलन पचपदी शीर्षक कविताएँ भी पढीं थी। ये परिशिष्ट मे दी गयी हैं।

फ़ीरोज़ाबाद में आगरा-प्रान्तीय सम्मेलन

फ़ीरोजाबाद तथा उसके निवासियों पर सत्यनारायणजी की विशेष कृपा थी। इसलिये जब फीरोजाबाद मे आगरा-प्रान्तीय सम्मेलन हुआ तो

सत्यनारायणजी ही उसकी स्वागत-समिति के प्रधान बनाये गये। श्रीमान् श्रीधर पाठकजी इस प्रान्तीय-सम्मेलन के अध्यक्ष थे। इन दोनों कवियो का सम्मेलन वस्तुत मणि-काञ्चन-संयोग की तरह था। इसी कारण सम्मेलन का सम्पूर्ण कार्य-क्रम बडी सफलता से सम्पन्न हुआ। हिन्दी के अनेक विद्वान् लेखक और कवि इस सम्मेलन मे सम्मिलित हुए थे। सत्यनारायणजी का स्वागत-भाषण वैसा ही सारगर्भित था जैसा पाठकजी का अध्यक्षीय भाषण।

सत्यनारायणजी ने अपने भाषण के प्रारम्भ मे श्रीमान् पाठकजी के विषय मे निम्नलिखित पद्य पढा था--

परम पुण्यमय विश्व-प्रेम के जो रँगराँचे।
उर उदार अति सदय हृदय सहृदय जग साँचे॥
मजु मधुर मृदु सरस सुगम सुनि सुठि जिन बानी।
नस-नस नव जातीय ज्योति विद्युत लहरानी॥
श्रीधर भाषा-साहित्य के, जे अस कविकोविद प्रवर।
सत सादर नित सबको नवत, सीस नाय जुग जोरि कर॥

भाषण के अन्त मे श्रीमान् पाठकजी से सभापति का आसन ग्रहण करने के लिये, सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित शब्दो में प्रार्थना की थी —

प्रकृति मधुर प्रिय परम बिदित नय नागरि नागर।
भव्य भारती बिमल विभाकृत विशद उजागर॥
पुण्य राष्ट्रभाषा-उत्कविकुल अग्रगण्य वर।
अखिल आगरा-रत्न समुज्ज्वल नितनव श्रीधर॥
श्री श्रीधर पाठक करि कृपा, मंजुल मुद मगल करन।
यहि सभापती आसन सुभग, करहि सुशोभित मन हरन॥

सम्मेलन समाप्त होने पर सत्यनारायणजी ने श्रीरवीन्द्रनाथ के एक

सुप्रसिद्ध पद्य का अनुवाद सुनाकर उपस्थित श्रोतृवृन्द को मन्त्र-मुग्धसा कर दिया था। वह अनुवाद यह था --

भगवन् ! मेरा देश जगाना ।
स्वतत्रता के उसी स्वर्ग मे, जहॉ क्लेश नहिं पाना।
रचे जहॉ मनको निर्भय हो ऊँचा शीश उठाना।
मिलै बिना कुछ भेद-भावके सबको ज्ञान खजाना ॥
तग घरेलू दीवारो का बुना न ताना-बाना।
इसीलिये बच गया जहॉ का पृथक्-पृथक् हो जाना ॥
सदा सत्य की गहराई से शब्दमात्र का आना।
पूरणता की ओर यत्न का जहॉ भुजा फैलाना ॥
बिमल बिवेक सुलभ सोते का जो रसपूर्ण सुहाना ॥
रूढि भयानक मरुस्थलो मे जहॉ नही छिप जाना ॥
जहॉ उदारशील भावो का भावै नित अपनाना।
सच्चे कर्मयोग मे प्रतिजन सीखे चित्त लगाना ॥

सत्यनारायणजी के इस सुखद सुन्दर गीत की सुमधुर ध्वनि अब भी उन लोगो के कानो मे गूँज रही है, जिन्होने इसे फीरोजाबाद मे सुना था।

अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, इन्दौर

सम्मेलन के इस अधिवेशन मे भी सत्यनारायणजी सम्मिलित्त हुए थे। इसका विवरण सत्यनारायणजी के अन्तिम दिवस शीर्षक अध्याय मे दिया गया है।

इस अध्याय से पाठको को पता लग गया होगा कि सत्यनारायणजी का जीवन कितना साहित्यमय था। सहृदयता और सरलता के साथ-साथ जिस सद्गुण ने उनका व्यक्तित्व ऐसा आकर्षक बना दिया, वह था उनका कवित्व। श्रीयुत गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा ने "साहित्यिक रुचि और जीवन" शीर्षक एक लेख मे लिखा था—"ऑखे उठाइये, अब भी अपने हिन्दी ससार मे आप बहुतेरे सज्जनो को देखेगे जो सच्चे साहित्यसेवी है, जिनका जीवन सच्चा

साहित्यिक जीवन है । × × × वह अधखिला फूल आगरा-निवासी कविवर सत्यनारायण अब इस संसार मे नही, पर जिन लोगो ने साहित्य-सम्मेलन के लखनऊ के अधिवेशन या दूसरे अधिवेशनो मे उसको देखा था, उसके भाषा प्रेम को मालूम किया था, उसके हृदय को अपने हृदय मे स्थान दिया था, वही कहेगा कि सत्यनारायण अपनी सादी आकृति मे भी कैसा मनोहर व्यक्ति था ।''

पाठको ने सत्यनारायणजी के साहित्यिक जीवन का वृत्तान्त पढ ही लिया । अब अगले अध्याय मे उनकी ''साहित्यिक मृत्यु'' अर्थात् विवाह और गृह-जीवन का वर्णन पढिये ।

विवाह

आगरा निवासी गोस्वामी पं० ब्रजनाथ शर्म्मा और पं० हरिप्रपन्ना-चार्य्यजी हरद्वार गये हुए थे। वहाँ से लौटते समय उन्होने सोचा कि चलो सहारनपुर की 'मेरी शारदासदन' नामक सस्था को देखने चले। समाचार-पत्रो मे इस सस्था का नाम उपर्युक्त सज्जनो ने कई बार पढा था। सस्था के अधिष्ठाता पंडित मुकुन्दरामजी ने इन महाशयो को अपनी संस्था का निरीक्षण कराया। अधिष्ठाताजी ने एक लडकी से हारमोनियम पर एक भजन भी गवाया। गोस्वामीजी के जेब मे सत्यनारायणजी की कोई कविता पडी हुई थी, उन्होने वह उस लडकी को गाने के लिये दी। लड़की ने उस कविता को हारमोनियम पर गाकर सुनाया। तत्पश्चात् निरीक्षक-गण सन्तुष्ट होकर सस्था से बाहर चले आये। बाहर आने पर जब ये लोग चलने लगे तो प० मुकुन्दराम बोले—"जिस कन्या की परीक्षा आपने ली थी, उसके लिये सुयोग्य वर की आवश्यकता है। यदि आपकी खोज मे कोई वर हो तो कृपया बतलाइये। गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा ने मजाक मे कह दिया—"हमारी तलाश मे एक वर है।" मुकुन्दरामजी ने पूछा—"कौन? गोस्वामी ने कहा—"सत्यनारायण कविरत्न" मुकुन्दरामजी ने कहा—"क्या वे ही, जिनकी कविताएँ पत्रों मे निकला करती है? गोस्वामीजी ने उत्तर दिया—"हाँ वे ही।" मुकुन्दरामजी ने प्रार्थना की कि अच्छी बात है सत्यनारायणजी को आप इस सम्बन्ध के लिये तैयार करे। इस प्रकार हँसी-हँसी मे ही १६ अप्रैल सन् १९१८ को विवाह हो गया।

गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा द्वारा कुछ दिन पत्र-व्यवहार होता रहा। यह खबर 'मौजी" ने १९ जुलाई सन् १९१६ के "भारतमित्र" द्वारा सर्वसाधारण को निम्नलिखित शब्दो मे सुनाई थी—

'सहारनपुर की (मेरी) सम्राज्ञी शारदा-सदन की षोडशी सुन्दरी के

साथ सीधे-सादे सरल सुकवि सत्यनारायण का समीचीन सम्बन्ध शीघ्र ही सुसम्पन्न होने का शुभ समाचार सुरसिक साहित्य-सेवियो को सदा सन्तुष्ट रखेगा इसमे सन्देह नही। क्योकि यह सदानन्द सन्दोह के समागम का साधन है।"

यह समाचार पढकर पडित सत्यनारायणजी के अनेक मित्रों ने उनको पत्र भेजकर इस सम्बन्ध को न करने का आदेश किया। सरस्वती-सदन, इन्दौर के श्रीयुत द्वारकाप्रसाद "सेवक" ने इसी आशय का पत्र कविरत्नजी को भेजा, जिसमे यही आग्रह किया था कि इस सम्बन्ध को आप कदापि न करे। उधर विवाह के लिये पत्र-व्यवहार होता रहा।

२२ मई सन् १९१५ के पत्र मे श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने गोस्वामीजी को लिखा था—

मान्यवर महाशय जी,

नमस्कार

उपरोक्त आश्रम अब सहारनपुर से उठकर ज्वालापुर आ गया है। यहाँ भक्तराज सेठ बलदेवसिंहजी (देहरादून) ने भूमि तथा धन इमारत के लिए दिया है। यहाँ इस संस्था की अधिक उन्नति होगी, ऐसी आशा है। आपका पत्र तथा दोनो पुस्तक प्राप्त हुए थे। हम आपके अनुगृहीत हैं।

परिवार की स्त्रियाँ देखना चाहती है। क्या उक्त पडितजी किसी प्रकार ज्वालापुर (हरिद्वार) पधार सकते है? सब बातें भी तय हो सकेगी। देखना भी सर्व प्रकार ठीक हो सकेगा। मै तो स्वयं भी वहाँ ही आकर देख सकता हूँ। बूझकर सूचना दे तो बड़ी कृपा हो। आने-जाने का व्यय हम दे देवेंगे।

पं० पद्मसिंहजी—सम्पादक "भारतोदय"—भी ज्वालापुर में उक्त पडितजी को जानते है। साक्षात्कार उनसे भी हो जावेगा। कृपया वापसी डाक उत्तर दें।

भवदीय—
मुकुन्दराम शर्मा
अधिष्ठाता
संस्कृत-कन्या-विद्यालय।

इसके बीस-बाईस रोज़ बाद श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने जो पत्र सत्यनारायणजी के नाम भेजा था उसकी ज्यों की त्यो नकल यहाँ दी जाती है ।

स्थान ज्वालापुर (हरिद्वार)
जिला—सहारनपुर
तारीख १५ जून १९१५ ई०
तिथि ज्येष्ठ सुदी ३ भौमवार सवत् १९७२ ।

मान्यवर महोदय श्रीयुत पण्डित सत्यनारायण जी शर्म्मन्·
नमस्ते

आप के विवाह सम्बन्ध मे मैने अब तक पत्र-व्यवहार पं० व्रजनाथजी गोस्वामी शीतलागली, आगरा के साथ किया था । अब आगे आप से ही सब पत्र-व्यवहार करना उचित समझता हूँ । आप स्वयं ही पत्र-व्यवहार कीजिये ।

आप विवाह कब तक कर सकते हैं ? हमने आपके और कन्या के नाम से सुझवाया था तो ता० ३ जौलाई १९१५ तदनुसार मिति आषाढ बदी ७ या ८ निकलती है । आप इस तिथि पर कर सकते है या नही ? और सर्व प्रकार की तैयारी वस्त्र-आभूषण आदि की कर सकेंगे या नही ?

हम विवाह मे अधिक व्यय करने मे असमर्थ है ; क्योकि ४ वर्ष से हमने स्त्री-शिक्षा-व्रत धारण किया हुआ है और बिना कुछ लिये हुए ही इतना बडा कठिन काम सिर पर उठा रक्खा है । हम एक साधारण आदमी और एक निर्धन ब्राह्मण है । इस संस्था से पूर्व भी अनेक नौकरी करते हुए प्राय: ब्राह्मणत्व ही का ध्यान रक्खा है और धन-संग्रह नही किया । हाँ, हम से जो कुछ बना है, अपने परिवार तथा अन्य मित्रों की शिक्षा मे सर्वदा तत्पर रहे है और मेरी स्त्री ने भी स्त्री शिक्षाव्रत के लिये भिक्षुकों की भाँति जीवन कर रक्खा है जो हमारे परस्पर के व्यवहार द्वारा आप

जान सकेंगे। हमने आपकी वृत्ति अपने अनुकूल देखकर ही आप को कन्या के योग्य पसन्द किया है।

इसमे सन्देह नही कि हमारी प्रिय पुत्री सर्व प्रकार योग्य है—सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट, गृह-कार्य्यदक्षा, विदुषी और सर्व कार्य्यो मे प्रवीणा है। इस प्रकार की ब्राह्मण-कन्या बहुत ही कम निकलेगी जिसके पबलिक मे भाषण देहली, लखनऊ, मंसूरी आदि मे हुए हैं और जो इस आश्रम के कार्य्यार्थ भ्रमण मे प्राय: भाषण करती रही है और लेख भी अच्छे लिख लेती है। हार्मोनियम बजाना-गाना भी जानती है। गोस्वामीजी परीक्षा कर भी चुके है, उनसे समाचार मिले ही होगे। आयु भी १६ वर्ष की है। सर्व प्रकार योग्य है। उसको योग्य बनाने मे ही हमने अपना तन, मन, धन अब तक लगाया है। इसलिये धन-हीन है। हमसे धन की आशा तो रखना व्यर्थ होगा। हाँ, हमारे व्यवहार से आप सर्वदा प्रसन्न रहेंगे, यह आशा है। हाँ, हमने आपके स्वास्थ्य-सम्बन्धी सब बाते जो हमे अन्वेषण द्वारा प्रकट हुई थी अपनी प्रिय पुत्री को जता दी है तथा आपके सम्बन्ध की अन्य बाते भी प्रकट कर दी है। वह भी आप के गुणो को अपने अनुकूल समझ कर अन्य कई वरो मे से आपको ही पसन्द करती है। हम भी इसलिये उससे सहमत है।

कन्या का नाम सावित्री देवी है और वह शारीरिक दशा को प्रकट करने पर प्राचीन समय की महाभारतवाली "सावित्री सत्यवान्" की तरह अपने भाग्य को ईश्वर अधीन करती है। हम भी उसके इस दृढ सच्चे विश्वास से अधिक प्रसन्न हुए है, और इसलिये ही हमारे परिवार के इतर सज्जनो तथा मित्रों ने भी आपके साथ सम्बन्ध को सर्वथा अनुकूल ही समझ लिया है। आपकी सम्मति और विचार क्या है? आपके उत्तर आने पर हम ५) पाँच रुपये वाग्दान (सगाई) की रीति के तौर पर मनी-आर्डर द्वारा भेज देवेंगे। वापसी डाक उत्तर दीजिये।

शीघ्र से शीघ्र आप विवाह कर सकेंगे? ज्वालापुर-आगरे मे बड़ा अन्तर है और मार्ग-व्यय अधिक होगा। इसलिए सोच-विचार कर ही

बारात लाना उचित रहेगा। न्यून से न्यून कितने सज्जनो को लाओगे? हाँ, सब सज्जन योग्य पुरुषो को आप स्वयं विचार कर के ला सकते है। मित्रवर पं० पद्मसिहजी की भी यही सम्मति है।

मै आपके ग्राम मे भी गया था। अब तक आप एकाकी थे। गृहस्थी होने की दशा मे मकानादि सुरक्षित और आराम का होना चाहिए। आपको निज मकान का भी प्रबन्ध करना पड़ेगा। आप स्वयम् विचारशील है, मै अधिक क्या लिखूँ?

बारात मे आनेवाली तादाद को पूर्व लिखने से आतिथ्यादि का प्रबन्ध समुचित किया जा सकेगा। इसलिये पूर्व सूचना देवें।

हमारे द्वारा यहा क्या प्रबन्ध (बाजे आदि का) कराना उचित समझते है, यह भी लिख भेजे।

विवाह संस्कार कराने की प० घनश्यामजी के भ्राता पं० भीमसेनजी आगरा के तथा पर्वतीय विद्वान् पं० यज्ञेश्वरजी यहा ही है। हम बुला लेवेगे।

वापसी डाक उत्तर देवे।

भवदीय—
मुकुन्दराम शर्म्मा गौड़, पाराशर।
अधिष्ठाता
कन्या संस्कृत विद्यालय।
P. O. jwalapur, Dt Saharanpur,
O R. R.

इस पत्र के उत्तर मे सत्यनारायणजी ने एक कार्ड भेजा था। तत्पश्चात् एक चिट्ठी और भी भेजी। उस चिट्ठी मे आपने लिखा था :—

"आपके दीर्घकाय कृपा-पत्र के उत्तर मे एक कार्ड डाला जा चुका है। जिस प्रेमपूर्ण ओजस्विनी भाषा मे आपने वह पत्र लिखा था उसे पढकर

मै क्या, कोई भी सहृदय आपकी आज्ञा उल्लघन नही कर सकता; फिर भी प्रस्तावित विषय पर पुनर्विचार करना कोई बुराई नही है। सहसा किसी कार्य को नही करना चाहिये। इसलिये निम्नलिखित कुछ बातो पर ध्यान देने की कृपा करने के लिये मै आप से सानुरोध प्रार्थना करता हूँ। आशा है, आप ऐसा करके कृतकृत्य करेगे। जिन बातों पर विचार करना है वे सब की सब यथार्थ है, उन मे लेशमात्र भी अतिशयोक्ति की मात्रा नहीं है।

(१) मेरा स्वास्थ्य लगभग ३ साल से बिगड़ता चला आ रहा है। अब भी अच्छा नही है। बरसात मे रोग का दौरा होना सम्भव है जिसकी मै प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

(२) स्वतन्त्र जीवन ही मेरा जीवन है। नौकरी-चाकरी कभी की नही और ऐसी दशा मे श्रम करना* × × ×।"

ता० ३१ जुलाई १९१५ को सत्यनारायणजी ने किसी मित्र को यह पत्र लिखा था--

धाधूपुर
३१ जुलाई १९१५

प्रियवर,

कृपा पत्र यथा समय मिला। सामयिक सूचना के लिये धन्यवाद। विशद प्रकार से प० बदरीनाथ तथा प० लक्ष्मीधरजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा है। हाँ, मुझे देखकर मुसकराये अवश्य है। आपको किस प्रकार सच आ गया कि मै "बेचैन" हूं। प्रथम तो मेरा स्वास्थ्य ही अच्छा नही है। आपसे क्या यह छिपा है ? न मेरी ओर से अभी तक कोई प्रस्ताव गया है। अपनी दशा जैसी है वैसी ही लिख दी गई है। जैसे आपने यह कृपा की, वैसी ही उस पत्रोल्लिखित "गृहलक्ष्मी" की सद्गुणावली, अवकाशानुसार, विस्तारपूर्वक लिखिये।

---

*इस पत्र का शेष अंश नहीं मिला। --लेखक

ऐसा सम्बन्ध करने के पूर्व यथासम्भव मै आप की सेवा मे आऊँगा केवल स्वास्थ्य-परीक्षा के लिये। तत्पश्चात् कोई काम होगा—इस ओर से आप निश्चिन्त रहे। यदि दैव-संयोग से किसी विकट समस्या मे फँसना ही पडा तो आप को तार द्वारा अवश्य सूचना दी जायगी, विश्वास रखिये।

अब मै कुछ-कुछ स्वतंत्रतापूर्वक स्वास ले उठा हूँ। अब आपकी सवा में तुकबन्दी भेजा करूँगा।

आपका—

सत्यनारायण

६ अक्टूबर सन् १९१५ को श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने निम्नलिखित पत्र फिर सत्यनारायणजी को लिखा—

"श्रीयुत मान्यवर महोदयजी,

मैने आपके पास एक पत्र विवाह के सम्बन्ध मे ता० १७ सितम्बर १९१५ को डाला था। अब तक प्रतीक्षा कर रहा हूँ, उत्तर नही दिया। कृपया वापसी डाक उत्तर प्रदान करे।

पं० ब्रजनाथजी की भेजी हुई पत्रिका "स्त्री-सुधार" नामी ट्रेक्ट की समालोचनावाली तो पहुँच चुकी है।

विवाह के सम्बन्ध मे अब आपके क्या विचार रहे? स्वास्थ्य कैसा प्रमाणित हुआ? आपके कारण हमने औरो से अभी तक बात भी नही की है।

वापसी डाक उत्तर देने की कृपा करे। हम विजया दशमी—दशहरा पर वाग्दान (सगाई) की रसम अदा करना चाहते है। सगाई भेजी जावेगी।

अगहन मे विवाह करने को तैयार है या नही? क्या सम्मति है? आप भी कन्या को देखना चाहते हो तो आकर देख जायँ। यह बात कुछ

बुरी नही कि परस्पर सब बात देख ली जाय । कन्या से आपकी दशादि सब कह दी गई है। इतने पर भी वह आपको अनुकूल समझती हे।

भवदीय—
मुकुन्दराम शर्म्मा

इसके उत्तर मे १३।१०।१५ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र भेजा था —

श्री

१३—१०—१५

भगवन,

कृपा-पत्र मिला । ज्वर से पीडित होने तथा आगरा-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-सम्बन्धी कार्य-भार के कारण ठीक सयय पर उत्तर न दे सका । क्षमा करियेगा ।

मेरा स्वास्थ्य अब पहले से गिर गया है । विवाह विषयक प्रश्न को मैने—एक बार नही—कई बार सोचा और जब-जब इस पर विचार किया तब-तब आत्मा के गम्भीरतम प्रदेश से यही निर्णयात्मक ध्वनि प्रति-ध्वनि हुई कि जो व्यक्ति मेरे लिये इतना आत्मत्याग करता है उसके भविष्य-सुख को चिन्ता करना मेरा परम कर्त्तव्य है—धर्म है ।

जैसा आपकी सेवा मे प्रथम निवेदन किया जा चुका है कि गृहस्थ-जीवन सुख-सौन्दर्य्य अच्छे स्वास्थ्य पर निर्भर है, अपनी हाल की शारीरिक व्यवस्था को देखते हुए मुझे सखेद लिखना पड़ता है कि मेरा स्वास्थ्य विवाह योग्य कदापि नही है। ऐसी दशा मे आप से सादर यह अनुरोध करना अनुचित न होगा कि आप कृपया किसी स्वस्थ एवम् सुयोग्य सज्जन को चुनियेगा जिससे वह देवी आराम पावे । दशहरा पर सहसा सगाई भेजना साहस-कार्य है । इसे कदापि न करे; क्योंकि यह मेरे विचार के विरुद्ध है ।

हाँ, इस सम्बन्ध से कही बढकर हम और आप उस पवित्र प्रेम-पाश मे प्रतिबद्ध है जो प्रत्येक मनुष्य को, यदि वह सच्चा मनुष्य है, स्वदेश तथा स्वबान्धवो की सेवा करने के लिये विवश करता है। हमारा आपका उद्देश्य एक है। इस कारण आपके सर्वोपयोगी पुनीत कार्य को अग्रसर करने के लिये यह शरीर सर्वदा समुपस्थित है। इसे आप अपना ही समझें।

यदि कभी आना हुआ तो आपकी पुण्यमयी सस्था तथा आपके पुण्य दर्शन से अपने को अवश्य कृतार्थ करूँगा। पूज्य पं० पद्मसिहजी को प्रणाम्।

विनीत—

सत्यनारायण

इसके उत्तर मे श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने १६ अक्टूबर को लिखा था—

"मन्यवर महोदयजी,

नमस्कार

आपका १३। १०। १५ का पत्र प्राप्त हुआ। उत्तर मे निवेदन है कि हम आपकी इस कृपा के लिये अत्यन्त अनुगृहीत है जो आपने हमारे तथा हमारी संस्था के लिये दर्शाई है।

हमने आपके भरोसे पर अभी तक दूसरे किसी वर की तालाश नही की थी—और कन्या बडी समझदार है। आपके गुणो पर मुग्ध होकर उसने आपके साथ ही पत्र-व्यवहार कराया था। अब आपने स्पष्ट उत्तर दे दिया है। हम आपकी सुजनता की प्रशंसा करते है; परन्तु साथ मे यह भी निवेदन करते है कि क्या वास्तव मे स्वास्थ्य-दशा वर्षा ऋतु मे गिर गई है या पूर्ववत् ही है। साधारण ज्वर की चिन्ता नही करनी चाहिये। और यदि आप किसी अन्य कारण से नही करना चाहते हो तो दूसरी बात है। हमे भी सूचित करना चाहिये—हमे भूषण-वस्त्रादि की आवश्यकता न समझे। हम तो आपकी सुजनता से प्रसन्न है। इलाज हम आपका यहाँ करा देवेगे।

मेरे कई मित्र अच्छे अनुभवी वैद्य है। और यदि किसी प्रकार भी आप विवाह करना चाहते ही नही तो हमे कोई और वर बतलाइये। आगरा-कालिज मे कोई पढता हो अथवा आपकी दृष्टि में अन्य कोई हो, या अपने मित्रो से पता चले तो हमे उत्तर देने की कृपा करे।

अपने विषय मे भी उत्तर देवे कि स्वास्थ्य-दशा के अतिरिक्त और बात तो बाधक नही है।

भवदीय—
मुकुन्दराम शर्म्मा

२२ अक्टूबर को श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने निम्नलिखत तार गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा के नाम भेजा—

"Send satyanarayan one day expenses will pay.
Mukundram"

अर्थात् "सत्यनारायण को एक दिन के लिए भेजो। खर्चा हम देगे
—मुकुन्दराम।

इस तार के साथ ही एक तार उन्होने सत्यनारायणजी को भी भेजा और साथ ही निम्नलिखित पत्र भी।

२२ अक्टूबर १९१५

मान्यवर महोदयजी,

नमस्कार

मैंने श्रीमान् के पास एक पत्र भेजा था, पहुँचा होगा। उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज आपके नाम तथा गोस्वामी ब्रजनाथजी के नाम तार भी दिया है कि और एक दिन के वास्ते हम पर कृपा करके यहाँ पधारे तो बड़ी भारी कृपा हो।

आपने किस कारण से विवाह का निषेध किया है। हम स्वयं वास्तविक कारण जानना चाहते है। आपका स्वास्थ्य अच्छा है। हमे ऐसा

प्रतीत हुआ है कि आपने किन्हीं अन्य कारणों से निषेध किया है। अतः हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि मार्ग-व्ययादि हम देवेंगे। एक बार आप हमारे यहाँ आकर दर्शन देने की कृपा करें। परिवार, स्त्रियाँ आदि आपको देखना चाहती हैं। हम आपके साथ ही मानसिक संकल्प देर से कर चुके हैं। कन्या भी आपके गुणों से मुग्ध होकर आपको ही अधिक पसन्द करती है। कृपया आप एक दिन को अवश्य पधारें। आने की सूचना तार द्वारा दे देवें।

भवदीय
मुकुन्दराम शर्मा

इस पत्र को पाकर सत्यनारायणजी ज्वालापुर गये और ज्वालापुर से लौटने के पश्चात् सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र २८।१०।१५ को पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा के पास भेजा——

आगरा
२८।१०।१५

पूज्य प्रिय पंडितजी,

पद

सुधि रहि-रहि आवत तव सँग की रँग-रलियाँ।
नय नयनाभिराम श्यामल बपु-शैल, गंग, तट गलियाँ॥
रस-बतरानि बिचारत बिकसत रोम-रोम की कलियाँ।
सत गरीब को फेरि देउ मन भली न ये छलबलियाँ॥

आ गया——शरीर आगया! मन वहाँ ही आपकी सेवा में छोड़ आया हूँ। आपके दरबार में यहाँ का कोई प्रतिनिधि चाहिये न?

कुछ इजहार लिये जाने पर मुक़दमा फिर मुलतवी हो गया। यहाँ अलीगढ़ की ट्रेन से लगभग १॥ या २ बजे आ पहुँचा।

गाड़ी में बैठा जब मैं आ रहा था तब झंझट में फँसे हुए मैंने दूर से देखा कि पं० रामगोपालजी महाविद्यालय के फाटक पर गाड़ी की ओर

देख रहे थे। मै नमस्कार करने जब तक आया तब तक गाड़ी दूर निकल आई। उनकी निगाह ठीक सीध मे होने से नमस्कार-कार को सफलता न हुई। कृपाकर मेरी ओर से उनसे क्षमा माग लीजे।

मास्टर साहब के सब ब्राह्मी-पत्र पहुँचा दिये। उनसे निवेदन करिये कि जरा इधर भी कृपा-दृष्टि रक्खें।

पूज्य पं० शालग्रामजी से नमस्कार।

श्री नारायणसिहजी, सुन्दरलालजी तथा अन्य प्रेमी विद्यार्थियो से नमस्कार।

आपका—
सत्यनारायण

३ नवम्बर को मुकुन्दरामजी ने एक पत्र गोस्वामी ब्रजनाथजी शर्मा के नाम भेजा। उसमे आपने लिखा था—

"हम मार्गशीर्ष से आगे विवाह के लिये कदापि नहीं ठहर सकते। यदि पं० सत्यनारायणजी किसी प्रकार भी उस समय तक नही कर सकते तो हम विवश है। हम अन्यत्र प्रबन्ध कर रहे है। आप उनसे बूझकर शीघ्र उत्तर दे।"

फिर दूसरे पत्र मे पं० मुकुन्दरामजी ने गोस्वामीजी को लिखा—

"हमने आपसे बहुत आग्रह किया था कि हम बहुत शीघ्र विवाह करना चाहते है। यदि शीघ्र विवाह करना स्वीकार करें तो वागदान का मनीआर्डर लेवें अन्यथा वापिस कर दे। जब आपका उत्तर आ गया कि नही कर सकते, तब हमने अन्यत्र पत्र-व्यवहार किया था और सब बात-चीत पक्की कर चुके थे। शीघ्र ही विवाह की तैयारी भी हो रही थी। इतने ही में फिर आपके पत्र मुझ पर तथा पं० पद्मसिहजी पर आये कि माघ मे अवश्य विवाह कर लेवेगे और वागदान का मनीआर्डर भी लेने की सूचना मिली तो फिर वहाँ का पत्र-व्यवहार बन्द करके पं० सत्यनारायण

जी के साथ ही पं० पद्मसिंहजी तथा आपके आग्रह पर सम्बन्ध स्वीकार कर लिया है। परन्तु इतनी बात अवश्य है कि हम देर तक ठहर किसी प्रकार भी नही सकेंगे। हम विवाह की तिथि निश्चय करा के शीघ्र ही भेजनेवाले है। यथा सम्भव जो भी तिथि नियत हो सकेगी, की जावेगी। आप सब तैयारी करे। हम बडी धूमधाम नही चाहते। साधारण तौर पर कार्य्य करे। परन्तु पौष के अन्त अथवा माघ के प्रारम्भ मे विवाह करना अवश्य ही पडेगा, यह पूरा-पूरा प्रबन्ध रक्खे। इसी शर्त पर वाग्दान को भेजा भी गया था। हमारी यही शर्त पत्रो मे भी थी। हमने शीघ्र ही विवाह करनेवाले सम्बन्ध को आपकी स्वीकारी पर बन्द किया है।"

इसके ४-५ दिन बाद ही चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक के पास भी मुकुन्दरामजी ने एक पत्र भेजा जिसमे लिखा था—

"यदि वे (सत्यनारायण) मार्गशीर्ष मे विवाह करने के लिये तैयार हो सके तो वाग्दानवाला मनीआर्डर ले लेवे अन्यथा हमे उनकी आशा छोडकर कोई दूसरा वर ही निश्चय करना पड़ेगा। हम मार्गशीर्ष से आगे किसी प्रकार भी विवाह को हटाने को तैयार नही है।"

इन पत्रो के उत्तर मे सत्यनारायणजी ने ९।११।१५ को निम्नलिखित पत्र भेजा था—

भगवन्,

गोस्वामी ब्रजनाथजी द्वारा कृपा-पत्र मिला। यदि उसे एक अश मे अल्टीमेटम कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सच जानिये, आपके सद्-व्यवहार से विमोहित होकर मै आपकी सेवा मे आत्मसमर्पण कर चुका हूँ; किन्तु जब तक पूज्य प० यज्ञेश्वरजी आदि वैद्य-प्रवर एक मत होकर मेरे स्वास्थ्य के लिये अपनी पुष्ट सन्तोषजनक सम्मति न देगे तब तक इस सम्बन्ध के विषय मे अपना स्वीकारात्मक उत्तर अथवा कार्य स्थगित करने के लिये विवश हूँ। माना कि आपके तथा देवी के हृदय मे अगाध प्रेम है, परन्तु मै जो आज आगा-पीछा सोचने में कुछ विलम्ब कर रहा हूँ क्या वह सत्परिणाम-कामना का द्योतक नही है?

'सहसा विदधीत न क्रियाम्'*

यदि किसी कारण विशेष से आपको अपने देर के मानसिक संकल्प में परिवर्तन करने को शीघ्रता हुई है, जैसा कि होना स्वाभाविक भी है, तो तद्विषय में इस शरीर की आन्तरिक कामना है--

"विधाता भद्रं ते वितरतु मनोज्ञाय विधये,
विधेयासुर्देवाः परमरमणीया परिणितिम् ।"

अपने एक सेवक की तरह मुझे भी याद रखिये और सर्वदा कृपा बनाये रखिये ।

आपका—
सत्यनारायण

ता० २१ नवम्बर को श्रीमुकुन्दरामजी ने एक पत्र फिर सत्यनारायण जी को भेजा, जिसमे लिखा था :—

"हमने अन्य वर तलाश करने का विचार कर लिया है और एक अच्छा वर सस्कृत का विद्वान् भी मिल गया है जो इसी अगहन में विवाह भी कर सकेगा। इसलिये आप को सूचनार्थ अब लिखा जाता है कि हम विवश होकर दूसरी जगह करते है। हमारा इसमे कोई दोष नही ।

हमने ६ या ७ मास आपके कथनानुसार प्रतीक्षा भी की थी। जब आप सर्वथा सहमत नही हुए तब हम अन्यत्र करते है। ××× परन्तु हमारा प्रेम आपसे पूर्ववत् रहेगा। हमे भूल मत जाना ।"

इस प्रकार यह सम्बन्ध लगभग टूट हो गया था कि दैवयोग से उसमें उपन्यास जैसा परिवर्तन हुआ। ता०२६ । ११ । १५ को महाविद्यालय ज्वालापुर से पंडित पद्मसिह शर्मा ने निम्नलिखित पत्र गोस्वामीजी को लिखा—

---

*यह वाक्य सत्यनारायणजी ने लिखकर फिर काट दिया था।
—लेखक।

"श्री गोस्वामीजी महाराज,

प्रणाम,

कृपा-कार्ड आपका मिला। मै दस-बारह दिन से पं० मुकुन्दरामजी से नही मिल सका। आज उनसे मिलकर मालूम करूँगा कि उनके विचार-परिवर्तन का मुख्य कारण क्या है। मै तो ससार-भर के वर पुरुषो पर श्रीसत्यनारायणजी को "तर्जीह" देता हूँ। जहाँ तक मेरी शक्ति मे है, मुकुन्दरामजो को समझाऊँगा। उन्हे कई अनिवार्य कारणो से जल्दी तो बेशक बहुत है। क्या माघ से पूर्व आप वर महोदय को किसी प्रकार भी तैयार नही कर सकते? विशेष तैयारी की जरूरत नही है। आप पूरा प्रयत्न कीजिये कि माघ से पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न हो जाय। मैं मुकुन्दराम को समझाता हूँ।

भवदीय—

पद्मसिह शर्म्मा

इसके बाद क्या हुआ, उसका पता पं० पद्मसिंह शर्मा के २१।१२।१५ के पत्र से लगता है। शर्माजी ने सत्यनारायणजी को लिखा था:—

"आशा है, आप इधर आने की तयारी मे लगे होगे। पं० मुकुन्दरामजी ने अपने पत्र मे तिथि की सूचना आप को दे दी है। तदनुसार यथासमय आप अपने सहचर वर्ग सहित दर्शन देंगे, इसमे तो सन्देह नही। श्रीगोस्वामीजी का एक कृपा-कार्ड मिला था। उसके उत्तर मे मै दो पत्र भेज चुका हूँ। आशा है, वे उन्हे मिलेगे। फिर उन्होने (जैसा कि अपने पत्र मे इच्छा प्रकट को थी) कुछ पूछा नहीं। कोई बात ऐसी हो तो साफ करली जाय। इतना फिर निवेदन है कि किसी बात मे भी तकल्लुफ या संकोच की जरा भी जरूरत नही है। जिस प्रकार इच्छा हो, पधारिये।

बरात भी 'जस दूल्हा तस सजी बराता" के अनुरूप ही होनी चाहिये—बस इने-गिने दस-पाँच साहित्य-सेवी

इस पत्र का उत्तर २६।१२।१५ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पद्य मे दिया था ।

"आई तव पाती ।
नहि बिसरायो अजहुँ मोहि यह जानि सिरानी छाती ।।
बड़े भाग जो इतने दिन मे सोचि कछू सुधि लीनी ।
दरस-पिपासाकुल को आधी जीवन आशा दीनी ।।
जो मोसो हँसि मिले होत मै तासु निरन्तर चेरो ।
बस गुनही गुन निरखत तिह-मधि सरल प्रकृति को प्रेरौ ।।
यह स्वभाव कौ रोग जानिये मेरो बस कछु नाही ।
नित नव बिकल रहत याही सो सहृदय बिछुरन माँही ।।
सदा दारु योषित सम बेबस आज्ञा मुदित प्रमानै ।
कोरो सत्य ग्राम को बासी कहा "तकल्लुफ" जानै ।।"

इस कविता की पिछली ६ पक्तियों मे सत्यनारायणजी ने अपने चरित्र की ओर सकेत किया है । निर्दोष और प्रेममय सरलता ही उनके जीवन मे सबसे अधिक आकर्षक वस्तु थी । अस्तु, 'अब कोरे सत्य ग्राम के बासी को' गृह-जजाल मे फँसने का समय आ गया । वे कागज के टुकड़े पर हिसाब लगाने बैठे —

हँसुली ४०)
पहुँची } १००)
कड़े
बाजू २०)
१० लच्छे } ३०)
झाझन
करधनी } २५)
अँगूठी
लहँगा
दुपट्टा } ५०)
चद्दर

विवाहोत्सव

७ फ़र्वरी सन् १९१६ को सत्यनारायणजी का विवाह हुआ।

"तुलसी गाय-बजाय के दियौ काठ मे पाँव"

विवाह के अवसर पर सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित बचन दिये थे।

सूखे चने चबाकर भी हम हिन्दी को आराधेंगे।
हिन्दू हिन्द देश का मंगल तन, मन, धन से साधेंगे।।
क्या हिन्दू क्या आर्यसमाजी, मुसलमान क्या ईसाई।
भेद-भाव तज सदा गिनेगे हम सब को भाई-भाई।।
उनका दु:ख दूर करने मे मानेगे अपना आनन्द।
सदा कहेगे, जैसा चहिये, सच्ची बाते हम स्वच्छन्द।।
कुरीतियो की मूल काटने हम आवाज उठावेगे।
शुद्ध रीतियो को सप्रेम हम हृदयासन बैठावेगे।।

इस प्रकार दो भिन्न-भिन्न प्रकृतियो का ससर्ग हुआ। कर्कशता सरलता के गले पड़ी। स्वच्छन्दता ने सहृदयता पर अधिकार जमाया। चंचलता ने सरलता का लाभ उठाया और विलासिता तथा भक्ति का मुक़ाबला हुआ। उस समय प्रेमपुर धाधूपुर का वायुमडल अशान्त बन गया और एक करुणोत्पादक ध्वनि हुई—

"भयो क्यो अनचाहत को संग।

अगले अध्याय मे इसी ध्वनि का अर्थ किया जायगा।

गृह-जीवन

ओ लीवर क्रौम्बैल ने अपने चित्रकार से कहा था--

"Paint me as I am. If you leave out the scars and wrinkles, I will not pay you a shilling."

अर्थात् "हमारा चित्र ज्यो का त्यो बनाओ। यदि तुमने चहरे की गूथो और सिकुडनों को छोड दिया तो हम तुम्हे एक शिलिङ्ग भी नही देने के।" यही वाक्य प्रत्येक चरित्र-लेखक के लिए आदर्श का काम कर सकता है। अपने चरित्र-नायक की कमजोरियो को दिखलाना उतना ही आवश्यक है जितना उसके गुणो का वर्णन करना। इसी उद्देश्य से सत्य-नारायणजी के गृह-जीवन पर प्रकाश डालने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त एक बात और है। वह यह कि सत्यनारायणजी की मानवता को सर्वसाधारण के सम्मुख लाने के लिए ही यह जीवनी लिखी गई है। इसलिए यदि मै इस अध्याय को छोड़ दूँ तो यह जीवनी बिलकुल अधूरी ही रह जायगी। अच्छे चित्र मे छाया और प्रकाश दोनो का प्रशंसनीय और यथोचित समिश्रण रहता है। यदि आप छाया भाग को छोड़ दें तो वह चित्र कभी असली चित्र नही कहा जा सकता। और फिर यदि सत्य-नारायणजी के जीवन का यह अश छोड़ दिया जाय तो सर्वसाधारण की समझ मे उन पद्यों का महत्त्व कदापि नही आ सकता जो उन्होने अपने गृहजीवन से निराश और दुखी होने की दशा में लिखे थे।

सत्यनारायणजी का विवाह ७ फरवरी सन् १९१६ को हुआ था × × फ़रवरी को सत्यनारायणजी सपत्नीक धाँधूपुर लौटे। उस समय सत्यनारायणजी के हृदय मे क्या भाव थे इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। लेकिन इतना हम अवश्य कह सकते है कि उनके हृदय मे यह आशा अवश्य थी कि एक सुशिक्षित पत्नी के ससर्ग से उनका साहित्यमय जीवन और भी

अधिक सरस हो जायगा। उस समय "कोरे सत्य ग्राम के बासी" को इस बात का पता नही था कि 'शिक्षा' और 'सहृदयता दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ है। महीने-भर के अन्दर ही सत्यनारायणजी को पता लग गया कि शिक्षित मनुष्य जितना हृदयहीन हो सकता है उतना अशिक्षित नही हो सकता।

धाँधूपुर पहुँचने के कुछ ही दिन बाद श्रीमती सावित्री देवीजी ने कहना प्रारम्भ किया—"मुझे अपनी सहेली "आमोदनी"* के पास "रविनगर" पहुँचा दो। सत्यनारायणजी ने बहुत समझाया लेकिन श्रीमतीजी न मानी।

७ अप्रैल १९१६ को श्रीमतीजी के नाम "आमोदिनी" का निम्न-लिखित पत्र आया।

५ अप्रेल १९१६

श्रीमान्‌जी तथा श्रीमती बहिनजी,

नमस्ते

आपके ४ ता० को आने के कई पत्र मुझको मिले और एक ६ तारीख को आने का पत्र मुझको मिला जिसमें यह लिखा हुआ था कि मै अव्वल तो चार तारीख को जरूर-ज़रूर आऊँगी, नहीं तो ६ ता० को जरूर जरूर आऊँगी। कल चार तारीख को गाड़ी स्टेशन पर गई। मुरादाबाद से जो दस बजे गाड़ी आती है, वह देखी। फिर ३ साढ़े तीन बजे जो गाड़ी आती है वह देखी। २ पैसे का टिकट लेकर प्लेटफार्म पर केशौराम ने हर एक गाड़ी में पुकारा। लेकिन फिर शाम के वक्त लाचार होकर चला आया।

आपकी बहिन—आमोदिनी

* असली नामों को न लिखकर हमने इन कल्पित नामों को ही लिखना उचित समझा है। —लेखक।

श्रीमती सावित्रीजी ने अपने ५।१२।१८ के पत्र मे मुझे लिखा था:—

"पंडितजी मेरे कहने पर मुझे आमोदिनी के यहाँ पहुँचाने के लिए मुरादाबाद १० मार्च १९१६ को गये थे और मेरे कारण आमोदिनी से भी वह प्रसन्न थे; लेकिन कुछ कारणो से फिर वह उसके व्यवहार से अप्रसन्न हो गये थे। मुझे भेजना भी बन्द कर दिया था।"

श्रीमतीजी ने १० अप्रैल की जगह १० मार्च भ्रमवश लिख दिया मालूम होता है। अस्तु, पडितजी दिन-रात के कलह से तंग आकर श्रीमतीजी को रविनगर पहुँचा आये।

आमोदिनीजी पर प्रसन्न होकर पडितजी ने यह कविता लिखी थी:—

कली री अब तू फूल भई।
मन मधुकर बहु आश लगाये तोसों प्रेममई॥
बिकसत सुभग अग दल प्रतिपल शिशुता झलक सिरानी।
रह्यो कछू अज्ञात तोहि जो अब ऐसी हठ ठानी॥
चार दिना को लहरि महरि है पुनि रीते के रीते।
ऐसो करहु न जो पछितावौ पाछे अवसर बीते॥
सोचि-समझि के कीजै कारज जग स्वारथ को चेरो।
सधे लोक-परलोक याहि सो सत्य सिखावन मेरो॥

इस कविता की एक प्रति श्रीमती आमोदिनी और दूसरी श्रीमती सावित्री देवीजी के नाम भेजी गई थी।

घाँघूपुर पहुँचने के बाद पडितजी को प्रतीत हुआ कि सावित्रीजी को रविनगर पहुँचाकर हमने भयकर भूल की। चिट्ठियाँ भेजनी शुरू कीं। ज़बाब नदारद! २३ अप्रैल १९१६ को श्रीमती आमोदिनी देवी ने निम्न-लिखित पत्र भेजा।

"श्रीमान् मान्यवर पंडितजी,

नमस्ते ।

आप के ३ पत्र आये । वृत्त ज्ञात हुआ और पढकर चित्त अति प्रसन्न हुआ कि आप कुशलपूर्वक घर पर पहुँच गये । आपका प्रेषित 'उत्तर-रामचरित्र' नामक पुस्तक प्राप्त हुआ । आप की इस कृपा के लिये धन्यवाद है । अपराध तो अपराधियो से हुआ करते है । आपके पास तो अपराध की हवा भी नही निकल सकती । हम ही अपराधी है कि आपके उत्तर मे विलम्ब हुआ । क्षमा करे । शेष कुशल है ।

आपकी भगिनी

आमोदिनी

पंडितजी ने फिर भी सावित्रीजी के नाम आने के लिये पत्र भेजा । उसके उत्तर मे २७ अप्रैल को श्रीमती आमोदिनी ने पंडितजी को लिखा—"आपको किसी प्रकार घबराने की जरूरत नहीं है । ये भी आपका मकान है । और आने की बाबत यह है कि ये आपका मकान है । आप जब चाहे तब आ सकते है । बाकी उनके आने की बात की ये है कि जब आने को वे लिख देगी तभी आवेगी और आप यहाँ से किसी प्रकार की इन्तजारी न करें ।"

२४ मई १९१६ को सत्यनारायणजी को निम्नलिखित तार मिला—

"Don't Come useless cant go.

—Sawitri"

अर्थात् "मत आओ । निरर्थक है । नही जा सकती ।"

—सावित्री"

२६ मई को श्रीमतीजी ने पत्र भी भेजा । उसमे लिखा था :—

"पंडितजी, आपका पत्र मिला । उसके उत्तर मे मैने तार दिया है । शायद उससे कुछ हाल मालूम कर लिया होगा । अब पत्र भी इस विषय का भेजा जाता है । जब तक खुद मेरी ही इच्छा आने की न हो, आपका

इसमे परिश्रम करना एक अनधिकार-चेष्टा ही समझी जायगी । ××× विशेष बात यही है । अपने आने का विचार छोड़दें ।"

इसके पूर्व ५ मई के पत्र मे श्रीमतीजी लिख चुकी थीं :—

"इसमे कोई सन्देह नही कि जो बाते आप हम दोनो के ऊपर घटा रहे हैं वे खुद की हीं लिखी नहीं; बल्कि ज्वालापुर के पत्र से ही लिखी हुई है । और ईश्वर से अनेक बार प्रार्थना है कि वे दुष्ट-विध्वसकारी बनकर हमारी यातना को हरे और आपकी जबान मुबारिक हो और आपके लिखने के मुताबिक बाते ही पत्थर की लकीर हो । ××× अगर आप हमारे पिताजी की कृपा से नेत्र-विहीन हो गये है तो मेरे लिये ईश्वर का न्याय है । × × × विवाह होने से जकड़ी गई हूँ सो मन तो स्वतंत्र है । मुझे भगवान का डर हैं ।"

२७ मई को श्रीमतीजी ने लिखा था :—

"आपका दूसरा पत्र मिला । उसका उत्तर आमोदिनी से न लिखाकर खुद ही लिखने की तकलीफ उठाती हूँ । मेरे यहाँ रहने मे अगर आपकी बदनामी है तो इसका मै कोई यत्न नही कर सकती । ××××× मुझे तो इस दुनिया से कूच करना है । परन्तु आप अपना नफा-नुकसान सोचकर कोई कार्य्य करे × × × × × मै तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ । परन्तु सनातनी इस बात के बहुत पाबन्द है—"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी ।" आप भी तो उसी शिक्षा के माननेवाले है ? × × × × मेरी इच्छा को कोई नही रोक सकता । मै भी अब अपने को दुनिया की कोई दिन की अतिथि समझकर भविष्य के वियोगानल को सहन कर लूँगी; पर आप मुझसे कोई सुख उठाने की चेष्टा न करे; क्योकि मेरा जन्म आर्य्य कुल मे हुआ है × × ।"

सत्यनारायणजी की गुरुबहन जानकीजी को सावित्री देवी ने लिखा था—"अब मुझे पता लग गया है कि ये सब मेरी जान लेने की फ़िक्र मे हैं । वहाँ पर मुझे गर्मी ज्यादः सताती है । अगर मै वहाँ गर्मियो मे रहूँगी

तो ज़रूर-ज़रूर मर जाऊँगी। तुम्हारे भाई की एक चिट्ठी आई है। उनसे कान खोलकर कह देना कि मेरी तन्दुरुस्ती यहाँ पर अच्छी है। वह गर्मियो मे मुझे ले जाने का व्यर्थ कष्ट न उठावे। अगर वे जबरदस्ती करेगे तो मैं ही ज़हर खाकर मर जाऊँगी।"

ये सब पत्र सुरक्षित है। स्थानाभाव से हम उनको पूरा-पूरा उद्धृत करने मे असमर्थ है। अतएव उनके चुने हुए वाक्यो को यहाँ लिखे देते है।

"मेरा जन्म आर्य्य-कुल मे हुआ है पर एक माता के पेट से रावण जैसा पापी, विभीषण जैसे धर्मात्मा पैदा हुए थे। मैं आर्य्य माता की पुत्री पापिनी हूँ। तभी तो गृहलक्ष्मी नही, पिशाचिनी होकर ही इसको चरितार्थ कर रही हूँ। कालिका पिशाचिनी सावित्री से तुम्हे अपनी जान अवश्य बचानी चाहिये"।

"मेरी इच्छा की लगाम नही है। इसको आप पूरा करना चाहते है; परन्तु लाभ कुछ भी नही"।

"अच्छा है अगर आप प्रेम के दावानल को बुझाने को चेष्टा न करे; क्योंकि मेरे ऊपर आज तक किसी ने ऐसा करने की सलाह नही दी है। बस, अब अगर बुद्धि से काम ले तो अच्छा, नही तो "चिड़िया चुँग गई खेत पछताओ कुछ नही होगा"।

एक पर्चे पर लिखा हुआ है--

"जरे दीवार जरा झाक के तुम देख तो लो।
नातवाँ करते है दिल थाम के आहे क्यों कर।
दिल वो जिगर खून हो चुके है, हवास तक अपने जा चुके है—
वही मुहब्बत का हौसला है, हजार कोडे गो खा चुके है।"

किसी को भेजे गये एक पत्र मे ये पक्तियाँ है--

"इसी उलफत के कूँचे मे नफा पीछे जरर पहले,
लगावे आँख जो कोई करे जाँ का सर्फ़ पहले"।

एक दूसरे पत्र मे सत्यनारायणजी को ये पक्तियाँ लिखी गई थी—

"यह प्रहार प्रेमोपहार हाँ इसी दिशा मे आने दो ।
कठपुतली-सा हमें विवश करके भरपूर नचाने दो ।

इसका साथी बनो मुझे पर्वाह नही है ।

× × ×

भला मिटाये मिट सकती है जब है इतनी चाह मुझे ।

इस विचित्र विचार-प्रवाह को यही रोककर हम सत्यनारायणजी का २४।७।१६ का पत्र ज्यो का त्यो उद्धृत करते है ।

श्री

धाधूपुर
२४।७।१६

श्रीमती,

यथायोग्य ।

आपके दो पत्र मिले । उत्तर में निवेदन है कि जैसा मै लिखता रहा हूँ उसी संकल्प पर दृढ हूँ । विचारे × × × जी ने कभी अनुचित परामर्श नही दिया और न मै घर का वकील होते हुए उनके पास मुकद्दमेबाजी की सलाह लेने गया । अभी तक इसका जिक्र भी नहीं है । यदि आवश्यकता पड़ी तो आप ही मेरी मुसिफ़ है, आप ही मेरी जज हैं । दस्त-ब-दस्ता असालतन आपके ही हुजूर मे फ़रियाद की अर्जी लेकर हाजिर हूँगा । आपसे अच्छा और कौन हाकिम मिलेगा जिसके पास जाकर अपना दुख सुनाऊँ ? न मैने आपके पत्रो को ही उन्हें दिखाया है । दिखाने योग्य ही नही । और फिर दिखाने का फल ? हाँ, मैने उन पत्रों को सुरक्षित रख छोड़ा है—आपके पाणिपल्लव का प्रथम प्रसाद है । उसकी जितनी क़दर की जाय थोड़ी । आपकी तरहँ फाड़ नहीं डाला है ।

यदि मैने मनसा-वाचा-कर्मणा कोई अन्याय आपके साथ किया हो तो उसके लिये मै बारम्बार क्षमा माँगता हूँ। आपके लिखने के अनुसार जब-जब अकेले × × × जी नही–किसी ने भी आप के आने के विषय मे पूछा सबको यही उत्तर दिया गया कि उनसे ही पूछ लो। उदाहरण के लिये कन्या-पाठशाला रावतपाडा वाले, जिनकी ओर से आपको पाठशाला-निरीक्षण के लिये निमत्रण मिला था, बार-बार पूछते है। उनसे भी यही कहना पडा है और मेरे पास उपाय ही क्या है? × × × जी अथवा जिस किसी ने आपको जो कुछ लिखा है अपनी ही जिम्मेदारी पर लिखा है। आपके न्याय वा अन्याय की परिभाषा अभी तक मेरी समझ मे नही आई। न जाने आप किसे न्याय कहती है और किसे अन्याय। यथासम्भव मैने तो अब तक कोई भी विरुद्धाचण नही किया है, क्योकि आपकी मर्जी के अनुसार, लाख-लाख विरोध होते हुए भी, आपको–रविनगर ले गया—आपको वही छोड आया। आपने लिखा—गर्मी मे नही 'आऊँगी'। अच्छा साहब, जैसी मर्जी! आपने तार दिया, पत्र लिखे कि यहाँ मत आओ। सो अभी तक आपको मुंह नही दिखलाया है! आपका आर्डर आया कि यह भी मत पूछो कि "कब आओगी"। उनके अनुसार, चाहे मै दुख में हूँ या अन्य बाधाओ से घिरा हुआ हू, वह भी नही पूछा! जिन आमोदिनीजी की आज्ञापालनार्थ रविनगर गया उन्ही को कई पत्र डाले। सबके उत्तर नदारद! व्यर्थ बातो का वे क्यों जवाब दें? खैर भाई, हमने अपराध ही ऐसा किया है। इतने पर भी आपको अकारण ही कष्ट उठाना पड़े तो इसमे मेरा क्या वश है? रही मेरी जान, सो उससे काम चले तो वह भी हाज़िर है। ऐसी दशा मे जब आप अपनी तकदीर को रोती है तो कृपया बतलाइये मै क्या करूँ? कभी-कभी पत्र लिख देता हूँ। यदि इसके लिये भी आप निषेध करे तो उसके अनुसार चलूँ। जो कुछ मुझे लिखना या पूछना था, पूर्व पत्रों मे लिख चुका हूँ। अब अधिक लिखना व्यर्थ है। मैं भी इस जीवन से तंग आगया हूँ। जो कुछ मैने सोच लिया है उसे समाप्त करते-करते यह शरीर ही नही रहेगा! और यदि मौत आगई और यह बच-

रहा तो शीघ्र ही यहा से × × × । फिर आपकी प्रार्थना अपने आप ही × × × × । इसलिये आप को अपने अमूल्य प्राणो को संकट मे डालने का प्रयोजन नही है, और न प्रत्येक पत्र मे इस मत्र के लिखने की आवश्यकता है । इस समय मेरा शरीर अच्छा नहीं है । चौदह या पन्द्रह दिन से आमख़ून के दस्त हुए ही चले जाते है और ३ दिन से दूसरी आँख भी दुखने आगई है । दर्द के मारे बेचैन हूं । ऐसी दशा मे मैने कुछ अनुचित लिखा हो उसके लिये क्षमा प्रदानार्थ पुन. प्रार्थना है । जिसमे आपका लोक-परलोक सुधरे, आत्मगौरव बढ़े एवं भविष्य समुज्ज्वल हो वही करिये । आपके विषय मे कुशल पूछने के लिये, आपको यथोचित साहाय्य देने के लिये ही यदि आवश्यकता हो, मेरा ईश्वर-दत्त अधिकार है, आप पर लट्ठ चलाने के लिये नही, और आपको अदालतो मे घसीटकर व्यथित करने के लिये नही । आप चाहे जो कुछ करें; किन्तु मुझे अपना दायित्व (फ़र्ज़) मालूम है । साक्षरा होकर मेरी प्रकृति राक्षसा नही बनेगी । हाथ गहे की लाज से अथवा दुनिया के लिहाज़ से क्या मै आपसे आशा करूँ कि आप मेरी इस व्यथित एव विपन्नावस्था मे कटु तथा तीव्र पत्र लिखने की कृपा न करेंगी और अब भी अपनी असीम इच्छा को स्पष्ट (साफ-साफ़) शब्दो मे लिखकर अनुगृहीत करेंगी ।

अन्त मे आपको परमपिता परमात्मा की क़सम खिलाकर प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे इस पत्र को सुरक्षित रक्खे और इसे पढकर इस पर यथोचित ध्यान दें । व्यर्थ ही कूड़े की टोकरी मे न डाल दे, न इसे फाड़ें और न इसे चिराग़अली के सुपुर्द करें । आशा है, आप स्वीकार करेंगी ।

ठकुरिया का कागज़ कहाँ रक्खा है ? सूचित कीजिये । सम्भव है, उससे रुपये मिल जायँ ।

सबको प्रणाम ।

आपका

सत्यनाराण

इस पत्र का जो उत्तर श्रीमती सावित्री देवी ने ३ अगस्त १९१६ को दिया था वह ज्यो का त्यो उद्धृत किया जाता है।

ओ३म

ता० ३—१९१६

पंडितजी.

तुम्हारा पत्र आया। आपने जो लिखा है कि विचारे ने न कभी अनुचित परामर्श दिया उनके दो लम्बे-चौड़े तख़्ते लिखे हुए मेरे पास आये है जिनमे मेरी बुराई अखबारों मे छापने तक की धमकी दी है। अपने घर के खाली प्रेस मे दूसरो की लड़कियो की बुराई छापने का घमंड है। जो अपनी बेटी-बहिन की इज्जत का कुछ भी ख्याल नहीं करते उनके ही दिमाग मे ऐसे तुच्छ विचार पैदा होते है। मै नही चाहती कि उनसे पत्र-व्यवहार करूँ। और उन्होने लिखा है कि मेरी स्त्री ने तुमको पतिव्रता के बारे मे उपदेश दिया था, सो तुमने घर जाकर हँसी उड़ाई। मैने तुमसे कहा था कि वे ऐसा कहती थीं अगर वो पतिव्रता होगी तो अपने लिये होगी। वे स्त्री-पुरुष जुदे रहे या मिल के रहे, मै उन्हे शिक्षा देने नही जाऊँगी। इसलिये मै नही चाहती कि वो मेरी किसी बात मे बाधा डालें। अगर वो या तुम सब इस बात मे ही पक्के हो तो तुम्हारी इच्छा। परन्तु मेरा कुछ नही बिगड़ सकता। और ये भी लिखा था कि जब उनसे कुछ जिक्र आता है तो आँखों मे आँसू भर लाते है। सच पूछो तो मै तो पतिव्रता हूँ नही, न मुझसे आगे को आशा रक्खे। और इससे अच्छा भला और क्या है कि आपको ऐसी दशा मे जरूर पतिव्रता ढूँढनी चाहिये जिससे मेरे दारुण दुःख दूर हो, और मेरी जान बचे। और आपने जो लिखा है कि दस्त-ब-दस्त असालतन के आप के ही हज़ूर मे फ़रियाद की अर्जी लेकर हाजिर हूँगा तो तुम तो स्वतंत्र हो। पर हाँ, स्वतंत्र तो मै भी हूँ; परन्तु तुमने और तुम्हारे मित्रो ने मेरी जान लेने के लिये परतंत्र अपनी बुद्धि मे समझ रक्खा है इससे ज्यादः मुझे और क्या

दु:ख होगा कि रात-दिन यही चिन्ता रहती है कि किस वक्त सब जान लेने के लिये यहाँ आजावे। लेकिन बड़े दु:ख की बात है कि हरेक पत्र मे इतना खुलासा करके लिखती हूँ और किसी की जान नही लेती। सिर्फ अपनी जान बचाने के लिये तुमको लिख दिया था लेकिन चारों तरफ आप सबो के पत्रो की बौछार हो रही हे। तुमने जो लिखा है कि इस विषय मे आज अधिक नही लिखूँगा ? थोडा तो इतना लिखा जाता है, ज्यादा और कितना होगा ? न जाने परमात्मा इन चिट्ठियो का कब अन्त करेगा। उसकी बड़ी ही दया समझो तो मुझको अपनी जिन्दगी मे पत्रों की बौछार बन्द हो। पर हाँ, ये तो मै जानती हूँ कि मेरे मरने के बाद सबके कागज कलमो को विश्राम लेना पड जायगा और आपकी त्रिवेणी जो बह निकली है सो मुझको खाकर द्विवेणी बहती रहेगी। सो वो तुम्हारे कर्म्मों का फल है। द्विवेणी को मै दूर नही कर सकती। अपनी जान खोकर त्रिवेणी का एक हिस्सा दुख दूर कर सकती हूँ। बाकी नहीं। आप मेरे पास पत्र न डाले तो मै तीव्र कटु पत्रों की बौछार क्यो करूँगी ? मै तो जो भी लिखती हूँ वो सच ही लिखती हूँ। मै कटु शब्द नही लिखती और असीम इच्छा को स्पष्ट शब्दो मे लिखकर अनुगृहीत ही करती हूँ कि आप मुझसे किसी प्रकार की आशा न रक्खे और मेरी जान मुझको बख्श दे। अगर ये बात तुम्हारी समझ मे नही आती और बार-बार हरेक खत मे यही लिखा आता है कि तुम्हारी इच्छा क्या है सो मै तो लिख चुकी। इसके विरुद्ध चलकर आप मेरी जान के गाहक बनेंगे, बस यही होगा। दुनियाँ में हजारों पुरुष है जो बड़े-बड़े उपकार करते हैं। आपने मेरी जान लेने को ही उपकार समझ रक्खा है। अच्छा है भविष्य विषयक जो धारणाएँ है, या जो आप सबो ने भविष्य में करने के लिये विचार रक्खी है, ये सब जीते जी के झगड़े है। और अच्छा है, आप सबो की इच्छा इसी मे है कि जान लेनी चाहिये। ईश्वर तुम्हारी इच्छा को पूरी करे। ठकुरिया का तमस्सुक तुम्हारी बहिन जानकी ने उससे लेकर रक्खा है, मेरे पास नही है। इस महीने मे या और महीनों मे मेरा कोई मतलब भेजने का

(पत्र भेजने का ?) नहीं है। तुम भेजो या मत भेजो। मै तो छुटकारा पाचुकी।

हस्ताक्षर सावित्री

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पंडितजी ने अपने प न लिखा था:—"इस समय मेरा शरीर अच्छा नही है। चौदह या पन्द्रह दिन से आम-खून के दस्त हुए ही चले जाते है और ३ दिन से दूसरी आँख भी दुखने आगई है। दर्द के मारे बेचैन हूँ। और पत्र के अन्त मे प्रार्थना भी की थी कि "हाथ गहे की लाज से अथवा दुनिया के लिहाज से क्या आपसे आशा करूँ कि आप मेरी इस व्यथित एवं विपन्नावस्था मे कटु तथा तीव्र पत्र लिखने की कृपा न करेगी ?" श्रीमतीजी ने उनकी प्रार्थना कहाँ तक स्वीकृत की, यह बतलाने की आवश्यकता नही। उन्ही दिनो सत्यनारायण जी ने निम्नलिखित पद्य रचा था।

परेखौ

परेखौ प्रेम किये को आवै।
कहा कहे मन मूढ बडो यह जो तुम्हरे ढिग जावै॥
होती बात हमारे बस की कबहुँ न लेते नाम।
पानी पी पी सदा कोसते तुमको हे घनश्याम॥*
जो चाहत तुमको निसिबासर प्रेम प्रमत्त अपार॥
ताके सग अनोखो ऐसो करत आप ब्योहार॥
सुनत रहे जो मुख अनेक सों अनुभव मे अब आई।
ऊँचो बड़ी दुकान तिहारी फोको बनै मिठाई॥
तन मन धन सर्वस्व निछावर करे जो तुम्हरे हेत।
ताके बँट निर्दयता ऐसी!' कैसे दयानिकेत ?

---

*यह पंक्ति 'हृदय-तरंग' मे इस प्रकार लिखी है—

करतो चाहे जगत भले ही कितनौ हू बदनाम॥

चितवत नित चकोर से तुमको लखि पावत आनन्द ।
तिनको तुम नित नये जरावत भले भये ब्रजचन्द ।।

इत्यादि

ता० २०।९।१६ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र आगरा निवासी अपने मित्र श्रीयुत बिश्वेश्वरदयाल चतुर्वेदी के पास भेजा था । चतुर्वेदीजी उस समय मध्य प्रदेश मे थे ।

श्री

आगरा
२० । ९ । १६

भगवन्,

नमोनमः

प्रथम पत्र पुनः कृपा-कार्ड प्राप्त हुआ । आप सब जानते है इसलिये क्षमा मॉगने का प्रयोजन नही है । आपको अमरावती जाना पड़ा था और यहाँ × × × जाना पड़ा था ! आपने झरनो का दर्शन किया और यहाँ झरनो को निर्झरित किया है ! कैसा विचित्र साम्य ! इस सबके सब दुःख को वर्षा देखती है; किन्तु निस्सहाय की भाँति चपल नयनो को चुरा लेती है । जानती है किन्तु अपने कामो को रोक नहीं सकती । इसलिये "बापुरी" है । जाना था उसे सहृदया किन्तु निकली जड़ की जड़ ! इसलिये "बापुरी" है । जो दूसरों के दुःख के साथ दुःखित नहीं हो सकती उसकी दशा pitiable *है । इसलिये "बापुरी" है । बिचारी आँसू बहाती हुई नाचार है इसलिये "बापुरी" है । × × × × × × × × । कभी प्यारे घनश्याम से किसी गोपी ने कुछ पूछा था । × × × उस जले-जलाये ने उसे "बापुरी" कहकर उत्तर दिया होगा— × × × । बतलाइये, यह सब कुछ क्यों हो गया ? क्या जान-बूझकर बन गये ? या ऐसी अवस्था का प्रलयोन्मुखी होना अवश्यम्भावी है ?

*pitiable का अर्थ है करुणा की पात्र—लेखक ।

यदि कभी सम्भव हुआ तो आपकी मनोबोधिनी मोहनी मयूर-मालामयी सरस घनश्यामला झरनोन्मुखी उत्तुग स्थिता कुटी मे प्रवेश करने का सकल्प—प्रयास—किया जायगा। शेष फिर कभी।

देर मे निवेदन करने के लिये क्षमा!

"चतुर्वेदी" के लिये लेख नही भेजा?

आपका—

सत्यनारायण

"जाना था उसे सहृदया किन्तु निकली जड की जड!" इन शब्दों में सत्यनारायणजी के गृह-जीवन की सारी कथा का सार आ गया है।

२५।४।१६ को सत्यनारायणजी ने आगरे मे एक कागज पर कविता लिखना प्रारम्भ किया था—

'भेड़ जो लाये ऊन को चरने लगी कपास'

उन्ही दिनों पण्डितजी के एक घनिष्ट मित्र ने प० पद्मसिहजी शर्मा को लिखा था—

श्रीमान् पं० पद्मसिहजी,

प्रणाम

छोटी लड़की "खेल-तमाशा" मे से पढ रही थी—

आरे सुग्गा आरे सुग्गा बैठ हाथ पर आ मेरे।
अच्छी चीजें छोड़ के कैसे वृक्ष पसन्द हुआ तेरे।
रोज़ तुझे हम ताज़े-ताज़े मेवे फल खिलवावेगे।
दाख-चिरौजी जामन लीची बेर का मजा चखावेगे॥

परन्तु दाख-चिरौंजी को छोड़ और तिरस्कार करके सुग्गा का जवाब है :—

हे मेरी प्यारी लड़की है प्यार बड़ा बेशक तेरा।
पर जङ्गली वृक्ष ने कैसा मोह लिया है मन मेरा॥

इसके ही कारण मै नित स्वच्छन्द विचरता-चरता हूँ।
पिजड़े का कुछ खोफ नही है उदर मौज से भरता हूँ॥

अनवारसहेली के सिद्धान्तानुसार "स्वच्छन्द विचरना" दाख-चिरौंजी से कही अच्छा प्रमाणित हुआ और यही स्वच्छन्दता हमारे पंडित सत्य-नाराणजी के हाथ से, जमाने के फेर ने, छीन ली। उसके कारण जो कष्ट समय-समय पर पंडितजी अनुभव कर रहे हैं वह छुपा नही है प० किशोरी लाल व श्रीदेवकीनन्दन खत्री इतने पर ही तो उपन्यास-गढ डाला करते थे। अजब कशमकश मे डाल रक्खा है। और जो कुछ व्यथा और चिन्ता अष्ट प्रहर लगी रहती है—वह मन विदानम व विदानम दिलेमन × × × ×।

पण्डितजी से आप कहे जितने शीशे नेत्र-जल के भरवाकर "स्नानं समर्पयामि" के लिए भेज दिये जावे। × × × पडितजी का कष्ट अधिक नही देखा जाता।"

उसी समय "झरनो को निर्झरित" करते हुए सत्यनारायणजी के "व्यथित एव विपन्न" हृदय से यह ध्वनि निकली थी —

भयो क्यो अनचाहत को सग।
सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहूँ पतंग॥
लखि तब दीपति-देह शिखा मे निरत बिरह लौ लागी।
खिचति आपसों आप उतहि यह ऐसी प्रकृति अभागी॥
यदपि सनेह भरी तव बतियाँ, तउ अचरच की बात।
योग-वियोग दोउन में इक सम नित्य जरावत गात॥
जब-जब लखत तबहि तब चरनन, वारत तन मन प्रान।
जासो अधिक कहा तुम निरदय, चाहत प्रेम प्रमान॥
सतत धुरावत ऐसो निज तन, अन्तर तनिक न भावत।
निराकार ह्वै जात यहाँ लो तउ जनको तरसावत॥
यह स्वभाव को रोग तिहारो हिय आकुल पुलकावै।
सत्य बतावहु का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै॥

जब आपने अपनी यह कविता चतुर्वेदी देवीप्रसादजी एम्० ए० को सुनाई तो चतुर्वेदीजी ने कहा—"विवाह के बाद हम तो आपके मुख से कोई शृङ्गारमय कविता सुनने की उम्मेद करते थे और आप यह बनाके लाये है—"भयो क्यो अनचाहत को सग।"

उन्ही दिनो आपने अपने मित्र जीवनशंकरजी याज्ञिक एम् ए० को लिखा था कि सूरदास का पद "कुसमय मीत काको कवन" भेज दीजिये। याज्ञिकजी ने पद भेजते हुए लिखा था "क्या मैं समझ गया हूँ कि आपको यह पद किसके लिये मँगाना पड़ा है ?"——

यहाँ पर एक बात और लिख देना आवश्यक है। वह यह कि श्रीमती सावित्री देवी आमोदिनी को जो पत्र भेजती थी उनका कुछ भाग हिन्दी लिपि मे और कुछ गुरूमुखी लिपि मे होता था। हिन्दी लिपि मे तो साधारण सी बाते होती थी और गुरुमुखा मे न जाने क्या-क्या लिखा रहता था। सत्य-नारायणजी ने गुरुमुखी के इन पत्रो का अन्वेषण किया था और उनमे निकाला था—"दुष्ट मुकुन्द का सत्यानाश।"

इस नाजुक और दु खद विषय पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्य-कता नही। सम्भवत: इस पत्र-व्यवहार के पढनेवाले कई सज्जन सत्य-नारायणजी को बेहद नर्मी व कमजोरी का अपराधी बतलावेगे और कुछ अंशो मे उनकी यह सम्मति युक्तिसगत भी होगी, पर जो लोग सत्यनारायणजो के कोमल स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे उनके हृदय में सत्यनारायणजी के प्रति सहानुभूति ही उत्पन्न होगी।

सत्यनारायणजी के प्रति जो हृदयहीनतापूर्ण व्यवहार हुआ था उसका कारण ढूँढते-ढूँढते हमारे साथ श्रीमती सावित्री देवी के नाम का सुख-संचारक-कम्पनी मथुरा का ४।३।१६ का निम्नलिखित कार्ड पड गया——

वी० पी० विभाग सुख संचारक को

पारसल नं० १९५७ ४।३।१६ मथुरा

आपकी सेवा मे आज्ञानुसार नीचे लिखे हिसाब से माल भेजा है।

कृपा करके क़ीमत देकर ले लीजिये। यदि पारसल पहुँचते समय रुपया पास न हो या कोई हिसाब में भूल हो तो पारसल को वापिस न करके डाकखाने मे अमानत (डिपाजिट) रखवाकर हमसे पूछिये। ऊपर लिखा नम्बर ओर तारीख अवश्य लिखिये।

नाम चीज	रु०	आना
१ प्रेम का परिणाम		−)
१ हास्य-मजरी		।)
१ एक रात मे ४० खून		−)
१ तड़फती मछली		।)
१ किशोरी नरेन्द्र		≡)
१ यारो की यारो		=)
१ फूलसिह डाकू		=)
		१−)
पारसल बनाने का खर्च		=)
मनिआर्डर खर्च		−)
		१।) कुल

पता:—

श्रीमती सावित्री देवी

C/o सत्यनारायणजी कविरत्न

धाँधूपुरा, ताजगञ्ज

आगरा

हमने भी इन पुस्तकों को मँगाया। पहले तीन ग्रन्थ रत्न तो मिले, पिछली चार स्टाक में थे नहीं। बड़ी उत्सुकता के साथ हमने "एक रात मे चालीस खून" पढना प्रारम्भ किया। सुन लीजिये—

। ओ३म् ।*

एक रात मे चालीस खून ।

अहह ? क्या तुम जानते हो मै किस मिट्टी की बनी हूँ ? अगर मेरा नाम गुलेनार है तो तुम देख लेना कि मै क्या करती हूँ। क्या रहमान तुम मेरे साथी बन सकते हो ? याद रखो अगर तुमने मेरा साथ दिया तो मै तुमको खुश कर दूँगी । नही मै तुम्हारी जान की भी गाहक हो जाऊँगी ।

रहमान—क्या तुम इस नाचीज सल्तनत के लिये अपने शौहर की जान लोगी ? क्या तुम्हारी इच्छा मलका बनने की है ?

गुलेनार—जरूर-जरूर, उसके बुरे बर्ताव का फल उसको चखाये बगैर नही रहूँगी ।

रहमान—मेहरबान, अपके साथ उन्होने क्या बुरा बर्ताव किया है जिसका बदला तुम जान से चुकाओगी ?

गुलेनार—मुझे इस वक्त कुछ कहने का मौका नही है । इस वक्त तो केवल तुम मरते दम तक मेरे साथ होना चाहते हो ?

रहमान—मुझे आपकी बातों मे कब उजर है । मै बसरो चश्म आपके कहने के मुताबिक आपके साथ अपनी जान देने को तैयार हूँ ।

गुलेनार (हँसकर)—मुझको तुमसे जैसी उम्मेद थी तुमने वैसा ही जवाब दिया है । क्या तुमने जो कुछ कहा, वह सच कहा ?

रहमान—क्या मैने आज तक कोई बात आपसे झूठी कही है ? जिस वक्त जो हुक्म आप फरमावेगी बदा उसी वक्त उसकी तामील करेगा ।

गुलेनार ने रहमान को इस तरह अपनी ओर कर एक रात को मौका पाकर अपने शौहर के खाने मे जहर मिला दिया ।

---

*'ओ३म्' बिचारा भी कहाँ आकर फँसा है !—लेखक ।

खाना खाने के बाद जब खुरशैदअली—गुलेनार का शौहर—बाहर-वाले महल मे जाने लगा, तब ही लड़ाखड़ाकर जमीन पर गिर पड़ा और थोड़ी देर बाद मुँह से झाग देने लगा... इत्यादि

* * *

पुस्तक हमने जहाँ की तहाँ रखदी और सोचने लगे—ऐसी पुस्तको से क्या लाभ ? इनसे क्या शिक्षा मिल सकती है ? इनका पाठको और पाठिकाओ पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? अस्तु, विषयान्तर हुआ जाता है । इन पहेलियो को सुलझाना तो साहित्य-समालोचको का कर्त्तव्य है। हम तो यहाँ जीवन-चरित्र लिख रहे है । हमे इनसे क्या प्रयोजन ? इस अप्रिय विषय को यही छोड़िये और मेरे साथ "कोरे सत्य-ग्राम के बासी" के अन्तिम दिवस और मृत्यु का हृदय-वेधक वृत्तान्त पढिये ।

अन्तिम दिवस और मृत्यु

ब्राह्मण-स्कूल मे शिक्षा का काम

जिस समय विवाह के लिये पत्र-व्यवहार हो रहा था उस समय सत्य-नारायणजी ने श्रीयुत मुकुन्दरामजी को एक पत्र मे विवाह के प्रस्ताव का विरोध करते हुए लिखा था—"स्वतंत्र जीवन ही मेरा जीवन है। नौकरी-चाकरी कभी की नही।" विवाह के बाद सत्यनारायणजी को नौकरी-करनी पड़ी; क्योकि मन्दिर से जो जमीन लगी हुई थी उससे कुल ३००) रु० साल की आमदनी होती थी। जब अपनी मृत्यु के पहले मुकुन्दरामजी फीरोजाबाद आये थे तो उन्होने मुझसे कहा—"मेरी पुत्री ने पडितजी से कहा था कि जो चीज ठाकुरजी की है उसे मै नही खाने की। इसलिये उन्हे नौकरी करनी पड़ी।"

ता० ८ जुलाई सन् १९२६ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित प्रार्थना पत्र ब्राह्मण स्कूल के सेक्रटरी के पास भेजा था—

To,

The Secretary,

Brahman School

AGRA.

Sir,

Hearing that services of an under graduate are required in your School. I offer myself for the same.

As for my qualifications I need not say much. my work will show itself.

Hoping my request to be considered favourably.

Yours obediently,

Dated 8—7—1916 *Satyanarayan*,

(Dhandhupur,)

इस प्रार्थना पत्र पर ब्राह्मण स्कूल के सेक्रेटरी श्रीयुत गीताराम दीक्षित ने यह आर्डर दिया था—

Appointed as an Assistant Master on Rs. 25—P. m. From lst August 1916 on probation of six months where after to be confirmed on the promise of serving school at least for two years."

इसके साथ ही साथ सत्यनारायणजी को निम्नलिखित पत्र भेजा गया था —

श्रीमान् सत्यनारायणजी को ज्ञात हो कि ता० २३ जुलाई सन् १९१६ ई० के प्रस्तावानुसार आप ६ माह की जाँच पर २५) मासिक वेतन पर ब्राह्मण स्कूल आगरे मे असिस्टेण्ट मास्टर नियत हुए है। कृपया कम से कम दो साल की स्कूल सेवा की स्वीकारी भेजिएगा, जिससे कि ६ माह बाद आपकी मुस्तकिली का प्रस्ताव पेश किया जावे।

गीताराम दीक्षित

मत्री

सत्यनारायणजी ने इसके उत्तर में लिखा था—

"कृपा-पत्र मिला। ब्राह्मण-स्कूल की सेवा करने में मुझे कोई आपत्ति नही है। सेवा की अवधि दो साल की हो अथवा अधिक; किन्तु मेरे जीवन के निर्दिष्ट मार्गानुसरण मे यथासम्भव कोई विघ्न-बाधा उपस्थित न होनी चाहिये। आपकी सेवा में बस यही मेरा नम्र निवेदन है।"

आपका—

सत्यनारायण

इस प्रकार बी० ए० तक पढ़े हुए सत्यनारायणजी जैसे विद्वान् को २५) रु० मासिक की नौकरी ! सौ भी बतौर जाँच के दी गई ! इस पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नही। बात असल मे यह है कि सत्य-नारायणजी इस क्रय-विक्रय मय संसार के सर्वथा अनुपयुक्त थे।

'मालती-माधव' की समाप्ति

दिसम्बर १९१७ के प्रारम्भ से ही सत्यनारायणजी "मालती-माधव" के अनुवाद-कार्य्य को पूर्ण करने मे लगे हुए थे। इन्दौर-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-विभाग से भेजे गये एक पत्र के उत्तर मे उन्होने २ फर्वरी सन् १९१८ को लिखा था—

"आजकल मै "मालती-माधव" नाटक का हिन्दी-अनुवाद करने मे व्यस्त हूँ, जो इसी अवसर पर निकल जाना चाहिये, क्योकि पजाब-विश्वविद्यालय मे उसके नियुक्त हो जाने से अब अधिक विलम्ब करना दुस्साहस होगा। इसलिये शका है कि उक्त कारणवश निर्दिष्ट निबन्ध को तैयार कर यथासमय उपस्थित करने का कदाचित ही मुझे अवकाश मिले। आशा है, मेरी वर्तमान स्थिति पर ध्यान देते हुए आप मुझे क्षमा करेगे।

हाँ, मुझसे भी कही अधिक अच्छे झालरापाटन के पूज्य मित्र पं० गिरिधर शर्मा है। वह उक्त विषय पर अत्यन्त सुन्दर व रोचक लेख लिख सकते है। इस कारण उनके साहित्य के उन्नत परिज्ञान से लाभ उठाने के लिये आप की सेवा मे सादर सानुरोध प्रार्थना है"।

७ फरवरी को सत्यनारायणजी ने अपने मित्र डाक्टर लक्ष्मीदत्त (फीरोजाबाद) को लिखा था :—

"श्रीमती आजकल हरिद्वार है। जब उनका पत्र आया है तब उसमें उन्होने अपनी तबियत ठीक ही बताई है। हाँ, यहाँ आने पर यदि उन्हें जैसी आशा है, रोग ने ग्रसा तो आपको अवश्य कष्ट दूँगा। आजकल "मालती-माधव" नाटक पर पिलाई है और आप के चरणो की कृपा से

लगभग समाप्त प्रायः हो चुका है। आशा है कि एक सप्ताह में अनुवाद कार्य्य हो चुकेगा। आपका उत्तर रामचरित और मालती माधव दोनो Punjab University की क्रम से High Proficiency and Honors Examinations मे prescribed हो गये है। इस हेतु आपको तथा श्रीमान्भवन को बधाई"।

इसी दिन सत्यनारायणजी ने पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा को लिखा था—गत दिसम्बर के प्रारम्भ से ही मै आपके "मालती-माधव" मे लग रहा था। साधारणतया जैसे-तैसे उसे आज समाप्त कर पाया है। यथासम्भव भाषा का सुधार भी किया गया है। एक प्रकार से उसे गढ दिया है। अब जड़ने का अथवा विविध प्रस्तावो द्वारा उसमें अभिनवत्व लाने का कार्य आप के लिये अलग रख दिया है। एक बार उसे और देख लूँ फिर आपकी सेवा मे भेजने का यत्न किया जाय। आशीर्वाद दीजिये जिससे इस दुस्तर कार्य्य से शीघ्र निस्तार मिले"।

इसके उत्तर मे पं० पद्मसिंह शर्मा ने लिखा था—"मालती-माधव" की आप पुनरालोचना कर गये। बहुत अच्छा हुआ। मैं उसे फिर आद्योपान्त एक बार आपसे सुनना चाहता हूँ। कोई ऐसा मौका मिले कि श्री प० शालग्रामजी, बन्दा और हजूर सब एक जगह ४-५ दिन के लिये इकट्ठे हो सकें तो ठीक काम बने। क्या आप इन्दौर सम्मेलन मे जायँगे ?

श्रीमती सावित्री देवीजी के नाम पत्र

ता० ११। २। १८ को रात के बारह बजे सत्यनारायणजी ने श्रीमती सावित्री देवी के नाम जो पत्र लिखा था, वह देवीजी के पास सुरक्षित था। उन्होने मुझे वह पत्र दिखलाने की कृपा की थी। उसमें लिखा था—

११—२—१८

अन्धेर कैसा कर रही है बेवफ़ाई आपकी।
चार दिन की चाँदनी थ। × × आपकी॥

खयाले खा़म है अपनों से फायदा पाना ।
सदफ के काम किसी दिन गौहर नहीं आता ।।
अज़ल खफा है और फलक़ मुद्दई जिमी दुश्मन ।
कोई ज़माने मे अपना नजर नही आता ।।
करूँ मै दुश्मनी किससे, कोई दुश्मन भी हो अपना ।
मुहब्बत ने जगह छोड़ी नही दिल मे अदावत की ।।

आपका दर्शनाभिलाषी—
सत्यनारायण

मेरे नाम पत्र

ता० १२ फर्वरी १९१८ को सत्यनारायणजी ने मेरे नाम निम्नलिखित पत्र भेजा था—

१२ । २ । १८
ब्राह्मणस्कूल

श्रीयुक्त भाई बनारसीदासजी,

पालागन

आज ११ दिन पीछे आपका कृपा-पत्र श्री पाठकजी से मिला है । हाँ, पूर्णानन्दसिंहजी (सम्पूर्णानन्दजी ?) का एक पत्र आया था । उसका मैने उसी समय उत्तर दिया था । आपका क्या, समग्र चतुर्वेदी जाति का, यह शरीर चिरऋणी है । जिस पैतृक प्रेम से आप लोग मेरे साथ बर्ताब कर रहे हैं उससे उऋण होना इस जन्म मे तो कठिन है । उऋण होने से यदि सम्बन्ध टूटने की बात हो तो मुझे वह उऋण सोने का भी नही चाहिये ।

आपके पत्र के ज्ञात—विश्वास—हुआ कि 'हृदय-तरंग' इस संसार मे उठ सकेगा; क्योकि × × ×* । इसमें अतिशयोक्ति नही

* यहाँ पर सत्यनारायणजी ने लेखकके विषय मे कुछ ऐसी अत्युक्तिमय प्रशंसात्मक बाते लिखी थी जिनका उद्धृत करना अनुचित प्रतीत होता है ।
—लेखक

है। यह इस ग्रामीण हृदय का सच्चा नैसर्गिक उद्गार है। इसी से ऊपर कहा है कि जो आपके द्वारा संगृहीत हुआ है, जिसे आपका अवलम्ब मिला है वह अविलम्ब ही अवश्य-अवश्य प्रकाशित हो। यद्यपि आपको नही चाहिये, (वह) आपकी कीर्ति-कौमुदी से, दिशाओ को मुग्ध करेगा, इसमे एक अक्षर भी मिथ्या नही।

अस्तु, जब चाहे आप तब उसे भेज सकते हैं। सेवा करने के लिये हर समय तैयार हूँ। "मालती-माधव" एक प्रकार से समाप्तप्राय हो चुका है। किसी सहृदय द्वारा उसकी पुनरावृत्ति होना परमावश्यकीय है। देखें, किसे ईश्वर भेजे। पीछे छपने का प्रबन्ध हो सकेगा।

श्रीमान् गान्धीजी की प्रशंसा मे या आपकी ओर से स्वागत विषय मे तुकबन्दी करनी पडेगी, यह कृपया एक कार्ड द्वारा और सूचित कर दीजिये।

यदि इसका शरीर निरोग—चलने फिरने लायक भी—रहा तो यथा सम्भव अवश्य आप लोगो की सेवा मे पत्र-पुष्प लेकर उपस्थित होने की प्रबल इच्छा है। भगवान विपिनविहारी से प्रार्थना है कि वह उक्त इच्छा को पूर्ण करे। सब प्रेमियो को प्रणाम !

आपका—

सत्यनारायण

आज मैं प्रयागराज जा रहा हू। यदि आप उचित समझे तो अधिकारी जगन्नाथदास विशारद विरक्त मन्दिर, भरतपुर से अथवा चित्रमय जगत के भूतपूर्व सम्पादक से लिखा-पढी करे। मुझे तो वह ठीक-ठीक उत्तर ही नहीं देते। स० ना०

श्रीसावित्री देवी तथा उनकी माता नारायणी देवी के नाम पत्र

ता० ८ मार्च को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र श्रीमती सावित्री देवीजी के नाम भेजा था—

श्रीमती,

यथायोग्य

आपने लिखा था कि अपनी कुशलता लिखना। यकायक दो दिन से तबियत खराब हो गई है—दस्त होने लगे है— ऐसी ही दशा रही तो खाट पर लेटना पडेगा। जानकी का सिर चक्कर खाने लगा है। बिचारी गिर पडी। उसके कई जगह लग गई है। जो एक बार भी खाना मिलता था वह भी नसीब होने की कम सम्भावना है। पुस्तक प्रेस मे है, इसलिये शहर आना पडता है। द्वारिका घर गया है। मेरी ही सब तरह आफत है—घर-बाहर जहाँ देखो वहाँ घबडाया-सा फिरता हूँ। इसलिये यदि आप अपना और मेरा हित चाहती हों तो तुरन्त पत्र लिखते ही उत्तर स्वरूप स्वयं किसी विश्वस्तपुरुष के साथ नानाजी हो वा कुन्दन हो, यहाँ चली आइये। आपको यह सब यों लिख दिया है कि आप कहती कि मुझे सूचना न दी। इससे अधिक विपत्ति मुझ पर कभी न आवेगी। आपके घबड़ाने के डर से तार नही दिया है। इसी कार्ड को तार समझना।

आपका—

सत्यनारायण

श्रीमती नारायणीदेवीजी के नाम निम्नलिखित पत्र उन्होने लिखा था—

श्रीमती परमपूजनीय माताजी,

प्रणाम

यकायक तबियत खराब हो गई है। कल से कई बार शौच भी गया हूँ। यदि ऐसा ही हाल रहा तो जल्दो खाट मे गिरने का अन्देशा है। बहिन जानकी का दिमाग घूमने लगा है। बिचारी गिर पडी। इधर पुस्तक प्रेस मे है। द्वारिका अपने घर गया है। जानकी के बीमार होने से एक दफा भी गति से भोजन नही मिलता। बीमारी की वजह से बाजार का खाने से परहेज करना पड़ता है। इस प्रकार बेबश होकर आपकी सेवा

में सविनय निवेदन है कि आप कृपाकर मेरी वर्तमान स्थिति पर विचार करती हुई सावित्रीदेवी को किसी विश्वस्त पुरुष के साथ यहाँ भेज दे। उसके दोनों तरफ का किराया यहाँ दे दिया जायगा। यदि आप मेरा हित चाहती है तो कृपया इस पत्र के उत्तर-स्वरूप मे उन्हे यथासम्भव शीघ्र भेज दे।

आपका—

सत्यनारायण

देवहुती रमेश को प्यार और सब को नमस्कार।

आशा है; अब आश्रम मे आप कार्य करने लगी होगी।

१९।३।१८ को सत्यनारायणजी ने मुझे अपने पत्र में लिखा था—"यहाँ पर प्लेग का बड़ा जोर है। अवसर पर जैसा बन पड़ेगा वैसा सेवा मे उपस्थित होने के विषय मे देखा जायगा। "मालती-माधव" आधा छप रहा था कि प्लेग के कारण विचारा प्रेस ही बन्द होगया। जब छप जायगा, सेवा मे भेजूंगा। जब आप छुट्टी पर यहाँ आयेगे तब 'हृदय-तरंग' तैयार हो जायगी। सम्भव है कि आप की सेवा मे कुछ तुकबन्दी दो-चार दिन मे भेज सकूँ। पोस्ट से अथवा प० रामरत्नजी के हाथ।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन इन्दौर

२० मार्च को श्रीयुत पं० केदारनाथजी भट्ट का लखनऊ से भेजा हुआ पत्र सत्यनारायणजी को मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था—

"सम्मेलन-सेवी इन्दौर जाने के बारे मे पूँछते थे। मैं तो शायद ही जा सकूँ। परन्तु मेरी सम्मति में तुम अवश्य जाना। महात्मा गाधी सभापति है, यही आकर्षण काफी है। वहाँ अपना गान्धीस्तव वा एक और सामयिक कविता पढना बड़ा अच्छा होगा।

२७।३।१८ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र श्रीयुत सूर्य्य-नारायणजी अग्रवाल (इटावा) को भेजा था—

२७ । ३ । १८
आगरा

श्रीमन्,

प्रणाम

पिछला पत्र आपका यथासमय आया, किन्तु उस समय प्लेग के कारण स्कूल बन्द था। आज सेक्रेटरी के यहाँ से मिला। उसे देखकर लाज मे डूब गया हूँ। तत्प्रायश्चित-रूप मै इन्दौर जा रहा हूँ। आपकी उदारता मे विश्वास है कि आप क्षमा करेगे। उन दिनो "मालती माधव" छप रहा था। कहाँ ? बेलनगज मे, जहाँ प्लेग फूट रहा था। ११ फर्मे अथवा ६ अक छापकर प्रेस बन्द हो गया। उसी झगडे मे आपकी सेवा मे न आ सका। क्षमा करिये और दया बनाये र हये।

आपका—सत्यनारायण

बात यह थी कि सूर्य्यनारायणजी ने पडितजी को अपने पत्र मे लिखा था कि, 'इटावा नागरी प्रचारिणी सभा के उत्सव के समय आपको तीन साल से निमन्त्रण दे रहा हूँ। आपने प्रत्येक बार स्वीकार भी कर लिया लेकिन आने की कृपा एक बार भी नही की। अबकी उत्सव २३—२४ मार्च को होनेवाला है। आपने मेरे दो पत्रो का उत्तर भी नही दिया। मुझे बड़ा दु.ख है कि आप मुझसे नाराज हो गये है, इत्यादि'।

इन्दौर-आगमन

अष्टम हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के साहित्य और प्रदर्शनी-विभाग का काम मेरे सुपुर्द था। एडवर्ड हाल मे बैठा हुआ मै प्रदर्शनी की तैयारी मे लगा था कि इतने मे सत्यनारायणजी वहाँ आ पहुँचे। बड़े प्रेम के साथ उन्होने मुझे गले लगा लिया। श्रीयुत गिरिधर शर्मा नवरत्न के आज्ञानुसार मैने सत्यनारायणजी को एक तार भी इन्दौर आने के लिये दिया था और

हम सब उनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। उनके आने से हम सबको अत्यन्त हर्ष हुआ।

सम्मेलन में कविता-पाठ

महात्मा गान्धीजी के सभापति होने के कारण लगभग १०-१२ हजार नरनारी सम्मेलन मे सम्मिलित हुए थे। स्वयंसेवको का प्रबन्ध ठीक नही था। अंग्रेजी विद्यालयो के कितने ही विद्यार्थी स्वयंसेवको मे यो ही भर्ती कर लिये गये थे और उन्हे किसी प्रकार की शिक्षा नही दी गई थी। अपनी मिर्जई पहनकर सत्यनारायणजी मडप मे पहुँचे। वहाँ उनके ग्रामीण वेष को देखकर सम्मेलन के धृष्ट और असभ्य स्वयसेवको ने उन्हे बहुत तंग किया। जिस दरवाजे पर जाते, स्वयंसेवको से दुरदुराये जाते। जहाँ स्वयंसेवको के कुप्रबन्ध से रायबहादुर सेठ जमनालालजी बजाज को भी मंडप मे प्रवेश करते हुए अपमानित होना पड़ा वहाँ गँवारू मिर्जई और दुपल्लू टोपीवाले सत्यनारायणजी को कौन पूछता था! "दद्दू हमैऊ घुसि जान देउ, हमऊ देखिगे।" वह प्रत्येक दरवाजे पर जाकर कहते थे। इस तरह की भाषा सुनकर और सत्यनारायण का वेष देखकर अग्रेजीदाँ स्वयसेवक उन्हें फटकार देते थे। बड़ी मुश्किल से वे मडप मे घुस पाये।

दूसरे रोज मै अपने साथ उन्हे मडप मे ले गया था। वहाँ पहुँचकर बोले—"भूख लगी है, कछु खवाओ"। हम लोग निकट के उस स्थान पर गये जहाँ प्रतिनिधियों के भोजन का प्रबन्ध था। प्रयत्न करने पर भी कहीं भोजन नही मिल सका! लोग स्वयं मजे से भोजन कर रहे थे। बहुत कुछ निवेदन करने पर भी उनका हृदय द्रवित नही हुआ! इतने में मेरे साहित्य-विभाग का एक स्वयसेवक बाइसिकिल पर आता दीख पड़ा। उससे बाजार से कुछ फल मँगवाये। सत्यनारायणजी बेतरह भूखे थे। तेल के सेव वहा बिक रहे थे, तब तक वही लेकर हम लोगों ने खाये। तत्पश्चात् मैने सत्यनारायणजी के साथ जाकर, श्रीमान् बापना साहब की आज्ञा से उन्हे उस मञ्च पर बिठला दिया जो ख़ास-ख़ास आदमियों के बैठने के

लिये बनवाया गया था । किसी प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य्य के लिये मै इधर-उधर घूम रहा था । थोडी देर मे आकर देखता क्या हूँ कि सत्यनारायणजी अपने स्थान पर खडे हुए है ! जो कुछ हुआ था उसका वृत्तान्त श्रीमान् ठाकुरलाल सिहजी कर्मचारी रेवेन्यू-विभाग, रियासत इन्दौर के शब्दो मे सुन लीजिये ।

"मैने देखा कि कि एक सज्जन वृन्दाबनी मिरजई पहने दो पैसे की दुपल्ली सफेद टोपी, लगाये, सफेद पिछौरा बगल मे दबाये, हाथ मे कागजो का पुलिन्दा लिये 'नंगे पॉव कुर्सी पर बैठे है ।" मै धीरे से उनके पास पहुँचा और नीचे लिखे अनुसार बातचीत हुई ।

मै—क्या महाशयजी, आपके पास इस स्थान पर बैठने के लिये टिकट है ?

ग्रामीण पुरुष—(कुछ मुसकराते हुए, परन्तु करुणाजनक भाव से) नही महाराज, मेरे पास टिकट तो नही है ।

मै—फिर आप यहॉ कैसे बैठे है ?

ग्रामीण पुरुष—(उसी भाव से) महाराज, मुझे सम्मेलन के एक उच्च कर्मचारी ने यहॉ बैठने की आज्ञा दी है ।

मै—क्या आप कृपा करके उन उच्च कर्मचारी का नाम बता देगे ?

ग्रामीणपुरुष—महाराज, मुझे बापना साहब ने यहॉं बेठने की आज्ञा दी है ।

यह सुनकर मै वहॉं से चल दिया और रायबहादुर डाक्टर सरजू-प्रसादजी मन्त्री-सम्मेलन के पास जाकर उनको सब हाल सुनाया । डाक्टर साहब ने हँसकर कहा—ठाकुर साहब, क्या आप सत्यनारायणजी को नही जानते है ? यह सुनकर मेरे ऊपर वज्र-सा टूट पडा ! × × × सभा-विसर्जन होने पर बडी मुश्किल से पंडितजी का पता लगाया । बहुत-से मनुष्य उनको घेरे खडे थे । मैने हाथ जोड़कर कहा—"पडितजी, अनजाने

का अपराध क्षमा कीजिये। "चहिय विप्र-उर क्षमा घनेरी"। यह सुनकर पंडितजी मुसकराते हुए हाथ जोड़कर कहने लगे—"ठाकुर साहब, आप क्षत्रिय है! ब्राह्मण तो सदा क्षत्रियो के आश्रित रहे है। क्षमा-फ़मा काहे की ?"

कुछ प्रस्तावों के पास ही जाने के बाद महात्मा गाँन्धीजी ने प्रोग्राम मे पढकर कहा—"अब सत्यनारायण कविरत्न अपनी कविता सुनावेगे"। सत्यनारायणजी अपनी मिरजई सँभालते हुए तथा कागज़ के दो टुकड़े हाथ मे लिये उठे और मेज़ के निकट खडे हो गये। मञ्च पर बैठे राय साहबो और रायबहादुरो को कुछ हँसी-सी आई।

सत्यनारायणजी ने रसखान के ये दो कवित्त पढ़े—

वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारो।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नद की गाय चराय बिसारो।
रसखान कबौ इन नैननु ते ब्रज के बन-बाग-तड़ाग निहारों।
कोटिन हू कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारों।

* * *

मानुस हों तो वही रसखान बसौ मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो चरो नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हो तो वही गिरि को जो कियो ब्रजछत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौ वहि कालिन्दी कूल, कदम्ब की डारन।

इन कवित्तो को सत्यनारायणजी ने ऐसे मधुर स्वर से पढा कि सारे पडाल मे सन्नाटा छा गया। श्रोतागण दग रह गये। फिर उन्होंने अपनी 'प्रतिनिधि-प्रेम-पुष्पाञ्जलि" पढी।

दरशन शुभ पाये।
धन्य भाग इन नयननु के जो लखि तुमकों सरसाये॥
जैसी कानन सुनी सुखद सुचि सुन्दर कीर्ति तुम्हारी।
सो सब आज आपु हम देखी परम पुनीत पियारी॥

श्रीघनश्याम-प्रेम के पपिया रसनिधि मीन प्रबीन।
दया-द्रवित तव हृदय मनोहर निरमल नित्य नवीन ॥
सरल सुभाव अभेद अनूपम मति अनन्य तब भ्राजै।
मनहुँ प्रतीति प्रीति प्रतिभा प्रिय पुण्य प्रबाह बिराजै ॥
प्रेम-पुनीत मार्ग के गामी सब जग के उजियारे।
प्रभुपद-पद्म-पराग राम के अलबेले अलि प्यारे ॥
हिन्दू-नयन-चकोर चन्द्र तुम नवजीवन विस्तारक।
सहृदय-हृदय-कुमोद खिलावन मोद-भरन उपकारक ॥
चरन-कमल तव दरसि परसि-हम हरे-भरे भये आज।
फूलत ज्यों द्रुमलता सुमनयुत लहि ऋतुराज स्वराज ॥
यह जातीय बेलि जो हिन्दी जन हिय बन लहरावै।
पुलकि सींचिये ऐसी बस जो अब नहिं सूखन पावै ॥
मोहन प्यारे तुमसों निसदिन बिनय विनीत हमारी।
हिन्दू हिन्दी हिन्द देश के बनहु सत्य हितकारी ॥

जिस समय सत्यनारायण यह कविता पढ़ रहे थे, सम्पूर्ण मंडप करतल-ध्वनि से गूँज रहा था। इसके बाद उन्होंने बड़ी श्रद्धा-भक्ति से गाँधीजी की ओर मुख करके और श्रद्धा-भक्ति पूर्वक सिर नवाकर कहा—"अब कुछ महाराज की सेवा में एक तुकबंदी निवेदन करूँगा" फिर उन्होंने "श्री गान्धी-स्तव" पढ़ा। जिस समय उन्होंने यह पद्य पढ़ा—

तुमसे बस तुमहीं लसत, और कहा कहि चित भरैं।
'सिवराज' 'प्रताप' ऽरु 'मेजिनी' किंन-किन सों तुलना करैं ॥

जिस समय उन्हींने यह पद्य पढ़ा था उस समय उपस्थित जनता प्रेम-विह्वल हो गयी थी। स्तव का अन्तिम पद यह था—

अपुहि सारथी बने कमलदल आयत लोचन,
अरजुन सों बतरात बिहँसि त्रयताप बिमोचन।
धीरज सब बिधि देत यही पुनि-पुनि समझावत,
'दैन्य' पलायन' एकहु ना मोंहि रन में भावत।

इक निमित्त-मात्र है तू अहो, फिर क्यो चित-बिस्मय धरैं,
गोपाल कृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करैं ॥

इस कविता के प्रभाव को पं० वेङ्कटेशनारायण तिवारी ने "लीडर" "न्यू इंडिया" इत्यादि को भेजे हुए अपने तार मे इन शब्दों द्वारा प्रकट किया था—

Pandit Kaviratna Satyanarayan of Agra read very beautiful Hindi poems composed by him, which kept the whole audience spellbound in admiration.

अर्थात् "आगरा निवासी कविरत्न प० सत्यनारायण ने अपनी रची हुई बडी मनोहर कविताएँ पढी, जिनसे प्रभावित होकर सम्पूर्ण श्रोतागण मत्र-मुग्ध-से हो गये।"

सम्मेलन की बैठक समाप्त होते ही सत्यनारायणजी की कविता की बड़ी माँग हुई। किसी ने कहा—'पडितजी, एक प्रति हमे दे दीजिये। किसी ने कहा—"हमारे पत्र के लिए एक कापी हमें प्रदान कीजिये।" एक महाशय अपना विजिटिङ्ग-कार्ड देकर कहने लगे—"पडितजी, इसकी एक कापी मेहरबानी करके मेरे नाम बड़ौदा भेज दीजिये। अनेक विद्यार्थी तो इस कविता के लिये मुझे तंग करते रहे। सत्यनारायणजी के पास केवल एक प्रति थी। कई प्रतियाँ तो सत्यनारायणजी ने और मैने समाचार-पत्रों के लिये नक़ल कीं, लेकिन वे प्राप्य नही थी। इसलिये इन्होंने मुझे आज्ञा दी कि और प्रतियाँ तुम भेज देना।

स्वयंसेवको द्वारा अपमानित उस "गरीब बामन" के मधुर स्वर और कलित कविता-पाठ को इन्दौरवाले बहुत दिन तक नही भूले।

इस सम्मेलन के अवसर पर चतुर्वेदी जगन्नाथ प्रसादजी ने "सिहावलोकन" शीर्षक अपना निबध पढ़ा था। उसे सुनकर सत्यनारायणजी चतुर्वेदीजी से बोले—"बस, ब्रजभाषा से तो बरस-भर के लिये निश्चिन्त हो गया।"

सत्यनारायणजी से इन्दौर मे हम लोगो का खूब मनोरंजन हुआ। मैंने कहा—मेरी पुस्तक "प्रवासी भारतवासी" का नाम आपकी एक कविता मे आया है। अच्छा बताइये तो सही, कहाँ आया है ?" सत्यनारायणजी ने कहा—"यह तो हमै नाँइ मालुम"। मैने फौरन ही "श्रीगोखले" नामक कविता की ये पक्तियाँ पढी—

कुली प्रथा उच्छिन्न करन जिन शक्ति प्रकासी।
जिनके अमित कृतज्ञ "प्रवासी भारतवासी॥"

पंडितजी बहुत हँसे और बोले—"जि तुमने खूब याद रक्खी।" फिर मैने उनसे कहा—"कभी-कभी ऐसा होता है कि कवि अपनी कविता के जिस भाव को नहीं समझता है उसे पाठक समझ जाते है।" सत्यनारायण-जी ने कहा—"हाँ, ऐसा होता है।"

मै—"आपकी कविता से उदाहरण दे सकता हूँ।"

सत्यनारायण—"अच्छा बताओ।"

मैने कहा—"ऐसी तूमा-पलटी के गुन नेति-नेति श्रुति गावैं।"

यह पक्ति आपने 'माधव आप सदा के कोरे' नामक कविता मे लिखी है। इसमे 'तूमा-पलटी' का दूसरा अर्थ यह भा हो सकता है कि श्रीकृष्ण भगवान देवकी माता के यहाँ से जसोदामैया के यहाँ गये थे इसलिये 'तू मा पलटी' में उनपर व्यग्य किया गया है।

सत्यनारामणजी बडे प्रसन्न हुए और बोले—"वा! जि तुमने अच्छौ अर्थ लगायौ!"

इन्दौर मे सत्यनारायणजी मिस्टर सी० ए० डाब्सन से भी मिले थे। डाब्सन साहब पहले आगरे में हेडमास्टर थे, जब वे आगरा छोड़कर इन्दौर आये थे तो सत्यनारायणजी ने उनके लिये 'अभिनन्दन-पत्र' लिखा था। इन्दौर मे सत्यनारायणजी को डाब्सन साहब के पास मै ही ले गया था। डाब्सन साहब उनसे हिन्दी मे बातचीत करने लगे। मै इस बात को

नही जानता था कि वे सत्यनारायणजी से परिचित है। इसलिये मैने मि० डाब्सन से कहा--"सत्यनारायणजी तो अग्रेजी खूब पढ़े हुए है--आप उनसे अग्रेजी मे क्यो नही बोलते ?" मिस्टर डाब्सन बोले--"सत्यनारायण को मै खूब जानता हूँ। आगरे से चलते वक्त इन्होने मुझसे कहा था कि "हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान" को मत भूल जाना। इसलिये मैं इनसे हिन्दी मे बोलता हूँ।" यह सुनकर मुझे लज्जित होना पड़ा। डाब्सन साहब को जो 'अभिनन्दन-पत्र' दिया गया था उसमे सत्यनारायणजी ने ये शब्द लिखे थे--

"नित ध्यान रहै तव हृदय मे ईश-चरण अरविन्द को,
प्रिय सजन, मित्र, निज छात्रजन, हिन्दी-हिन्दू हिन्द को"।

जब सत्यनारायणजी हमारी प्रदर्शिनी देखने आये तो मैने उनसे कहा--आप अपनी कोई कविता सुनाइये। उस समय उन्होने बड़े मधुर स्वर से यह पद सुनाया था --

सुधि रहि-रहि आवत तव सँग की रँगरलियाँ,
नय नयनाभिराम श्यामल वपु-शैल गग-तट गलियाँ !
रस-बतरानि बिचारत बिकसत रोम-रोम की कलियाँ,
सत गरीब कौ फेरि देउ मन भली न ये छलबलियाँ।

ओङ्कारेश्वर-यात्रा

साहित्य-सम्मेलन सम्पन्न होने पर सत्यनारायणजी ओङ्कारेश्वर के दर्शन के लिये गये थे। साथ मे पं० तोतारामजी, अध्यापक रामरत्नजी, प० भगीरथप्रसाद दीक्षित, श्री रामप्रसादजी आदि थे। इस यात्रा का विवरण श्री तोतारामजी की जबानी सुन लीजिये।

"गोल टोपी लगाये, बृन्दावनी मिर्जई पहने, गले में अगौछा डाले और बगल मे गजी की चादर और लोटा दबाये सत्यनारायणजी हमलोगो के साथ स्टेशन पर पहुँचे। टिकट लाने का काम पंडितजी को सौपा गया। भीड़ बहुत थी। पंडितजी ने बहुत कोशिश की, लेकिन टिकट नहीं मिल

सका। दो-चार धक्के जरूर मिले। लौटकर पडितजी बोले—"क्यों भैया, जि मोते कौनसी अदावटि कौ बदलौ काढ्यो जो मोइ टिकट लैबे भेजि दयौ म्हाँ तो चिंटी केऊ घसिवे कू ठौर नांय। खिरकिया पै पेलमपेला है रही हैं, टिकट कैसैं लाऊतो ?" हम लोग खूब हँसने लगे। फिर दूसरा साथी जाकर टिकट ले आया। रेल आगई और झटपट सब साथी एकही डिब्बे मे घुसकर बैठ गए। मै उनके पासही बैठा था। पंडितजी ने मुझे अपना "भ्रमर-दूत" सुनाया। फिर मुझ से कहा—"तुमऊ कछु सुनाऔ।" मैंने कहा—"क्या सुनाऊँ ?" सत्यनारायणजी ने कहा—"अच्छा तो अपने ब्याह की कथा सुनाऔ कि फिजी मे तुम्हारौ ब्याह कैसे भयो। फिर मैऊ अहने ब्याह की कथा तुम्है सुनाऊँगो।" इसी प्रकार बातचीत होती रही।

हम लोग मोरटक्का स्टेशन पर उतरे और वहाँ से ओङ्कारेश्वर के लिये बैलगाड़ी किराये करने की तदबीर होने लगी। बैलगाडी वाला २) रुपया प्रति सवारी माँगने लगा। पंडितजीने कहा—चलौ सत्याग्रह करौ—पैदल चलौ। फिर गाड़ीवाला आठ आने सवारी पर आगया, लेकिन हम लोगो ने तो सत्याग्रह कर दिया था! पैदल चल पड़े। एक गठरी सत्यनारायणजी ने अपने सिर पर रखली और एक मैने। मैने उनसे पूँछा—"आप अपने विवाह से सन्तुष्ट तो है ?" सत्यनारायणजी ने कहा—"का कहै! कछू कहत बन्ति नाँइ। तुम हमारे घर कौ ठेका लै लेउ। जमीदारो मन्दिर सब तुमको सौपि देइगे और हमै छुट्टी देउ"। इस प्रकार बातचीत करते हम नर्मदा के पवित्र तट पर जा पहुँचे। नाव तैयार मिली। सब नाव मे बैठे और उस पार पहुँचे। एक पंडे ने हमको अपने मकान मे ठहरा दिया। सत्यनारायणजी को वहाँ सामान की रखवारी के लिये बिठलाकर हम लोग भोजन की तलाश मे निकले। लौटकर देखा तो पंडितजी लापता! सब जगह तलाश किया—कही पता न लगा। फिर हम लोग ओङ्कारेश्वर के मन्दिर मे पहुँचे। वहाँ एक सिपाही ने उन्हे कोने मे बिठला रक्खा था। वहाँ राजा की ओर से एक सिपाही रहता

है जो प्रत्येक दर्शनकरनेवाले से)॥ दो पैसा ले लेता है । पंडितजी के पास पैसे थे नही । सिपाही के रोकने पर भ आप भीतर चले गये थे । जब लौटकर आये तो सिपाही ने उन्हे रोक लिया और कहा—"पहले दो पैसे रखदो, तब जानें पाओगे ।" इसीलिये आप वहाँ बैठे थे । जब हम पहुँचे तो हमने पूँछा—कैसे बैठे हो ? सत्यनारायणजी बोले—"बैठे का है गिरफदार है । खूब खबरि लई आपने । हम तो जानते कि कोई खवर लिवैया हैई नाँहि । जा राजा के सिपाही के पाले पडे है ।" हमलोगो ने दो पैसे दिये और पडितजी दर्शन करके हमारे साथ चले आये ।

नर्मदा मे हम लोगो ने स्नान किये । पंडा अपनी दक्षिणा लेकर चला गया—फिर सत्यनारायणजी ने मुझे बुलाया और कहा—"नर्मदाजी को पानी हाथ मे लेउ"—मैने कहा—"क्यो ?" पंडितजो ने कहा—"लेउ तौ पानी ।" मैने पानी लिया । फिर पडितजी ने कहा—' तुम कहौ, कि हे नर्मदाजी, हम सत्यनारायण के बाप बनते × × ।" यह सुनकर मुझे हँसी आगई और मैने हाथ का पानी गिरा दिया । पडितजी ने कहा—"जि का करौ । हम तुम्हे अपनी जमीन-जायदाद सब सौंपते और छुट्टी लेते ।"

ओङ्कारेश्वर से हम लोग मोरटक्का की ओर चल दिये । रास्ते मे एक जगह पक्का कुँआ था । एक आदमी पानी पिलाता था । हम लोगों ने वहीं विश्राम किया और बैठकर चने खाने लगे । सत्यनारायणजी ने उस पानी पिलानेवाले को भी बुलाया और उसको भी वही बिठलाया । पंडितजी मुस्कराते हुए उस आदमी के सामने बैठ गये और बोले—"जि आदमी हमारी ससुरारि के मालूम पर्त्ते ।" हम सब हँसने लगे—"हमारी नाँय तो हमारे कऊ मित्र की ससुरारि के है ।" फिर सब हँसे ।

पडितजी ने कहा—"हँसत का हौ, पूँछि जु लेउ ।" क्यौ भैया, काँ रहतौ ?" उसने उत्तर दिया—"आगरे के पास" । पंडितजी ने कहा—"कौन सो गाँव ?" उसने गाँव का नाम बतलाया । पंडितजी ने कहा "चतुर्भुज को जानतौ ?"—वह आदमी बोला—"चतुर्भुज को तौ हमारी बहन ब्याही है ।" सत्यनारायणजी ने कहा " देखि लेउ, हमने ठीक कही कि

नाँहि ।" हम लोग खूब हँसे। पंडितजी ने उससे कहा—"देखौ भैया, बुरी मत मानियो । तुम तौ हमारे घर केई हो ।"

इसी प्रकार हँसते और बातचीत करते हम लोग मोरटक्का स्टेशन पर पहुँचे और वहाँ से रेल मे बैठकर इन्दौर आउतरे। यह मुझे क्या मालूम था कि पंडितजी से हमारा यह अंतिम मिलन है। उनकी स्मृति हृदय-पटल पर चिरकाल तक अङ्कित रहेगी।"

इन्दौर से वापिसी

३ अप्रैल को प० सत्यनारायणजी अपने मित्र भगीरथप्रसाद दीक्षित के साथ इन्दौर से आगरे के लिये रवाना हुए। स्टेशन पर पहुँचाने के लिये मै गया था। बडी मुश्किल से जगह मिली।* जब गाड़ी चलने को हुई तो मैने हँसी मे कहा—'पडितजी एक बात हमारी हू मानिओ। जब रेल चलन लगै तब चढियो और जौलो खडी न होन पावै उत्तर परियो।'—पंडितजी ने हँसकर कहा—"भैया तुम्हारौ कहौ जरूर मानिङ्गे"।

चलते-चलते मेने पंडितजी से कहा—'मै पन्द्रह-बीस रोज बाद धाँधूपुर पहुँचूगा तब तक आप "हृदय-तरङ्ग" ठीक कर रखिये।" गाड़ी चलदी और पडितजी आँखो से ओझल होगये।

अन्तिम पत्र और अन्तिम कविता

इन्दौर मे मैने पंडितजी से निवेदन किया था कि मेरी पुस्तक "प्रवासी भारतवासी" के मुख-पृष्ठ के लिए कोई पद्य बनाकर भेजना। ८ अप्रैल १९१८ को पंडितजी का निम्नलिखित पत्र मिला—

*ग्रामीण पोशाक होने के कारण लोग घुसने नही देते थे। जैसे-तैसे मैंने घुसकर जगह की और बिठलाया। पडितजी बोले—"मिर्जई पहिनबे की जि सजा है।"

श्री

श्रीमान् भाई बनारसीदासजी,

प्रणाम ।

यहा सकुशल आ पहुँचा । आपके अनुग्रह का इसे फल समझिये । आप लोगो को बड़ा कष्ट हुआ ।

आपकी आज्ञानुसार टाइटिल के लिए दो पक्ति भेजता हूँ । पसन्द आने पर काम मे लाना । बहुत सोचा, किन्तु इसके सिवाय कुछ न सूझा—

कोई मंत्र* हो कोई तंत्र† हो कैसा ही हो काज,
सत्याग्रह स्वराज ही केवल सबका एक इलाज ।

यहाँ प्लेग का बड़ा प्रकोप है । इसलिए अक्ल घास चरने चली गई है । क्षमा करिये और कृपा बनाये रखिये । श्रीमान् द्वारिका प्रसाद 'सेवक' से प्रणाम वा नमस्ते कह दीजिये ।

वरवे आदि प्रेमियों को प्रणाम ।

आपका

सत्यनारायण

यह बात ध्यान देने योग्य है कि ब्रजभाषा-कवि की अन्तिम कविता खड़ी बोली मे हुई ।

१५ अप्रैल सन् १९१८ की बात है । संध्या का समय था । कुछ झुटपुटा-सा हो रहा था । सत्यनारायणजी श्रीमती सावित्री देवीजी को, जो सात-आठ रोज पहले ज्वालापुर से धाँधूपुर आगई थी, "मालतीमाधव" के प्रूफ में से शिव की स्तुति सुना रहे थे । फिर उन्होने अपनी वह कविता सुनाई जो स्वामी रामतीर्थ के साथ रहते समय लिखी थी । तत्पश्चात् आपने पं० पद्मसिंह शर्मा को भेजी अपनी निम्नलिखित कबिता सुनाई—

---

*मन्त्रि-मंडल

†शासन-पद्धति— राजतंत्र या प्रजातंत्र

जो मोसो हँसि मिलै होत मै तासु निरन्तर चेरो,
बस ग्रुन ही ग्रुन निरखत तिह मधि सरल प्रकृति कौ प्रेरो ।
यह स्वभान कौ रोग जानिये मेरो बस कछु नाही,
नितनव बिकल रहत याही सो सहृदय बिछुरन माही ।
सदा दारुयोषित सम बेबस आज्ञा मुदित पमानै,
कोरौ सत्य ग्राम कौ बासी कहा "तकल्लुफ" जानै ।।

कविता सुनने के बाद आपने कहा—भूख लगी है। उनकी ग्रुरु बहन ने कहा "कल के लिये आटा पिसने, गेहूं दे आओ, रोटी अभी हाल बनती है" गेहू की डलिया लेकर सत्यनारायणजी घर के बाहर गये । उनके साथी गेदालाल जाट ने कहा "पडितजी महाराज, पालागन ।" उसे आशीर्वाद देते हुए गेहू डालने चले गये । उधर से लौटे तो गेदालाल ने कहा "-महाराज, दण्डौत" । सत्यनारायण ने कहा—"जब हम गये थे तब तुमने पालागन कही थी और अब हम लौट के आये है तब 'दण्डौत कहते हो, यह क्या बात है ?" गेदालाल ने कहा—"भाई, तब तुम पडितानी के हुकुम से, गये थे । घर-गृहस्थी के धधे मे गेहूँ लेकर गये थे सो हमने पालागन कही । अब तुम खाली हाथ बाबाजी की तरह लौटे हो सो हम तुम्हे दण्डौत करते है !"सत्यनारायणजी गेदालाल की इस उक्ति को सुनकर मुस्कराये और कहा—"तुम तौ ऐसोई मजाक करिबौ करौ ।" घर पहुँचकर रोटी खाई । उन दिनो धाँधूपुर मे प्लेग फैला हुआ था । हैजे का कही नामोनिशान भी न था ।* प्लेग से बीमार एक स्त्री को देखने के लिये गये । वहाँ से लौटकर बोले—"जी मचलाता है । जाने क्या हो गया ! कसरत कर एक साथ रोटी खाली इससे, या न जाने किससे !"

"कोरो सत्य ग्राम को बासी कारन कछू न जाने ।"

---

*सत्यनारायणजी उसी दिन धाँधूपुर के निकटवर्ती ग्राम महावन की गढ़ी से घी लेकर आये थे ।—लेखक ।

श्रीमती सावित्री देवी अपने १६।१२।१८ के पत्र मे लिखती है—

"चारो ओर प्लेग की बीमारी फैली हुई थी। एक आदमी के कहने पर ध्यान देकर पास के ही घर मे एक गिल्टीवाली स्त्री को देखने के लिए चले गये। जबसे बीमारी शुरू हुई थी, वे चाहते थे कि वहाँ से कही और चले जायँ, किन्तु मेरे ज्वालापुर से देर मे पहुचने के कारण वे इच्छापूर्ण न कर सके। इस स्त्री को देखकर ओषधि बतलाई और वहाँ से कुछ देर बाद ही वापिस लौट पडे। मेरा आग्रह था कि बीमारी के किसी रोगी को देखने न जाय, किन्तु उस आदमी का विशेष विनती करने पर साधारण बीमारी समझकर चले गये थे। शोक! वही उनको मृत्यु का कारण हुई। वापिस लौट कर उन्होंने हमसे जिक्र तक न किया और आप ही प्रसन्नता से घूमते रहे। बाहर जाकर और लोगो से कहा भी कि मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। सबने कहा कि पुस्तके देखो—चित्त शान्त हो जायगा और हम भी कुछ सुनना चाहते है। उन दिनो "मालती-माधव" छप रहा था। उसका प्रूफ लाकर मुझे शिवजी की स्तुति सुनाने लगे। स्वामी रामतीर्थजी के साथ रहते हुए जो बनाया था वह "कभी मुझमे तुझमे भी प्यार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो" सब सुनाते रहे। मैं भी सुन रही थी। मुझसे कहा कि यह तुम नोट कर लेना, मैने रामतीर्थजी की आज्ञा से बनाया था। मै खुश हुई और चाहा कि उतार लूँ, परन्तु उन्होने कहा कि अब मुझे सुनाने दो, फिर उतार लेना। कविता में ऐसे मगन थे कि उन्हें अपने शरीर की सुध न रही। रोटी आदि खाने के बाद तालेबर नामक एक लड़के से, जो ब्राह्मण स्कूल में पढता था और बीमारी की वजह से हमारे घर पर ही था, बाते करते रहे। पिपरमेण्ट आदि भी खाया। करीब ३ बजे उनके पेट मे दर्द हुआ। साथ ही कै-दस्त शुरू हुए। सुबह को ५ बजे हमने डाक्टर बुलवाया और उनसे कहा कि डाक्टर आनेवाले है। हमको चिन्तित देखकर आप हमें धैर्य दिलाते रहे और इधर-उधर की बातचीत करते रहे। डाक्टर भी बहुत रोगी देखने से न आ सके, दवाई दे दी, वह उन्होंने खुशी से पीली और चुपचाप लेटे रहे। कै आदि

बन्द हो गई, फिर अचानक कमर मे दर्द शुरू हुआ और सबके दबाने पर भी उन्हे बेचैनी बढती ही गई । बोलना भी बन्द कर दिया । फिर दो आदमी डाक्टर को लेने गये । सब मनुष्य ऐसी दशा सुनकर चले आये। मुझे धीरज बँधाने लगे। मैंने कई आवाज दी, सब निष्फल। उन्होने कुछ न कहा । घंटा-भर बेहोश लेटे रहे । मालिश की गई, शहद चटाया गया, पानी डाला, वह भी अन्दर न जा सका! मैं एकदम चिल्ला पड़ी! मुझे उनकी सूरत देखकर यह विश्वास भी न हुआ कि आज अन्तिम बिदाई है! अब लाख कोशिश करने पर भी मैं न पा सकूँगी! जोर से घबराकर मैंने अपना हाथ सिरहाने की तरफ पट्टी पर दे मारा । एक दम चौककर मेरी ओर देखा और सदा के लिये हतभागिनी से विदा ले ली!" मृत्यु के दो घटे बाद डाक्टर साहब आये!

इस प्रकार विना समुचित चिकित्सा हुए सरल प्रकृति सत्यनारायण ने सदा के लिये आँखें बन्द कर ली! जब सत्यनारायण की उस समय की स्थिति की कल्पना करता हूँ, जब वे मृत्यु-शय्या पर लेटे होगे, आगरा निवासी अन्य मित्रो को, बीमारी की कोई सूचना न दी गई स्मरण करते होगे, और आधी छपी प्रिय पुस्तक 'मालती-माधव' की याद आती होगी और फिर सोचते होगे कि अब डाक्टर आता है, डाक्टर अब आता है— डाक्टर नही आता, जीवन का अन्त आ जाता है मेरा हृदय भर आता है! अधिक नही लिखा जाता! कुछ देर ठहरिये और मेरे साथ चार आँसू आप भी बहा लीजिये!

* * *

शव के साथ धाँधुपुर के बहुत-से ग्रामीण मित्र गये । जो हल चला रहे थे वे हल छोड़कर और जो खेत मे पानी दे रहे थे वे पुर छोड़कर शव के साथ हो लिये । अँगूरीबाग के निकट, यमुना-तट पर, चिता बनाई गई तालेवर विद्यार्थी ने अग्नि-संस्कार किया । और कुछ ही क्षणो मे सत्यनारायण की सरल-सौम्य मूर्ति सदा के लिये आँख-ओझल हो गई!

वह कोमल काकली कलित सो, सीखी, वृन्दा विपिन निवेश ।
मस्त कान्ह को कर कर देती, हर हर लेती हृदय प्रदेश ।।
राष्ट्र भारती के उपवन मे होती रहती थी वह कूक ।
कर कर दिये क्रूरताओ के उसने सदा करोड़ों टूक ।।
वह कोकिल, उड़ गया, गया—वह गया—कृष्ण ! दौड़ो लाओ ।
वन देवी का धन लौटाओ——सच्चे नारायण ! आओ ।।

सत्यनारायणजी का व्यक्तित्व

जीवनी-लेखकों के शिरोमणि प्लूटार्क ने एक जगह लिखा है—"मनुष्य के गुणो और अवगुणो की यथार्थ जाँच सदा उसके अत्यन्त प्रसिद्ध कार्य्यो से ही नही होती, बल्कि प्राय: एक क्षुद्र कार्य्य—एक छोटी-सी बात अथवा मजाक—से मनुष्य के असली चरित्र पर जो प्रकाश पड़ता है वह उसके लड़ाई के दिनो के बड़े-से-बड़े घिराव और युद्धो से नही पड़ सकता।" इसी आदर्श वाक्य को सामने रख कर यहाँ सत्यनारायणजी के जीवन पर दृष्टि-पात किया जारहा है—

कवितामय जीवन

पहली बात जो सत्यनारायणजी के जीवन मे दीख पड़ती है वह है—उनका कवितामय जीवन। चिट्ठियाँ प्राय कविता मे ही लिखा करते थे।

१८।४।१६०५ को सत्यनारायणजी के पास उनके एक मित्र का निम्नलिखित पत्र पहुँचा।

आगरा
१८।४।१६०५

अरे ओ पंडित,

जय श्रीसत्यनारायणजी की!

लल्लू तेरी तारा रूरी सरसुती मे छपी। मैंने आज देखी ही। सीतला गलीवारे ब्रजनाथ के पास आजी आई है। द्विवेदीजीने बड़ी किरपा करी, ७० ही लैन छापी हैं। जौ फुस्सति होय तो आयके देखिजैयो औरहू काऊ की बनी बसंत वामें छपी है।

हमारी और चौबेजी और पंडितजी की सला एतबार को तुम्हारे म्हाँ आइबे की भई है। जौ तुम्हारी राजी होइ तो चले आमे।

पंडितजी महाराज तव निकट विनय इक मोर ।
पत्रोत्तर दीजो हमे करिके किरपा 'घोर' ।।

नाम लिखने पै कुछ नही मौकूफ,
तरज तहरीर से समझ लेना ।

(एक हितचिन्तक)

पंडितजी ने इस पत्र के ऊपर लिख दिया—

जाने यह कर कमल सो लिख्यो ताहि आसीस ।
पूजहि करि करुना सकल तासु आस जगदीस ।।

और पत्र का उत्तर दिया ।

तव आवन की सुनत ही उर अति बढ्यो उछाह ।
हम प्रेमी पागलन को और चाहिये काह ।

एक महाशय ने पत्र भेजकर मासाहार के विषय मे आपकी सम्मति पूँछी । आपने जबाब मे लिखा—

भगवन कृपा पत्र तव आयो ।
अपनो मत यथार्थ प्रगटन मे यह कबहुँ न सकुचायो ।
जो जग रसना सों जल पीवत ते सब मासाहारी ।
उनकी दया-रहित रद-रचना मनुज लोक सो न्यारी ।।
स्वय सिद्ध यह प्रकृति नियम है फिर कोउ बात बतावै ।
याही सो कपि खात न आमिष सुलभ सत्य दरसावै ।।

किसी मित्र को नये वर्ष की बधाई देते हुए आपने लिखा था—

यह नई बरस ।
देइ तुमको सकल मंगल मजुफल-प्रद हरस ।।
प्रकृति पावन परम भावन प्रेमकर प्रिय परस ।
आत्म-गौरव दिव्य द्युतिमय अभय जीवन दरस ।।
सुहृद सत जन सरल सुन्दर सदय सहृदय सरस ।।

किसी लेखक ने अपनी पुस्तक 'मनोविलास' पंडितजी के पास भेज दी। आपने उसकी स्वीकृति इन पक्तियो मे दी—

देखा मनोविलास।
पढकर पूरन प्रेम भाव का उर मे हुआ विकास॥
यही विनय है सतचित आनँद पावन जगदाधार।
दे सामर्थ तुम्हे जिससे हो हिन्दी का उपकार॥

अपने एक मित्र को पत्र लिखते है—

आहा! आई आई आई तव पत्री अनन्त सुखदाई।
दरसन-बिरह-बिथित जो अँखियाँ तिनकी तपति बुझाई॥
ज्योही हँसमुख चपल चारु चखलौनो छबि दरसाई।
ललकि धरी सो धाइ हृदय मे पलक कपाट चढाई॥
लहि इकन्त निह्चन्त सकल विधि सत्य करत मनभाई।

अपने परम मित्र लक्ष्मीदत्तजी के यहाँ गये। उन दिनों लक्ष्मीदत्तजी डाक्टरी पढ रहे थे। आपने पद्य लिखकर उनके दरवाजे पर टाँग दिया।

प्रथम पाठ जो पढत हम मानव-जाति सनेह।
कार्य्य हमारौ सकल विधि विमल दया कौ गेह॥

वैश्य बोर्डिङ्ग-हाउस मे गये। रात के ८ बजे थे। उनके मित्र माधुरी प्रसादजी ने कहा—"पडितजी, हमारी हस्तलिखित पत्रिका "भारती" के लिये कुछ कविता लिख दीजिये"—सत्यनारायणजी ने उत्तर दिया—"इस वक्त दिमाग काम नही करता।" अयोध्याप्रसादजी पाठक के धर के लिए चल दिये। मुजफ्फरखाँ के बाग तक पहुँचे थे कि लौट आये और बोले—'अच्छा लेउ लिख लेउ"—

अक्षर ब्रह्मविचार सार में मग्न मुदित मन।
प्रकृति हंस आसीन स्वयं प्रतिभा नव जीवन॥
बिलसत प्रभा प्रदीप्त मंजु मुख मंडल पावन।
ब्रह्मचर्य्य पूरन प्रताप जगमगत सुहावन॥

अभिनव जग जागृति भावमय कर वीणा झकारती ।
अस श्रुति-पाणी हो सदय सत वरदा वाणी, भारती ॥

श्रीयुत राधाचरणजी गोस्वामी ने अपने पुत्र के विवाहोत्सव के लिये जो पत्र भेजा था, उसमे लिखा था–

"सवत् वसु रस अङ्क बिधि,
माघव हरि दिन श्याम ।
करिके कृपा बरात मे;
चलिये मथुराधाम ॥

यह पत्र २६ अप्रैल सन् १९११ को; जिस दिन बरात जानेवाली थी, उसी दिन, पण्डितजी को मिला । आपने उत्तर दिया––

सुखद पत्र मिल्यो प्रिय आपको––
अवसि, किन्तु लह्यो दिन के दिना ।
सिर धरो त्वपदाम्बुज रेणु को,
अस कहाँ मम मजुल भाग हैं ॥
यहँ बड़े उरझे गृह-कार्य्य है,
न अवकाश प्रभो यहि हेतु सों ।
सदय मो अपराध क्षमा करो,
दिन गये कछु श्रीपद परसिंहो ॥

पंडित पद्मसिंहजी शर्मा ने सत्यनारायण को बहुत दिनो से कोई चिट्ठी नही भेजी थी । इसकी शिकायत आपने इन शब्दों में की थी––

पदम, तब हृदय बड़ो बेपीर ।
सोचत ना यह भँवर बिचारो कब को अहहि अधीर ॥
रुचिर अधर दल तनिक न खोलत का अपराध विचारयो ।
पुजवत साध न याके मनकी टेरि-टेरि ये हारयो ॥
कोमल परम कहावत तोऊ कठिन भये अब ऐसे ।
काऊ को दुख-दरद न मानत जानत ना कछु जैसे ॥

कविरत्न जी की हस्त-लिपि

सुधि राहि २ आवत तव सँगकी रंगरलियां
नद जमुनाधिराज श्यामल वपु शैल गंगतट गलियां
हँसि जुलगनि खिवारत विकसत प्रेम २ की कलियां
सत गरीब को फेरी देउ मनं मलीन पे चलवलियां

[स्वर्गीय सत्यनारायण जी ने यह कविता भी आचार्य श्री पद्मसिंह जी के पास, ज्वालापुर से लौटने के बाद, भेजी थी——बनारसीदास चतुर्वेदी]

अपने एक अन्य मित्र को आपने लिखा था—

प्रियतम कृपापत्र तव आयो ।
बड़े प्रेम से ताहि चूमि के अपने दृगनि लगायो ।।
जब तुम जानत ब्रजभाषा को निज प्रानहुँ सो प्यारी ।
सब प्रकार सेवा के मोसो हो पूरन अधिकारी ।।
हरिश्चन्द्र श्रीधर ग्रन्थनु मे प्यारी रुचि सो पागो ।
सत्य सनेह सहित नित नूतन भारतमन अनुरागो ।।

रसिकतापूर्ण-स्वभाव

सीधे-सादे और सरल होने पर भी सत्यनारायणजी खूब हँसते-हँसाते थे। मुहर्रमीपन तो उन्हे छू भी नही गया था। मजाक करने मे वे बड़े कुशल थे। सत्यनारायणजी को रस-भरे रसिये बहुत पसन्द थे। श्रीयुत सत्यभक्तजी ने अपने १८।११।१९ के पत्र मे सत्याग्रह आश्रम (साबरमती) से लिखा था—–

"सत्यनारायणजी को रसियोका शौक तो था पर जहाँ तक मुझे मालूम है उन्हे विशेष रसिया याद न थे। एक दिन उन्होने भरतपुर की समिति मे मुझ से तथा अन्य कई व्यक्तियो से, जो वहाँ बैठे थे, इस विषय मे पूँछा। मै तो इस सत्कार्य के करने का साहस न कर सका; पर एक दूसरे व्यक्ति ने कई रसियो के कुछ भाग सुनाकर कविरत्नजी को कुछ बानगी दिखलाई। उनमे से एक रसिये की टेक उन्हे विशेष पसन्द आई थी और उसे वे कभी-कभी गाया भी करते थे।

"—बछेरी डोलै पीहर मे !"

ब्रजमे—विशेषकर भरतपुर मे—रसियो का विशेष प्रचार है ग्रामीण लोग इन्हे प्रायः गाया करते है। सत्यनारायण को ग्रामीण आदमियो की संगति बहुत पसन्द थी। वे बड़े चाव और आग्रह के साथ उनसे रसिया सुना करते थे। एक बार आपने स्वयं एक सुरुचि-पूर्ण रसिया बनाकर अपने मित्रो को सुनाया था।

तुम चौंना मोकूँ तारौ, जगत रन नाम तिहारौ ।
बलि तारौ, प्रह्लाद उबारौ, तुम गजको सकट टारौ ।।
तुम चौंना मोकूँ तारौ ।।*

कभी-कभी समाचारपत्रो मे आपकै नाम पर कुछ मजाक छपता था तो आप खूब हँसते थे और उसे अपनी डायरी मे नकल कर लेते थे ।

सत्यनारायणजी के विवाह के बाद श्रीयुत "मौजो" ने आपके विषय मे "भारतमित्र" में लिखा था—

"सत्यनारायणजी अब काव्य क्यो महाकाव्य लिख सकते है; क्योकि हरिद्वार मे उन्हे कविता की कुइया मिल गई है । अब वह मजे मे नित्य कविता उलीचा करे ।"

श्रीयुत "गडबडानन्द" ने १८ जनवरी सन् १९१५ के 'प्रताप' में लिखा था—

"श्रीयुत श्रीधरजी की कविता के विषय मे पूज्य "सरस्वती"-सम्पादक की राय है—

"बाला-बधू-अधर-अद्भुत-स्वादुताई ।
द्राक्षाहु की मधुरिमामधु की मिठाई ।।

---

* जब भरतपुर के महाराज को अधिकार मिले तो पंडितजी भरतपुर गये थे । उन्होंने उस अवसर के लिये नीचे लिखा एक रसिया भी बनाया था जो कई जगह गाया गया ।

बनि दुलहिन-सी रही आज
भर्तपुर नागरिया ।
द्वार-द्वार में लिखना काढ़े,
जुरचौ उछाह समाज ।।
भर्तपुर नागरिया ।।

जाट लोग भरतपुर का उच्चारण भर्तपुर ही करते है ।

एकत्र जो चहहु पेखन प्रेम-पागी।
तो श्रीधरोक्त कविता पढ़िये अनुरागी" ।।

"चौपटानन्दजी" इसी वजन की निम्नलिखित कविता कविरत्न सत्यनारायणजी के विषय मे कर रहे है—

कालो नई मिरच तीखन तीतताई।
डाला कुनैन ज्वर की अथवा दवाई ।।
गाँजा अफीम विजया सब भांति फीका।
देखो सुजान कविता कविरत्नजी का ।।

८ फरवरी के "प्रताप" मे "गड़बडानन्द" के किसी भाई-बन्दका निम्नलिखित मजाक छपा था और सत्यनारायण ने इसे डायरी मे नोट कर लिया था।

"सारन के पाण्डेजी को रज है कि रिश्तेदारी होने पर भी हिन्दी के इतिहास-रचयिताओ ने एक लाइन से भी कम उनके विषय मे लिखी है। ऐसे ही और लोग भी नाक-भौह सिकोड रहे है; लेकिन जो चाहते हों कि ससार उनकी प्रतिष्ठा करे तो उनको चाहिए कि वे अपनी प्रतिष्ठा आप करें। शायद यही सोचकर अखिलानन्द महाराज और सत्यनारायण बाबा दुनिया के लाख ना-ना कहने पर भी कविरत्न हो गये। सुनते हैं, अब भी नन्दकुमारदेव शर्म्मा को साहित्य-अष्टादशांग की पदवी मिलने वाली है।"

कभी-कभी पंडितजी बड़े आनन्द के साथ गाया करते थे—

पिया बिन नागिन काली राति।
कबहुँ रैनि यह होति जुन्हैया डसि उल्टी ह्वै जाति ।।

और कभी मजे मे आकर यह भी गाते थे—

छोहरा मोइ दै तीर कमान, पपीहरा काढैं लेतु पिरान।
पापी,
वु तो पीउ-पीउ किलकारै, मोहि मारै मारै मारै।

हँसी-मजाक

सत्यनारायणजी खूब हँसते-हँसाते थे। मीठी-मीठी चुटकियाँ लेना भी जानते थे : जब आप आगरे के चतुर्वेदी-सम्मेलन में सम्मिलित हुए तो मैंने मजाक मे कहा—"पडित, आप सनाढ्य से चौबे खूब बने"। सत्यनारायण-जी ने उत्तर दिया—"आप भी तो कभी-कभी पडित तोताराम सनाढ्य के नाम से लिखा करते है इस लिए आप भी सनाढ्य हुए। बात यह हुई है कि एक चौबेजी सनाढ्य बन गये है, और एक सनाढ्य ने चतुर्वेदी जाति की शरण ली है !"

मैने कहा—"तब तो हर तरह से हमारी जाति का लाभ ही लाभ हुआ है। एक थर्डक्लास लेखक की जगह उसे एक कविरत्न मिल गया है।" मुस्कराकर पंडितजी चुप हो गये। कभी-कभी आप कहा करते थे—"चतुर्वेदी केदारनाथजी ने सनाढ्यो के पत्र का कुछ दिनो तक सम्पादन किया था। आज मै "चतुर्वेदी" का सम्पादन करके उसी का बदला दे रहा हूँ।"

तुम्हारा खानसामा

एक बार सत्यनारायणजी किसी मित्र को पत्र लिखने बैठे। आप ने सोचा कि पत्र के अन्त मे कोई उर्दू शब्द लिखना चाहिए। बहुत कुछ सोचा पर कोई अच्छा शब्द याद न आया। इसलिये आपने अन्त मे लिखा—"तुम्हारा खानसामा सत्यनारायण"। बहुत दिन तक "तुम्हारा खानसामा" का मजाक रहा। सत्यनारायणजी के मित्र श्रीयुत केदारनाथजी भट्ट व चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी इस मजाक की याद करके हँसा करते थे।

निरभिमानता

भूपसिंह नामक एक सज्जन सत्यनारायण के साथी थे। चार-पाँच वर्ष पहले मिढाकुर में पढ़े थे और पीछे वही पढाने भी लगे। वे भी कुछ कुछ कविता करते थे। उनकी कविता का नमूना एक सज्जन ने बम्बई मे हमें सुनाया था।

"भूपसिह भिनि भिनि भनन सितार बाजै,
बाजत तमूरा ताम ताम ताम तिनिनिनि।"

सत्यनारायण भूपसिहजी को 'गुरुदेव' कहा करते थे; क्योकि कविता करने मे सत्यनारायण ने उनसे कभी-कभी सहायता ली थी।

सादगी और भोलापन

सत्यनारायण के व्यक्तित्व मे उपरी ये दो बातें सबसे अधिक आकर्षक थी। फैशन के चक्कर मे वे कभी नही पडे। उन्हे ग्रामीण होने का गौरव था। उनके सहपाठी मित्र श्रीयुत दरबारीलाल जो लिखते है:—

"जब कभी मुझसे मिलते तो पहला प्रश्न यही होता था—"मै अंग्रेजी पढा हुआ तो नही मालूम होता ?" इस पर मै पूछता—"इस प्रश्न से आपका उद्देश्य क्या है ?" आप उत्तर देते—"आज कल बहुत-से पढ़े-लिखे 'जटिलमैन' होते जाते है; पर मै तो जटिलमैनी से बचने के लिये सामान्य वस्त्र पहनता और सादगी से रहता हूँ" ? गौरव की बात तो यह थी कि उनकी सरलता और सादगी मे कोई कृत्रिमता नही आने पाती थी। उनके हृदय का भोलापन और बस्रो की सादगी से सोने मे सुगंध का मेल हो गया था। कोरमकोर वस्त्रो की सादगावाले तो आजकल हजारों पाये जाते है, लेकिन उनमे सत्यनारायणजी की हार्दिक सरलता का शताश क्या, सहस्राश भी नही मिलेगा। बात यह है कि जैसे वे भीतर थे, वैसे ही ऊपर।"

श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट ने "सरस्वती" मे लिखा था—

"सत्यनारायणजी निरभिमानी इतने थे कि एक रात को इस नोट के लेखक के मकान पर टेसू के गीत गानेवाले गँवारो के साथ बेधडक बैठकर आप भी उसके सुर मे सुर मिलाकर और एक कान पर हाथ रख कर जोर जोर से तान अलापने लगे।

सत्यनारायण और एण्ड्रूज़

सत्यनारायण की मृत्यु के बाद ६ वर्षों मे मुझे बीसियों साहित्यसेवियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, लेकिन सत्यनारायण का-सा भोलापन मुझे केवल एक ही मनुष्य मे दीखा— यानी भारत-भक्त-एड्रयूज मे। सत्यनारायण कवि थे, मि० एंड्रयूज़ भी कवि है। सत्यनारायण सासारिकता से कोसो दूर थे; मि० एंड्रयूज को दुनयावीपन छू भी नही गया था। सत्यनारायण ने निस्स्वार्थ भाव से साहित्य-सेवा और समाज-सेवा की। मिस्टर एड्रयूज़ ने भी ऐसा ही किया। भोलेपन मे दोनो को सगे भाई समझना चाहिये। सत्यनारायण को धोखा देना आसान था। मुझे दोनो के ही संसर्ग मे आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ अत मै कह सकता हूँ कि दूसरो को उत्साहित करने मे, किसी के अवगुण न देखकर उसके गुण ही गुण देखने मे, हृदय की कोमलता और प्रेमपूर्ण स्वभाव मे सत्यनारायण और एंड्रयूज़ समान ही थे। सत्यनारायण के स्वर्गवास के १८-२० दिन बाद ही मुझे मिस्टर एड्रयूज़ से साक्षात् परिचय करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मिस्टर एड्रयूज का निष्कपट और प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर मैंने सोचा— "अहा। क्या ही अच्छा होता, सत्यनारायणजी जीवित होते और एंड्रयूज़ से मिलते।" यदि मै चित्रकार होता तो सत्यनारायण और एड्रयूज़" के हृदयालिंगन का चित्र खीचता और चित्र के नीचे लिखता—"पूर्व और पश्चिम का मिलन!" दुर्भाग्यवश सत्यनारायणजी की जीवित अवस्था में मैं उन्हें एंड्रयूज़ साहब से नहीं मिला सका। पर सत्यनारायणजी का स्वर्गवास होने के पश्चात् मेरी प्रार्थना पर मि० ऐण्ड्रयूज़ उनका तैल-चित्र उद्घाटन करने फीरोजाबाद पधारे थे और यह जीवनचरित्र भी भारत-भक्त एण्ड्रयूज़ के ही अर्पित किया गया है। मुझे विश्वास है कि सत्यनारायण की स्वर्गीय आत्मा इससे संतुष्ट होगी।

चरित्र पर एक दृष्टि

इस विषय में सत्यनारायणजी के मित्र श्रीयुत गुलाबराय एम० ए०

ने कुछ लिखकर भेजा है वह सत्यनारायणजी के चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालता है। इसलिये उसे हम यहाँ उद्धृत किये देते है।

"यशेच्छा महानपुरुषो की अन्तिम कमजोरी है। काव्य के उद्देश्यो मे यश पहला स्थान पाता है ('काव्य यशसे अर्थ कृते' इत्यादि)। प० सत्यनारायणजी मे न यशेच्छा थी और न धनेप्सा। इसलिए वे वर्तमान कवियों मे रत्न-रूप थे। उन्होंने जो कुछ लिखा 'स्वान्त सुखाय' लिखा। सच्ची कला का उदय तभी होता है जब उसका अनुशीलन किसी बाहरी अर्थ वा प्रयोजन से नही होता। परीक्षा-काल मे विद्यार्थियो की सारी शक्तियाँ पाठ्य पुस्तको मे केन्द्रस्थ हो जाती है; किन्तु कविरत्नजी को "धोये-धोये पातन की" शोभा-वर्णन मे परीक्षा की खबर न रही! इससे अधिक और कविता का प्रेम क्या हो सकता है? पडितजी ने विश्व-विद्यालय की परीक्षा मे फेल होकर कविता की सच्ची परीक्षा मे उच्च पद पाया था।

उनके चेहरे पर सन्तोष और शान्ति की एक अलौकिक छटा रहती थी। वास्तव मे वह इस कठोर ससार के योग्य न थे। इसीलिये वह मृत्यु के छाया-पथ द्वारा शीघ्र ही अनन्त सुख और शान्ति के लोक को प्रयाण कर गये। जितने दिन रहे, उतने दिन इस सघर्षणशील ससार को शान्ति-पाठ पढाते रहे। यद्यपि उनका जीवन कष्टमय था तथापि वे सहनशीलता के माधुर्य्य से निकटस्थ लोगो के माधुर्य्य मे आनन्द की झलक डालते रहे। आपने फैशन के केन्द्र मे, सादगी के जीवन का अपने उदाहरण से, प्रतिपादन किया। दूसरो के अनादर से कभी रुष्ट नही हुए। यदि किसी ने उपहास किया तो स्वयं ही उस उपहास मे शामिल हो गये! रोष को अपने हृदय मे स्थान नही दिया। दुख ने कभी उन पर जय नहीं पायी। बढती हुई यश की लहर ने उन्हे कभी मदोन्मत्त नही किया। कविता से नितान्त अनभिज्ञ को भी गुरुपद देने को तैयार रहते थे। अरसिको तक को कविता सुनाने में संकोच न था। वह सबको अपने से बड़ा ही समझते थे। आगरे मे कोई ऐसी सभा न होती जिसका मूल्य उनकी कविता द्वारा न बढ जाता हो। ऐसा कोई पत्र न था जिसके

सम्पादक को उन्होने अपनी कविता से आभारी न किया हो । नगर मे ऐसा कोई विद्यार्थी न था जो उनका मित्र न हो । उन्होने अपनी विद्या और कवित्व शक्ति को विनयगुण से गौरवान्वित किया था । सत्यनारायणजी विनयशीलता, निरभिमानता और हास्य तथा माधुर्य्यमय करुणा की जीवित मूर्ति थे । विशेषत. करुणरस की कविता सुनाते समय कविता के भाव उनके मुख पर व्यजित हो जाते थे और वे करुण रस की साक्षात् मूर्ति बन जाते थे । समय की अनन्तता मे उनको पूर्ण विश्वास था । उनके जीवनादर्श ने महात्मा तुलसीदासजी के निम्नलिखित पद को अपनाया था ।

कबहुँक हौ यहि रहनि रहौगो ।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा ते सन्त सुभाव गहौगो ॥
यथा लाभ सन्तोष सदा काहू सो कछु न चहौगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौगो ॥
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौगो ।
विगत मान सम शीतल मन परगुण नहि दोष कहौगो ॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता दुख-सुख-सम बुद्धि सहौगो ।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भक्ति लहौगो ॥"

श्रीयुत गुलाबरायजी के उक्त कथन से मै पूर्णतया सहमत हूँ । यहाँ मै यह कह देना चाहता हूँ कि सत्यनारायणजी की विद्वत्ता व कवित्व शक्ति ने मेरे हृदय को उतना आकर्षित नही किया जितना उनके सरल स्वभाव, निष्कपट व्यवहार और सहृदयता ने । शान्ति-आश्रम मथुरा मे स्वामी रामतीर्थ के सामने अपनी कविता पढते हुए सत्यनारायण मेरे हृदय को उतना आकर्षित नहीं करते, जितने मिढाखुर के मदर्से मे—

"देखौ अँगरेजन कौ खेल, निकारयो माटी मे ते तेल ।
जरै जैसे घिय कैसौ दिवला !"

गाते हुए सत्यनारायण । 'कुली प्रथा' या 'कामागाटामारू-दुर्घटना' के लिये शोकोत्पादक कविता पढ़नेवाले सत्यनारायण के स्वर से मेरी हृदय-

तंत्री उतनी झँकृत नही होती, जितनी गृहजीवन से पीडित "भयो क्यों अनचाहत को सग" गानेवाले साश्रुनयन सत्यनारायण के करुणोत्पादक शब्दो से। सत्यनारायण की वह मूर्त्ति, जब कि वे आगरा प्रान्तीय सम्मेलन की स्वागत-समिति के प्रधान की हैसियत से अपना विद्वत्तापूर्ण भाषण पढ रहे थे, मुझे स्मरण नही आती, लेकिन मधुर मुसक्यान के साथ ठेठ ब्रज-भाषा बोलने वाले सत्यनाराण की स्मृति मे मैने कई बार आँसू बहाये है। इसी प्रकार सर्वसाधारण द्वारा प्रशसित उनकी "श्रीसरोजिनी षटपदी" ने मेरे मनको उतना प्रफुल्लित नही किया जितना "कली री अब तू फूल भई" नामक उस कविता ने किया है जो एक प्राइवेट पत्र मे किसी को भेजी गई थी। लोग कहते है कि करुणा रस की कविता करने मे सत्यनारायण सिद्धहस्त थे, उत्तर रामचरित्र के करुणामय दृश्यों का अनुवाद उन्होने बडी सफलता से किया है, लेकिन मुझे उनका कोई भी पद्य इतना करुणाजनक नही दीख पड़ा जितना उनके दुखान्त जीवन-नाटक का अन्तिम पट! बात वस्तुतः यह है कि Satyanaryan was much greater as a man than as a poet सत्यनारायण जिस कोटि के कवि थे, उससे कही ऊँचे दर्जे के 'मानव' थे।

ग्रामीण मित्र क्या कहते है?

सत्यनारायणजी का एक छोटा-सा फोटो लेकर मै धाधूपुर गया था उसे मैने वहाँ के गँवार किसानों को दिखलाया। देखकर उनकी आखो मे आँसू झलक आये। वे कहने लगे—"हाँ, महाराज, जे तो ऐन-मैन सत्य-नरायन ही बैठे है!" एक ने कहा—"का कहै महाराज! हम चारि आदमी बड़े मित्र है सो हमारी तो मानो एक भुजाई टूटि गई।" दूसरा बोला—"हल चलाउते बखत कुअन पै राम लेत भये, खेत पै, खलिहान में, वे हमेस हमारे ई साथ रहते!' तीसरा कहने लगा—"सत्य-नरायन पैले हमको अपनी कविता सुनाइ देते और जब हम कहि देते कि ठीक है तब वे बाइ छपवाइबे भेजते। बाकी तो रहि-रहि के यादि आवति

है।" चौथे ने कहा—"हम कैसे भूले। जब सावन आवते, तब सत्यनारायन 'अहा' कहिकें "घिरि आउरी बदरिया कारी बरसन वारी" गाइबे करते। खेत मे बैठे कवित्त बनाइबे करते।"

पाँचवाँ बोला—"हम का कहै धाधूपुर को तो भाग ई फूट गयौ। बड़ौ साहिर (शायर) आदमी हो, ताई ते बाकौ नाम दूरि-दूरि फैलि गयौ।"

> कायर कूर अनिष्ठा नारी चुगल मरौ काऊ जानी ना।
> अरु कौआ कुत्ता किरिमि गिजाई इनकी मौत बखानी ना॥
> मरिवौ जगह सराहै राजा साहिर सूर सती कौ।
> रन देखौ करन जती कौ॥

सो महाराज बु तौ साहिर* आदमी रहौ।"

सत्यनारायण का चरित्र-चित्रण इससे अच्छा भला कौन कर सकता है?

* शायर कवि

सत्यनारायणजी की कुछ स्मृतियाँ

श्रीयुत भगवन्नारायणजी भार्गव, वकील (झाँसी)

"मै सन् १९१० की जुलाई मे सेन्टजान्स कालिज मे शिक्षा प्राप्त करने गया था। वही पर सत्यनारायणजी का प्रथम दर्शन हुआ था। एक स्वदेशी बंडी पहने, गले में अरुण डुपट्टा, देशी टोपी और देशी धोती। वाह! कैसी मनोहारिणी स्वदेशभक्ति की मूर्ति थी! मै भार्गव बोर्डिङ्ग-हाउस मे रहता था। सप्ताह मे एक बार तो अवश्य ही दर्शन दिया करते थे। जब हम लोग भोजन करने बैठते थे तब वे अपनी पुरानी गाथा सुनाया करते थे। भोजन करते समय यह अवश्य कह लेते थे कि भाई हम तो आधे भार्गव हो गये। ××× आप कृष्ण के भक्त थे। प्रायः अपनी कविताओ द्वारा उनको बड़े गहरे उलाहने दिया करते थे। मेरी ईश्वर-प्रार्थना आदि देखकर कहा करते थे कि तुम ईश्वर का पीछा छोड़ो और जो उनसे न बनती हो तो माखन-मिश्री चुराने और खानेवाले की बचनावली सुनाओ। ××आप मुझको पत्र भी कविता मे लिखते थे। उनमे बाते यद्यपि साधारण होती थी पर कभी-कभी उनमे नवीन भाव भी आ जाता था। एक बार मैने पत्र भेजा; परन्तु जिस दिन धाँधूपुर डाक जाती थी उसके एक दिन बाद मैंने उसे डाक मे डाला, इस कारण एक सप्ताह मे मिला। आपने प्रत्युत्तर दिया—

"प्रियवर पायो पत्र तुम्हारो सब प्रकार सुख-मूल।
किन्तु मिल्यो छै दिना पिछारी डाक भई प्रतिकूल॥"

आप प्राय गणागण शुभाशुभ शब्द का भी विचार रखते थे और यह भी आपका विश्वास था कि कविता के भाव का प्रभाव कवि पर भी पड़ता है। जब आपके गुरु बाबा रघुवरदास का सहसा देहान्त होगया तो आपने मुझसे कहा—"मुझको यह आशंका न थी कि गुरुजी का देहान्त अभी हो

जायगा। कदाचित यह उस छन्द का प्रभाव है जो मैने उत्तर-रामचरित्र के अनुवाद मे लिखा है। रामचन्द्रजी सीताजी के प्रति कहते है—"हा हा देवी फटत हृदय यह जगह् शून्य दरसावे। आप कहते थे कि गुरूजी बिन जगत् शून्य-सा ही हो गया। एकबार "सरस्वती" में बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त की एक कविता निकली। उसका पहला पद यह था—"नर हो न निराश करो मनको" कविरत्नजी बोले कि ऐसा लिखना ठीक नहीं; क्योकि पढने मे यह पद ऐसा भी आ सकता है न रहो न निराश करो मनको।"

जब आपको राजयक्ष्मा का रोग हो गया था और बहुत कष्ट था तब भी आपकी काव्यस्फूर्ति जैसी की वैसी बनी थी। उन्ही दिनो आपने लिखा था—

"बस अब नहि जात सही,
बिपुल बेदना बिविध भाँति जो तन मन ब्यापि रही।"

एक बार आप संक्रान्ति पर गंगा-स्नान करके इक्के मे लौट रहे थे। सड़क की उँचाई-निचाई के कारण इक्के में बहुत दचके लगते जाते थे। उसी समय इक्के मे बैठे-बैठे आपने यह पद्य लिखा था—

"दया ऐसी कीजै भगवान,
जासो हिन्दू जाति करे यह प्रेम-गङ्ग असनान।

मैने आपसे कई बार झाँसी पधारने को कहा था। पर आप यही कह दिया करते थे—"जब झाँसी के झाँसे में आजाऊँगा तब वहाँ भी पहुँच जाऊँगा। परन्तु आप तो किसी दूसरे के ही झाँसे मे आगये और निष्ठुर होकर चल दिये। किसी की परवाह भी न की!"

श्रीयुत केदारनाथजी भट्ट एम० ए०, एल०-एल्० बी० (आगरा)

"सत्यनारायण से मै प्राय' सिड़ी कहा करता था और जिस भाव से मैं कहता था उसी भाव से इस उपाधि को वह ग्रहण कर लेता था। अब

ऐसा शुद्ध हृदय, जो दर्पण के दर्प को लज्जित करने वाला था, कहाँ मिल सकता है, यह मै नही जानता, ईश्वर ही जाने। उसका पूरा जीवन मनुष्य रूपी सेवा-समिति का आदर्श था। उसके गुण मै आपसे क्या कहूँ। आप तो स्वयं उससे मिले थे। मेरा जी भर आया है, आखे तर हो आई है। लीजिये इस कागज पर भी आसू की एक बूंद गिरी! आप को इस समय मैं उसकी यही स्मृति भेजता हूँ!!

श्रीमान् पूज्य पं० श्रीधर पाठक (प्रयाग)

"प्रियवर सत्यनारायण की असामयिक मृत्यु से मुझे जो आन्तरिक दुःख हुआ है भाषा द्वारा पूर्णतया प्रकट नही किया जा सकता। मै उनको उनकी १७-१८ वर्ष की वयस से जानता था। प्रथम परिचय पत्रालाप द्वारा हुआ था। कुछ काल के अनन्तर प्रत्यक्ष सलाप और समागम से वह पुष्टतर हुआ और फिर स्वत: अधिकाधिक प्रगाढता प्राप्त करता गया। यद्यपि अभिन्न मैत्री के एकान्त तट तक कभी नही पहुँचा। समागम भी लम्बे-लम्बे अन्तर से हुआ था, अत मुझे उनकी मानसिक अन्तर्वृत्तियों का पूरा पता न लग सका। मुझे सत्यनारायणजी की कवित्वशक्ति की उत्तरोत्तर उन्नति देख हार्दिक आनन्द होता था। वह एक बड़े होनहार पुरुष-पुगव थे और यदि पूर्ण "पुरुषायुष जीविता" प्राप्त करते तो अपनी असाधारण शक्ति द्वारा स्वदेश की अनेक प्रकार से सेवा कर जाते। मेरी बातो को वह ध्यान से सुनते थे और सलाहो को प्रायः काम मे लाते थे। उनकी स्वाभाविक शालीनता उन्हे सदा सुजनोचित सौम्य से भूषित रखती थी। उनकी प्रतिभा उनसे साहित्य-सेवा का उत्कृष्ट काम लेती थी। उन्हे मै अपने आत्मीयो मे समझता था। गत हेमन्त मे जब उनका प्रयाग आगमन हुआ था, उनके "मालतीमाधव" के कुछ अश श्रवण करने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ था। उनका उच्च कोटि का कवि होना उनकी रसीली रचनाओ से निर्विवाद निर्धारित है। जब तक ससार मे हिन्दी भाषा का अस्तित्व है, सत्यनारायणजी की कविता का शिष्ट समाज मे दूसरे सत्कवियो की कविता के समान ही समादर रहेगा।

श्रीयुत लोचनप्रसाद पांडेय (बालपुर)

"आगरा पहुँचकर हम बड़ी कठिनाई से श्रीयुत कुंवर हनुमन्त सिंहजी रघुवंशी के निवासस्थल का पता लगा पाये । पहुँचते ही हमने प्रार्थना की कि कविरत्नजी के पुण्यदर्शन कराने की व्यवस्था होनी चाहिये । कुवरजी महोदय ने हमारी विनती पर उचित ध्यान दिया। रात्रि को कोई सात बजे कविरत्नजी ने हमारे डेरे पर पधारकर हमे कृतार्थ किया। दिव्य दर्शन हुए---खूब दर्शन हुए। नेत्र शीतल और पवित्र हुए । उनकी सादगी, सरलता, सहृदयता और शीलता देखकर हम आश्चर्य्य और हर्ष-मुग्ध हो रहे ।

जब जबलपुर- सम्मेलन मे कविरत्नजी के दर्शन न हुए थे तब हम बड़े निराश हुए थे कि अब उनके कोकिलकलकंठ के कलित गान श्रवण का सुयोग प्राप्त करना कठिन है। पर वह हमारी निराशा जाती रही। किंचित काल सामान्य शिष्टाचार की बाते होती रही । फिर तो हमें अर्ध-निमीलित नेत्र, चित्ताकर्षक मुखाकृति एवं हर्ष मुद्रा सयुक्त एक नितान्त हिन्दू वेशभूषाधर सज्जन की स्वर माधुरी ने मंत्रमुग्ध-सा बना दिया। उस विविध भाव परिपूरित उदात्त सरस काव्यामृत के सहित आल्हाद-दायिनी नाद लहरी हृदय एव कर्णकुहर को एक साथ झंकारित करती हुई अभूतपूर्व सुखानुभव कराने लगी । हमने अपने को धन्य एवं भाग्यवान जाना । स्वरचित सङ्गीत को ऐसे सुस्वर एव सफलता से गायन कर सकने की कला प्राप्त करने पर हमने कविरत्नजी को बधाई दी; क्योंकि यह बात किसी बिरले भाग्यधर के भाग्य मे ही घटित होती है । अस्तु, दो घंटे का समय कहते-कहते बीत गया। हम बाहर फाटक तक कविरत्न को पहुँचाने गये । उनका वह अमृतमय मधुर ब्रजभाषा--भाषण तथा गाढ़तर स्नेहालिङ्गन आजन्म हम नहीं भूल सकते। × × × दूसरे दिन कोई ९ बजे हम लोगो का पुनर्मिलन हुआ । नाना प्रकार की साहित्य-चर्चा हुई। खड़ी बोली, ब्रजभाषा, आधुनिक गद्य-साहित्य; पद्य-साहित्य सुरुचिपूर्ण सङ्गीत आदि पर

बाते होती रही । फिर कविरत्नजी हम लोगो को अपने आगरे के 'विश्राम-निलय' के दर्शन कराने ले चले । वहाँ भी अमित आनन्द रहा । कविता-पाठ, सङ्गीत-गान, काव्य-समालोचना क्रम-क्रम से सब का आदर हुआ। स्वअनुवादित "मालतीमाधव" नाटक के उत्तम स्थलो के अनुवाद आपने पढकर सुनाये । स्वरचित पुस्तक तथा "चतुर्वेदी" की एक जिल्द और कुछ प्रतियां उपहार मे प्रदान करने की कृपा की । हमारे लिये स्नान का समय टाल दिया, "भोजन पीछे होता रहेगा' यह कहकर हमे कथारस मे प्लावित रखा। कहाँ तक कहे हमारे जैसे सामान्य व्यक्ति के प्रति प्रथम साक्षात् के समय ही जैसी आत्मीयता और विमल बन्धुता-पूर्ण प्रेम-भावना का परिचय उन महान् आत्मा ने दिया वह उनके स्वर्ग-सुलभ मानव-दुर्लभ स्वभाव एवं देवत्व का पूर्ण परिचायक है ।

उनसे विदा होकर हम लोग अपने वास-स्थलपर तो आ गये पर मन यही चाहता था कि कविरत्नजी के साथ हम कुछ काल और रहते एवं उनके 'धाँधूपुरा' तथा कालिन्दी-कलस्थ, कीर-कोकिल केका केकी के कलगान से मुखरित सुरम्य कुज-पुंज तथा वनकानन के दर्शन मे अपूर्व आल्हाद लहते । पर वह सुयोग अब कहाँ !"

श्रीयुत भवानीशंकर याज्ञिक, भरतपुर

कविरत्नजी साँस के रोग से पीडित थे ओर अपनी चिकित्सा कराने के लिये ही काकाजी(पूज्यपाद पडित गयाशकरजी बी० ए०) के आग्रह से भरतपुर आये थे। उन दिनो उनकी दशा बहुत शोचनीय थी । महीनों से खाँसी के कारण रात को सोये नही थे । कविरत्नजी नीद न आने के कारण अपना मन कविता-गान मे लगाया करते थे । लगभग रातभर उनका जागरण-सा हुआ करता था । इस जागरण को कविरत्नजी 'नाइट स्कूल' कहा करते थे। उनका इलाज भरतपुर मे वैद्य विहारी लालजी तथा डा० ओकारसिहजी ने किया था। परन्तु परिणाम सन्तोषजनक नही हुआ। अन्त में एक महात्मा ने कविरत्नजी को बबूल की छाल तथा उसके

गोंद की एक दवा बताई जिससे उन्हे शीघ्र ही आश्चर्यजनक लाभ हुआ। इस ओषधि की कविरत्नजी बहुत बडाई किया करते थे। यहाँ तक कि इसे उन्होने प्रयाग से प्रकाशित होनेवाले 'विज्ञान' पत्र मे भी छपवा दिया था। एक दिवस तो बबूल के गुण-गान मे निम्नलिखित दोहा भी बनाकर मुझे दिया था—

कीकर तू कण्टक सहित, पर गुन गन भरपूर!
निज पञ्चाङ्ग प्रभावसो, करत रोग सब दूर॥

उनको गुजराती भाषा-साहित्य और भोजन बहुत रुचिकर था। जब हममे से कोई उनसे ब्रजभाषा मे बोलता तो कविरत्नजी हमको गुजराती बोलने को बाध्य करते थे। उन्होने गुजराती बोलना कुछ-कुछ सीख भी लिया था। मेरे एक गुजराती पत्र का उत्तर कविरत्नजी ने गुजराती-मिश्रित खडी बोली मे दिया था। सेन्टजान्स कालिज के प्रोफेसर श्रीयुत कान्तिलाल छगनलाल पण्डया ने उन्हें उत्तर रामचरित का द्विवेदी मणि-भाई नमुभाई बी० ए० कृत गुजराती भाषान्तर भेट किया था, जिसको उन्होने गुजराती भाषा सीखने के लिये भरतपुर में कई बार पढा था। नागरी लिपि मे प्रत्येक अक्षर पर एक आड़ी लाइन लिखनी पड़ती है जिससे कविरत्नजी बहुत घबराते थे। इसी कारण उन्होंने गुजराती लिपि सीखी। "मालतीमाधव" के अनुवाद के छन्द उन्होने संस्कृत "मालती-माधव" की पुस्तक के कोने पर लिखे है उसकी लिपि गुजराती मिश्रित नागरी है।

पूज्यपाद काकाजी उनके विवाह से सन्तुष्ट न थे। काकाजी ने कवि-रत्नजी के अन्य मित्रो को भी यह सम्बन्ध तोड़ने के लिये बाध्य किया था; परन्तु सब व्यर्थ हुआ! जब सम्बन्ध पक्का हो गया था तब काकाजी ने उन्हे पत्र द्वारा यह दोहा लिख भेजा था—

जान-बूझ अजुगत करे, तासों कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहे, कैसे ताहि जगाय॥

(वृन्द)

इसके उत्तर मे कविरत्नजी ने केवल यही लिखा—'आप सकुटुम्ब पधारकर विवाह की शोभा बढावे और जान-बूझ अजुगत का स्वाभाविक परिणाम आप स्वयम् देखे। (शब्दान्तर सम्भव है, पर अर्थान्तर नही) यह लिखना व्यर्थ है कि वह अपने विवाह से सुखी नहीं हुए। एक बार उन्होने आगरे मे मुझसे कहा था कि अब मै भरतपुर जाने मे सकुचाता हूँ। इसके पश्चात् एक दिवस दीग मे अचानक काकाजी से उनकी भेट हो गई।

विवाह हो जाने के बाद वे श्री गिरिराज की परिक्रमा के लिये हर पूर्णिमा को जाया करते थे। यह उनको बीमारी की मनौती के लिये करना पड़ा था। काकाजी ने मुँह छिपाते थे। परन्तु एक बार गोवर्धन से सत्यनारायण दीग पहुँचे। मेरे काकाजी उन दिनो वही पर नाजिम थे। मिलना पडा। काकाजी को देखते ही लज्जा, पश्चात्ताप आदि के कारण वे एकादम रो पडे।

भरतपुर मे राज्य-भर मे सर्वत्र हिन्दी-पुस्तको की खोज की गई थी। उनमे कई नवीन और अलभ्य पुस्तको का पता चला था। इसमे काकाजी को कविरत्नजी से बहुत सहायता मिली। यथार्थ मे उन ग्रन्थो के पढने से उनकी कविता-शक्ति बहुत बढ गई थी। इस बात को उन्होने कई बार स्वीकार भी किया था। काकाजी की इच्छा थी कि 'भरतपुर-राज के कवि' नामक एक पुस्तिका कविरत्नजी की सहायता से बनाई जाय। उन्होंने "मालतीमाधव" का अनुवाद मुख्यतः भरतपुर ही मे किया। कभी-कभी किसी श्लोक मे जो कठिनता प्रतीत होती थी वह राज पण्डित श्रीयुत गिरिधारीलालजी से पूँछ लिया करते थे। 'मालतीमाधव' के अनुवाद में उन्हे कविवर सोमनाथ कृत 'माधव-विनोद' से बहुत सहायता मिली थी। इस बात को कविरत्नजी ने स्वयम् "मालतीमाधव" की भूमिका मे लिखा है। शोक की बात है कि राज-कवि सोमनाथ कृत "माधव-विनोद" का कविरत्नजी की मृत्यु के बाद से पता नही! यह अलभ्य ग्रन्थ पंडितजी की निजी पुस्तको के साथ था और वही से लापता है। उनकी अकाल मृत्यु के कारण 'भरतपुर राज के कवि' शीर्षक पुस्तक अधूरी ही रह गई है।

एक बार हम लोग कविरत्नजी को यज्ञोपवीत के एक उत्सव में अनूपशहर (जिला बुलन्दशहर) मे गङ्गा-तट पर एक रम्य स्थान मे ले गये थे। यह बात १९१५ ई० (फर्वरी) की है। वहाँ अतिथि-स्वागतार्थ निम्नलिखित अड़िल्ल छन्द की गुजराती कविता पढ़ी गई थी--

महमानो ओनहाला पुन. पधार जो।
तम चरणे अम सदन सदैव सुहायजो॥
करजो माफ हजारो पामर पाप जो।
दिनचर्य्या-माँ प्रभु पासे पण थाय जो॥
उन्नति-गिरिश्रृङ्गोना बसनारात मे।
उतस्या रङ्क ग्रहेशो पुण्य प्रभाव जो॥
शुश्रूषा सारी ना हमने आवडी।
लेश न लीधो ललित उरो नो लाभ जो॥

इसके उत्तर के लिये उनसे आग्रह-पूर्वक प्रार्थना की गई। कविरत्नजी ने इसका उत्तर इसी छन्द मे बनाकर गुजराती की गरबी चाल पर गाया। उनका उत्तर सरसता तथा मधुरता से पूर्ण है।

सुजन सदाही दया स्वजन पर कीजियो।
जोरि जुगल कर माँगत यह वर दीजियो॥
प्रिय प्रेमीले बड़े आप सरदार हो।
उच्च विचार सुसज्जित परम उदार हो॥
करी हमारी जो शुश्रूषा है घनी।
किन्तु तुम्हारी हम पै नहि सेवा बनी॥
लहि गङ्गा को तीर भुवन मन-मोहिनो।
प्रकृति-छटा मन-भावन पावन सोहिनो॥
बड़ी असुबिधाएँ जो जो तुम्हने सही।
दे कोटिन धनबाद उऋण तोऊ नही॥
हम लोगन की लीला चित न बिचारियो।
आप बड़े सत अपनी ओर निहारियो॥

इसका उन्होंने गुजराती-अनुवाद भी कर दिया था जो बहुत कुछ अशुद्ध था। आपके जानने के लिये दो-चार शुद्ध चरण, जो मुझे याद है, लिखे देता हूँ।

प्रिय प्रेमीला पूज्य आप सरदार छो"
उच्च विचार सुसज्जित परम उदार छो।
आज हमारी कीधो शुश्रूषा घणी।
किन्तु न हम थी किंचित तम सेवा बणी॥

मुझको भी कविता मे कुछ रुचि है और मैने सत्यनारायणजी से कई बार कविता सिखाने के लिए प्रार्थना की; किन्तु उन्होंने मुझसे यही कहा कि कविता के कुचक्र मे पडने से कालिज की पढाई को बहुत क्षति पहुँचती है। वे अपने बी० ए० की परीक्षा मे अनुत्तीर्ण होने का यही कारण बताया करते थे।

अधिक क्या लिखूँ?

कविता कानन ललित कुजकी कोकिल प्यारी।
कलित कठ की कल-कल कूक सुकवि मुदकारी॥
ललित कबित की लता लहलही नित लहराती।
रचना चारु विचित्र महक मंजुल महकाती॥
ब्रजभाषा मधु मधुर मत्त मधुकर सुखदाई।
नवजीवन की जग मे जगमग ज्योति जगाई॥
हिन्द भाल की बिन्दी हिन्दी मात दुलारे।
काव्य रतन-गर्भा के शुचि कविरतन पियारे॥
जाहि 'सूर' ने नवरस जलसों स्नान करायो।
'हरिश्चन्द्र' जहि रुचिकर चन्दन चारु लगायो॥
गङ्ग नीर को अर्घ्य देय जहि 'गङ्ग' रिझायो।
जाकी षोडश पूजा करि 'केशव'* सुख पायो॥

'नन्द' 'बिहारी' 'भूषण' भूषण साज सजायो ।
जिन पद पदमनि 'तुलसी' तुलसी दलहि चढायो ।।
जिह कर 'पदमाकर' निजकर आरती उतारी ।
ता ब्रजबाणी देवी के तुम गुणी पुजारी ।।
सुन्दर सरल सुभाव सुधासम रस बरसायो ।
कपट कुटिलता-हीन प्रेम-पूरित मन पायो ।।
हिन्दी हित निष्कपट कठिन शुभ काज तिहारो ।
प्रेरत हिन्दी प्रति नित चञ्चल चित्त हमारो ।।
शुचि आदर्श तुम्हारो काज हमारे सारें ।
हिन्दी प्रति हमहूँ निज तन मन धन सब वारें ।।
जगव्यापी जीवन-रण महँ हम विजयी होवे ।
दुखित दीन बल-हीन छीन हिन्दी दुख खोवें ।।

श्रीरामनारायण चतुर्वेदी बी० ए० (प्रयाग)

"मुझे सत्यनारायणजी का दर्शन बन्धुवर श्रीअयोध्याप्रसादजी को कृपा से हुआ था । माई थान नामक मुहल्ले मे एक बड़े योग्य महात्मा सारस्वत ब्राह्मण, जिनका नाम सोहनजी था, रहा करते थे । उनके पौत्र पं० ब्रजनाथ शर्मा सत्यनारायणजी के परम सुहृद थे । सोहनजी एक तरह के त्यागीजन थे । उनपर लोगों का बड़ा विश्वास था । आदमी गम्भीर और विचारवान थे । उनके दर्शन के हेतु मै प्रायः जाया करता था । वहाँ सत्यनारायणजी से भेंट हो जाया करती थी । सत्यनारायणजी का काव्य-प्रेम देखकर उनसे मेरी विशेष प्रीति उत्पन्न हो चली । जब कालेज से उनको अवकाश मिलता वे कृपा किया करते थे और वार्तालाप का आनन्द रहता था । जब कभी वे आते, कविता-सम्बन्धी विषयो पर वार्ता करते थे । पं० श्रीधर पाठक के "ऊजड़ग्राम" और 'एकान्तवासी योगी' की जो प्रशंसा फ्रैडरिक पिनकाट ने की थी, उसपर हँसते थे और उनके निर्मित 'धन विनय' की बड़ाई करते थे । सत्यनारायणजी ने "ऊजड़ग्राम" की अँग्रेजी पंक्तियो का थोड़ा-सा

अनुवाद करके मुझे सुनाया भी था जो किसी प्रकार न्यून न था। तब हमने उनसे निवेदन किया कि जिसका एक अनुवाद हो चुका है उसमें श्रम न करके मेकाले के Lays of ancient Rome का अनुवाद कीजिये। सत्यनारायणजी ने यह संकल्प ठाना और उसे पूर्ण भी किया। वह इस समय एफ़० ए० में पढ़ते थे और मेकाले की 'हारेशस' नामक पुस्तक उनके पद्य-प्रकरणों में थी। उसी का अनुवाद उन्होंने किया था। उनके संस्कृत के कोर्स में कालिदास का रघुवंश भी था। उसके द्वितीय सर्ग के कुछ पद्यों का अनुवाद उन्होंने मुझे सुनाया था जो अच्छा था। "श्यामाय मानानि वनानि पश्यन" वाले श्लोक का अनुवाद जो उन्होंने किया था, ठीक न था। उसपर मैंने तीव्र आलोचना की। तब उन्होंने दूसरे प्रकार से यथार्थ अनुवाद किया। × × एक पुस्तक मैंने लिखी थी जिसका नाम था 'कामिनी क्रन्दन' उसकी इस पंक्ति पर वह बहुत प्रसन्न हुए थे—

"रूपवती, पर्वती, सती युवती एक नागर।
नेहनटी पतिहटी, लठी, झटपटी मिटी मर॥"

इसमें एक पंक्ति का अनुवाद उक्त कवि ने इस प्रकार किया था—

"का तोऊ सों अधिक होति, उर ज्वाल हमारे।"

सत्यनारायणजी के अवसान पर क्या कहा जाय!

"बाग़े अलम में उगा था,
कोई नख्ले उम्मेद।
और यास ने काट दिया,
फूलने-फलने न दिया॥"

स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी

"मेरा सत्यनारायणजी का परिचय पहले पहल सन् १९०९ में हुआ था। एक दिन जब मैं प्रयाग में था, घूम कर, सायंकाल के समय, गृह पर आया तो निम्नलिखित शब्द एक स्लिप पर लिखे हुए मिले—

'निरत नागरी नेह रत रसिकन ढिग विश्राम ।
आयो तुव दरसन करन सत्यनरायन नाम ।।

रात-भर दर्शन की बड़ी अभिलाषा रही । प्रातःकाल आप फिर पधारे, तब से अन्तकाल तक उनकी कृपा मुझ पर बनी रही । इतना अधिक माधुर्य्य किसी भी आधुनिक कवि की रचना मे मैने नही पाया और न इतनी शीघ्रता से इतनी अच्छी कविता करते मैने और किसी को देखा है । × × × ब्रजभाषा का इतना प्रतिभाशाली कवि शीघ्र फिर कोई होगा इसमे सन्देह मालूम होता है । जब कभी आप खडीबोली की ओर झुकते थे मुझे बडा बुरा मालूम होता था । कारण यह था कि खड़ीबोली के अनेक तुकबन्द है लेकिन ब्रजभाषा के वे ही अकेले आधार और कर्णधार थे'' ।

श्रीयुत कन्नोमल एम्० ए० जज (धौलपुर)

''सत्यनारायणजी से मेरा खूब परिचय था । वह मुझ पर बड़ी कृपा करते थे । जब कभी नयी कविता तैयार करते तो मुझे सुना देते थे । कभी-कभी तो सुनाने के लिये धौलपुर तक आने का कष्ट उठाते थे । पंडितजी बड़े सज्जन थे । उनकी सादगी पर सभी मोहित थे । उनकी कविता बड़ी सरस और मनोहर होती थी । उनके सुनाने का ढङ्ग निराला था । आप ऐसे शान्त स्वभाव और उदारचित्त थे कि कभी किसी की बात पर नाराज़ नहीं होते थे और न आपको कभी किसी की शिकायत करते सुना गया । आप सदैव प्रसन्नचित्त रहते थे और जिस समय किसी के समीप जाते तो उसको आनन्दमय कर देते थे । देहावसान के थोड़े दिन पहले पंडितजी एक प्रिय मित्र के साथ आये थे । ''मालती-माधव'' नाटक के अनुवाद करने मे उन्हे जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था उनका हाल कहते थे । मैं उस समय अंग्रेज़ी के प्रसिद्धकवि शैली की Adonis नाम की कविता पढ रहा था, जो बड़ी प्रभावशाली और सारगर्भित है । मैने पंडितजी का ध्यान इस कविता की तरफ़ दिलाया और कहा कि यदि

आपको समय मिले तो इस कविता का हिन्दी-अनुवाद कर दें। पंडितजी ने बड़े प्रेम से कहा कि मै इसके अनुवाद करने की यथाशक्ति चेष्टा करूँगा। मैंने आपको वह पुस्तक दे दी और पूर्ण आशा थी कि पंडितजी उसका थोड़े काल मे ही अच्छा छन्दोबद्ध अनुवाद करके हिन्दी-साहित्य के भण्डार की बृद्धि करेगे; पर दैव से किसी का वश नही है। पडितजी का शरीर ही नही रहा!"

श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, आयुर्वेद-पंचानन सम्पादक-सुधानिधि (प्रयाग)

"पण्डित सत्यनारायणजी का मेरा प्रथम परिचय कदाचित् सवत् १९६७ मे हुआ था। पडित केदारनाथ भट्ट यहाँ बी० ए० की परीक्षा देने आये थे, सत्यनारायणजी भी उन्ही के साथ थे। उस समय वे कदाचित् एफ० ए० मे पढते थे। उनके सादे वेष को देखकर मुझे अनुमान भी नही हुआ कि ये अंग्रेजी पढते अथवा जानते होगे। केदारनाथजी ने आपका परिचय कराया और आपने भी अपना "भ्रमरदूत" और कुछ स्फुट कविताएँ सुनाकर आल्हादित किया। तभी मे उनके साथ मेरा मैत्रीभाव और स्नेह-सम्बन्ध दृढ हो गया। इसके बाद एक बार वे अकेले उसी वर्ष मे मिले। उस समय मै मकान के ऊपरी भाग मे था। यह दोहा लिखकर आपने अपने आगमन की सूचना दी।

"निरत नागरी नेह रत, रसिकन ढिंग विश्राम।
आयो हौ तव मिलन को सत्यनरायन नाम॥"

प्रयाग मे द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समय वे प्रयाग पधारे और अपने साथी मित्रो के अनुरोध से उन्होने सम्मेलन के सम्बन्ध मे पिछली रात मे ही कुछ कविता तैयार की थी। दूसरे सम्मेलन के कार्य्यकर्ताओ ने उसे पढा न था और न पढ सकने का अवसर था। कविता पेंसिल से काट-कूट के साथ ऐसी लिखी हुई थी कि वे ही उसे पढ सकते थे। इसीलिये सम्मेलन के कुछ कार्य्यकर्ता उसे पढने देने पर सहमत न थे, क्योंकि उस समय

तक आपका नाम भी सभी लोगो पर प्रभाव के साथ परिचित न था। उस समय मैंने अपने उत्तर-दायित्व पर बाबू पुरुषोत्तमदासजी से आग्रह कर कविता पढ़ने की आज्ञा दिलायी। कविता आरम्भ करते ही सबका सन्देह दूर हो गया। पहले कविता के सम्बन्ध मे जिन्हे सन्देह था वे तथा अन्य उपस्थित सज्जन वाह-वाह करने लगे। फिर तो धीरे-धीरे आपकी कविता का आदर इतना बढ़ा कि आप राष्ट्रीय कवि माने जाने लगे।

द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ ही २६ सितम्बर से प्रयाग में तृतीय वैद्य-सम्मेलन हुआ था। उसमे भी आपने स्वागत सम्बन्धी कविता पढ़ी थी। कौशल से उसमे सभापति कविराज गणनाथ सेन, स्वागत-सभापति पंडित शिवराम पाडे और मंत्री प० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का नाम सन्निवेशित कर दिया था। कविता लोगो को बहुत प्रिय हुई। आपके नाम के साथ कविरत्न शब्द लगे रहने से बहुतो को यह बोध हुआ कि आप बगाल के कविराजो के समान 'कविरत्न' उपाधिधारी वैद्य है। इसलिये आपके लिये सभापति बनाने के लिये कई सज्जनो की चिट्ठियाँ अगले वर्षो मे आईं। मथुरा के पंचम वैद्य-सम्मेलन के समय जब मैने आपसे इस बात का जिक्र किया तब आप बहुत हँसे। प्रयाग के वैद्य-सम्मेलन के समय की एक बात मुझे अब तक नही भूली है। यद्यपि उस पर आजकल के लोग हँसेगे; किन्तु मैं उसे लिख देना आवश्यक समझता हूँ। जिस समय आप अपनी स्वागत की कविता पढ रहे थे और लोग तन्मय होकर सुन रहे थे उसी समय जब इस पद का आरम्भ हुआ कि "शकर दाजी शास्त्रि पदे की मुदित आतमा प्यारी। देखहु वह आशीश देति है पुलकित तन बलिहारी" और लोगो ने इसे फिर दुहराने के लिये कहा, उसी समय सभा में एक सर्प निकल पड़ा। उसके निकलते ही खलबली मच गई। किन्तु सर्प एक ओर गोडरी मार कर स्थिर भाव से फन निकाल बैठ गया। किसी ने कहा स्वयं स्वर्गवासी शकर दाजी शास्त्री पदे है, किसी ने कहा चरक भगवान है। जो हो, किन्तु जब तक यह पूरी कविता समाप्त नही हुई तब तक वह सर्प वही स्थित रहा और ज्योही कविता समाप्त होगई, त्योही वह भी एक ओर खिसक गया!

मथुरा के वैद्य-सम्मेलन के समय हिन्दी-साहित्य के प्रेमियो और सेवको का भी एक छोटा दल उपस्थित हो गया था। कविरत्न सत्यनारायणजी, नवरत्न पं० गिरिधर शर्मा झालरापाटन, अधिकारी जन्नाथदास विशारद, गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्य, प० नन्दकुमारदेव शर्मा तथा पडित लक्ष्मीधर वाजपेयी प्रभृति मुझ पर कृपा कर उपस्थित हुए थे। इन सबो के कारण एक दिन दो घटे के लिये यह मालूम होने लगा कि यह वैद्य-सम्मेलन नही बल्कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन हो रहा है। × × × उस समय आप का स्वास्थ्य बहुत बिगडा हुआ था। अपने गुरू की सम्पत्ति के अधिकारी होने के सम्बन्ध मे आप जो मुक़द्दमा लड रहे थे उसकी दौड़-धूप के कारण आप को स्वास्थ्य से हाथ धोना पडा था। मैने उस समय उन्हे सम्मति दी थी कि आप यदि विवाह कर ले तो आपके स्वास्थ्य मे उन्नति हो सकती है। उस समय तो यह बात हँसी मे उड़ा दी थी किन्तु एकाध पत्र मे भी जब मैने यही बात लिखी तब आपने मुझ से कहा था कि एक बार स्वास्थ्यसम्पन्न हो जाने पर यह हो सकता है। मैं नही कह सकता कि विवाह करने के सम्बन्ध मे मेरा कथन भी किसी अंश मे कारणीभूत हुआ था या नही। विवाह के पश्चात्, केवल एक बार मेरी उनसे मुलाकात हुई थी। इन्दौर के साहित्य-सम्मेलन मे न पहुँच सकने के कारण उनकी अन्तिम कविता उन्ही के मुख से सुनने का सौभग्य प्राप्त न हो सका। उनका स्वभाव जो सर्वश्रुत था, उसका मुझे भी अनुभव है। उनका स्वभाव सरल था, बर्ताव पूर्ण सभ्यता-युक्त था। बात करने का ढङ्ग मनोहारी था और मित्रो के साथ वे निष्कपट प्रेम करते थे। साधारणत· हँसी-मजाक करने पर आप केवल मुस्करा देते थे और कभी-कभी मीठी चुटीली बात उत्तर मे सुना कर चुप हो जाते थे। किन्तु काव्य की आलोचना होने पर, विशेषकर व्रजभाषा पर कुटिल आक्षेप होने पर, आप क्रोध के मारे आपे से बाहर भी हो जाते थे; किन्तु अपने आलोचक से कभी अभद्र व्यवहार नही करते थे। आपकी कविता मधुर, रसीली, चुटोली, भावपूर्ण और ऊँचे तथा सरल हृदय के उद्गारो से पूर्ण रहती थी। व्रजभाषा मे होने से वह अधिक कर्ण-सुखद हो

जाती थी। किन्तु सबसे बढकर आपका कविता पढने का ढंग अपने निज का और आकर्षक था। आपकी कविता आपके मुख से ही सुनने पर उसका आनन्द कई गुणा अधिक हो जाता था। आपकी कविता सच्चे हृदय मे निकलती थी, इसीलिये हृदय मे स्थान कर लेती थी।''

श्रीयुत शालग्राम वर्म्मा (अलीगढ)

'कविरत्न पडित सत्यनारायणजी से कई अवसरो पर साक्षात् कार हो जाने के पश्चात् १९११ मे एक बार प० बदरीनाथ भट्ट के यहाँ मेरा उनसे पूर्ण परिचय हुआ। इसी दिन से हम लोग एक-दूसरे को अधिक जानने की चेष्टा करने लगे। प्राय शाम को जब मै, कुँवर नारायणसिह तथा प० बदरीनाथ भट्ट टहलने जाते तो पडितजी की तथा व्रजभाषा के अन्य कवियों की कविताओ की हास्योत्पादक समालोचना किया करते थे। पर जैसे-जैसे पंडितजी की कविताएं मै अधिक सुनने लगा मैं उस ओर आकर्षित होने लगा और कुछ दिनों मैं इस ठठोल-मंडली का उदासीन मेम्बर रहा। अब भट्टजी की वर्षा मुझ पर भी होने लगी और मै सत्यनारायणजी का साथो बताया जाने लगा। इसी प्रकार कुछ दिन हुए थे कि पंडितजी को दमा का रोग हो गया और वह बड़ी भयानक अवस्था पर पहुँच गया। कभी-कभी हम लोग धाधूपुर भी जाते थे। पडितजी के अच्छे होजाने पर हम लोगो ने धाँधूपुर जाना कम कर दिया। इसके पश्चात् जब उनका उत्तर रामचरित भट्टजी के प्रेस मे छपने लगा तो स्वयं दोपहर को भट्टजी के यहाँ आने लगे।

इन दिनों वे प्राय घोड़े पर छाता लगाकर आया करते थे और हम लोग उनके घोड़े पर अनेक हास्योत्पादक तुकबन्दियाँ किया करते थे। 'खड़ी बोली' और 'पड़ी बोली' की खूब भरमार होती थी।

भैया सत्यनारायण की सौम्यमूर्ति छोटे-से लाल टट्टू पर विराजमान तथा सफेद कपड़ा चढा पुराने ढँग का छाता लगाये हुए इस समय भी मेरे

नेत्रो के सामने है । हम लोग इस विषय मे उन्हे बहुत कुछ कहते थे, पर वे तो सरलता की मूर्ति थे, हँसकर चुप हो जाया करते थे । वे बेहद भोले थे और हम लोगो पर पूर्ण विश्वास रखते थे । प्राय धूप मे गॉव से चलकर आने से उनके सिर मे पीडा हो जाती थी । इस अवसर पर जब हमलोग भट्टजी की बैठक मे लेटे होते थे तो भट्टजी सिर का दर्द दूर करने के बहाने उनसे तरह-तरह की कवायद कराया करते थे और पडितजी भी, जैसा उनसे कहा जाता, वैसा करने के लिये तैयार हो जाते थे । कभी उन्हे आँख मीचकर लेटाया जाता था तथा उनके माथे पर हाथ फेरकर भट्टजी बड़ी गम्भीरता से ''छू-मतर'' पढते थे । कभी मेस्मरेजम द्वारा उनका दर्द दूर किया जाता था । पर थोडी देर इन सब क्रियाओ के हो जाने के बाद उनसे जब पूँछा जाता—अब आपके सिर का दर्द कैसा है ?'' तो उनका यही उत्तर होता था—''अब तो नही मालूम होता है ।'' उनकी सरलता के अनेको उदाहरण है । जिसने उन्हे एक बार देखा वह उनकी सरलता तथा निष्कपट भावना से आकर्षित हुए बिना नही रह सका । उनके सारे जीवन का रहस्य उनकी सरलता तथा प्रेम था ।

भरतपुर मे जब वहाँ की हिन्दी-साहित्य सभा का वार्षिक अधिवेशन हुआ था, मै तथा कुँवर नारायणसिह पण्डितजी के साथ थे । हम लोग एक ही जगह रहे और रात को उनके बहुत हठ करने पर भी उन्ही के पास सोये । इस समय भी उनको दमे से कष्ट था और वे रात को पेट के बल सोया करते थे तथा प्राय सारी रात उन्हे खाँसते बीतती थी । इसी कारण उन्होंने हम लोगो से अपने पास न लेटने देने की हठ की थी । इसी रात को एक घटना यह हुई कि पण्डितजी के बार- बार खाँसने से ग्वालियर से आये हुए कुछ प्रतिनिधियो की नीद मे खलल पड़ा और जब वे इस विषय की शिकायत आपस मे करने लगे और पण्डितजी के भी कानो मे यह भनक पड़ गई तो आपने कविता सुनाना शुरू किया । इस पर वे लोग सोना भूलकर हम लोगो के बिस्तरे पर उठ आये और पंडितजी से और भी कविता सुनाने के लिये प्रार्थना की । इसके पूर्व हम लोग सो रहे थे । जब कविता

पाठ होने लगा तो हम भी जाग गये । उन प्रतिनिधियो के चले जाने के बाद पडितजी ने हँसते हुए 'कविता कुत्ती' को फटकारने की यह घटना हमे सुनाई ।

एक बार आषाढ की पूर्णिमा पर मैने उनसे बहुत आग्रह किया कि आप गोबर्द्धन मे गङ्गा स्नान के लिये मेरे साथ चलिये । अधिकारी जगन्नाथ दास भी हमारे साथ जाने को राजी हुए; पर अन्त मे ये किसी कारण से न जा सके और मै तथा पडितजी ही चल पड़े। उस समय आपने अधिकारीजी के विषय मे एक मजेदार पद्य लिखा था । वह यह था —

"तुम्हे शतशः धिकार ।
तिरस्कार के योग्य आप हो अबसे सकल प्रकार ।।
इक्के को छुड़वाया हमसे देकर धोखा भारी ।
प्रण पूरा न किया पुनि तुमने इसी योग्य अधिकारी ।।
देकर हमको धोखा ऐसा क्या फ़ाइदा उठाया ।
वहाँ ठहर क्या अडा सेया कैसा चित भरमाया !!
पुण्यतीर्थ को छोड़ वृथा ही कोरा क्लेश कमाया ।
चमचीचड़ चमगद्दड़ तुमने इसको वृथा सताया ।।
कारण लिखिये ठीक अगर हो क्षमा- प्राप्ति की आशा ।
नहि तो रसिया गाते फिरिये लिये हाथ मे ताशा ।।"

हम लोग रात को मथुरा में भरतपुर की विकालत में ठहरे और सबेरे ही स्नानकर गोबर्द्धन चल दिये । वहा पहुँचकर पंडितजी ने पुनः स्नान किया और परिक्रमा करने के पश्चात् हम लोगो ने गिरिराज के दर्शन किये । मेरे पिताजी ने पंडितजी से कहा था कि वे गिरिराज महा-राज से प्रार्थना करे तथा इस अवसर पर प्रतिवर्ष वहाँ आकर दर्शन और परिक्रमा करे तो उनका दमा जाता रहेगा । पंडितजी ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ गिरिराज के दर्शन कर यही प्रार्थना की और इसके बाद हम लोग घर लौटे । घर जाकर मेरी माताजी के बड़े आग्रह पर पंडितजी

ने डरते-डरते कलाकन्द और कलमी आम खाये। इसके पश्चात् दोपहर को भी बहुत कुछ डरते हुए भोजन किया। भोजन करने के पश्चात् वे सिर के दर्द की शिकायत करने लगे। मैंने उन्हे सो जाने की सलाह दी। प्राय: १ बजे पडितजी सो गये और ऐसे बेहोश सोये कि ५ बजे बाद उनकी नीद खुली। दमा होने के बाद उन्हे यह पहला ही अवसर था कि वे इस प्रकार बेहोश सोये हो। मुझे भी तथा उनको भी इस पर बड़ा आश्चर्य्य हुआ। इस समय गज और ग्राह की लड़ाई समाप्त हो चुकी थी। पडितजी को जब यह मालूम हुआ कि सो जाने के कारण उन्होने गज और ग्राह की लड़ाई नही देख पाई तो उन्हे खेद हुआ, पर जब उन्हे समझाया गया कि वास्तव में आज भगवान ने उन्हे दमा रूपी ग्राह से उबारा है तो उन्हे बडी प्रसन्नता हुई। इसके बाद हम लोग गोबर्द्धन की परिक्रमा को गये और रात को ब्यालू करके सो गये। उस दिन रात को भी पडितजी ऐसे बेख़बर सोये कि सबेरे ही उनकी आँख खुली। परमात्मा की कृपा से उनकी दमा की बीमारी दूर हो गई और पडितजी को यह विश्वास हो गया कि गिरिराज महाराज की कृपा से ही उन्हे आरोग्य प्राप्त हुआ इस घटना के पश्चात् सत्यनारायणजी प्रतिवर्ष आषाढ की पूर्णिमा पर गोबर्द्धन जाकर स्नान-दर्शन तथा परिक्रमा किया करते थे।

अब कुछ मित्रो के आग्रह से सत्यनारायणजी विवाह के प्रश्न पर भी विचार करने लगे थे। आगरे मे गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा तथा चौबे अयोध्याप्रसादजी पाठक ने उन्हे इस विषय मे बहुत कुछ समझाया-बुझाया और हर तरह पर अकाट्य तर्कों द्वारा उन्हे निर्वाक करना आरम्भ किया। उधर श्रीयुत मुकुन्दराम (पडितजी के श्वसुर) के चित्ताकर्षक पत्रो तथा कन्या के मनोमुग्धकारी गुणो के वर्णन ने पडितजी का भी चित्त स्थिर नही रहने दिया। पंडितजी की स्वाभाविक सरलता तथा निष्कपट व्यवहार ने अब उन्हे धोखा देना शुरू किया और वे इस समय डावाँडोल अवस्था मे रहने लगे। उनकी शारीरिक अवस्था के विचार से पंडित बदरीनाथ भट्ट, पं० मयाशङ्कर दूबे तथा मैं उनके विवाह-सम्बधी प्रस्ताव से असन्तुष्ट थे।

गोबर्द्धन के निकट श्री स्वामी हरिचरणदासजी एक महात्मा रहते है। वह भी पण्डितजी से बड़ा प्रेम करते थे। पंडितजी जब गोबर्द्धन जाते तो उनके दर्शन अवश्य करते और अपनी कविता उन्हे सुनाया करते थे। एक बार मैने पंडितजी के सामने ही उनके विवाह सम्बन्धी विचार स्वामीजी पर प्रकट कर दिये। स्वामीजी ने भी उन्हे विवाह करने से मना किया। दैवगति बड़ी प्रबल है। भोले-भाले सत्यनारायणजी बिमुग्ध हो गये और हम लोगो के बहुत कुछ समझाने पर भी न माने। इस पर असन्तुष्ट हो हम लोगो ने उनके विवाह मे न जाने की धमकी दी पर कुछ बस न चलते देख हम लोगो ने मौन धारण कर लिया। इस अवसर पर सत्यनारायणजी ने जिन शब्दो मे हम लोगो से क्षमा चाही वे बड़े ही हृदयग्राही तथा कारुणिक थे और हमको विवश हो, दु खित हृदय से, उन्हे विवाह कर लेने की अनुमति देनी पड़ी।

सत्यनारायणजो का विवाह हुआ; पर हम लोग अपने विचारानुकूल उसमें सम्मिलित नही हुए। मैने उन्हें जो बधाई सूचक तार भेजा था, वह यह है—

"Fair luck and fortune may on you attend it is the sincerest good wish of your loving friend"

विवाह से लौटने पर पंडितजी ने जो पत्र मुझे भेजा था उसकी नकल यह है——

भैया,

छमबहु सब अपराध हमारे।
हम है सदा कृतज्ञ तुम्हारे।।

"सत्य"

इससे पश्चात् मैंने कभी विवाह-सम्बन्धी विषय मे सत्यनाराणजी से बातचीत नहीं की तथा इसके बाद, खेद है कि, मैंने धाँधूपुर के भी दर्शन नही किये। एक बार अपनी स्त्री के बहुत आग्रह करने पर मैंने पंडितजी

से उनके विवाह के सम्बन्ध मे कुछ प्रश्न किये थे जिनका उत्तर उन्होने सन्तोष-प्रद दिया था। उस समय उनकी धर्मपत्नीजी को हिस्टीरिया के दौरे होते थे। पडितजी जानते थे कि मुझे इस बात से रज हुआ है कि उन्होने मेरा कहना नही माना, अत कई बार आगरे मे उन्होने मुझे इस विषय मे बहुत कुछ समझाया। मैने उनसे कहा कि मेरे हृदय मे इस विषय मे उनके प्रति कुछ भी ग्लानि नही है; पर मेरे इस कहने से उन्हे सन्तोष नही हुआ।

पडितजी ने मुझसे एक दिन गॉव चलने को कहा। मै उस समय एक निजी कार्यवश उन्ही के बुलाने पर आगरे गया हुआ था। चौबे अयोध्याप्रसादजी के यहॉ दो दिन इस अवसर पर मै रहा। जब मैंने गॉव जाने से मना किया तो पडितजी ने कहा—"अवश्य ही तुम मुझसे रूठे हुए हो जो गॉव नही चलते।"

अन्त मे इस विषय मे मुझे केवल यही लिखना पड़ता है कि भावी प्रबल होने के कारण ही पंडितजी ने हम लोगो की सम्मति कि अवहेलना की। इस विषय मे मुझे कोई ग्लानि नही है। हॉ, पश्चात्ताप अवश्य है और रहेगा भी।

मुझे कई एक ऐसे अवसरो का स्मरण है जब उन्हे कई सज्जनो की दो-एक बातो से क्षोभ हुआ था। परन्तु जब मैंने उनसे इस विषय मे कहा तथा उन सज्जनो की कड़ी आलोचना की तो उन्होने बडे मधुर तथा विनम्र शब्दो मे मुझे समझाया; पर मुझे उससे सन्तोष नही हुआ। परन्तु पंडितजी के उदार हृदय ने उन सज्जनो को तुरन्त क्षमा कर दिया और उन लोगो पर कभी यह प्रकट नही होने दिया कि उन लोगो ने पडितजी की आत्मा को दु:खित किया था। इस अवसर पर मै यह लिखे बिना नही रह सकता कि पंडितजी के मित्र कहलानेवाले कुछ सज्जनो ने अपनी सकीर्णता तथा क्षुद्रता का ऐसा परिचय दिया कि जिसका बडा भारी परोक्ष प्रभाव, पंडितजी पर पडा। अपने स्वर्गवास के कुछ मास पूर्व से ही उनको एक प्रकार का विराग-सा हो चला था। मैने अपने पत्रो में उन्हे इस विषय मे

समझाते हुए उनकी इस अवस्था को प्राय: "श्मशान-वैराग्य" लिखा था। इसके उत्तर मे पंडितजी ने एक बार लिखा था—'संभव है हमारा यह वैराग्य श्मशान मे ही समाप्त हो'। मुझे खेद है कि इस अवसर पर मै उनसे बहुत दूर था और भट्टजी भी प्रयाग मे थे, इसलिये हम लोग पडितजी के विचारों को पूर्णतया जानने मे असमर्थ रहे। पत्रो मे उन्होने इस विषय पर स्पष्टतया कुछ नही लिखा। इस विषय मे उनकी भाषा साकेतिक तथा मार्मिक हुआ करती थी जिसका गूढ अर्थ समझना मेरे लिये प्राय असम्भव था। इन पत्रो से यह अवश्य भासित होता था कि उनके हृदय पर किसी प्रकार का रंज है। पर कई बार लिखने पर भी मै इस रहस्य का उद्‌घाटन नही कर सका।

सत्यनारायणजी जहाँ अपने मुग्धकारी गुणो द्वारा जन साधारण के श्रद्धाभाजन और प्रिय थे वहाँ उनके साथ ही उनकी कविता के माधुर्य्य और लालित्य ने भी उन्हे इस कीर्ति के प्राप्त करने मे कम सहायता नहीं दी थी। सम्भव है कि मेरा लिखना इस विषय मे पक्षपातपूर्ण समझा जाय पर मै यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी के वर्तमान कवियों में स्वाभाविक कवि होने का गौरव उन्हे ही प्राप्त था।

सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आगरे पधारने के अवसर पर जो कविता पंडितजी ने लिखी थी और उसे सुनकर कवीन्द्र रवीन्द्र ने जिन शब्दो द्वारा पडितजी की रचना की प्रशंसा की थी वे शब्द किसी भी कवि के हृदय में गुदगुदी पैदा कर देते—और खासकर ऐसे अवसर पर, जब कि वे एक जगद्विख्यात कवि के हृदय से निकले हों।

कविरत्नजी ब्रजभाषा मे ही कविता नही करते थे, पर खड़ी बोली में भी लिखा करते थे। उनकी कविता में वह रस मौजूद है जिसे पढ़कर प्रत्येक कविता-प्रेमी के हृदय मे उनके लिये श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और उनके काव्य का मनन करने पर वह श्रद्धा बढती ही जाती है। पंडितजी का काव्य सर्वथा निर्दोष न होने पर भी उच्च कोटि का है। खेद है कि उनके सब बड़े ग्रन्थ अनुवाद-ग्रंथ है। पर तो भी इस त्रुटि तथा परिमित अवस्था

का विचार करते हुए यह कहने में कोई अत्युक्ति नही कि पंडितजी ने अपने कवित्व द्वारा अनुवाद-नीरसता की बहुत कम झलक अपने ग्रन्थो में आने दी है।

उनकी कविता हृदयग्राही, ओजस्विनी तथा अलंकार-युक्त होने पर भी स्वाभाविकता से कम गिरने पाती थी। उनके भाव-वैचित्र्य तथा वर्णन-शैली का बडा गहरा प्रभाव पड़ता था। इनके लेखों मे व्यक्तित्व का आभास मौजूद है। पडितजी के गद्य लेख भी अपने ढङ्ग के निराले होते थे। उन्हे पद्यमय गद्य कहना उचित होगा। आपके व्याख्यान सुनने मे भी बडा आनन्द आता था। गद्य-पद्य का उचित समावेश कर आप उन्हे बड़ा मनोहर तथा ललित बना दिया करते थे।

मै पडितजी से उनकी छोटी-छोटी त्रुटियो और विशिष्ट गुणो दोनों ही के कारण प्रेम रखता था। उनकी बुद्धिमत्ता तथा सरलता दोनो ही पर मै मुग्ध था। उनके निश्चल देश-प्रेम तथा उनकी अहर्निश निस्वार्थ साहित्य-सेवा के लिये मै उनकी प्रशसा करता था। ६ वर्ष तक पडितजी के ससर्ग का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। इस बीच मे मुझे जो अनुभव हुए उन्ही को मैने संक्षेप मे लिख दिया है। ऐसा करने मे मुझे मजबूर होकर कुछ निजी बाते भी लिखनी पडी है। आशा है कि उनके लिये विज्ञ पाठक मुझे क्षमा करेगे।'

श्रीयुत नन्दकुमार देव शर्म्मा

"लगभग १०-११ वर्ष तक मुझे भी सत्यनारायणजी के मित्र होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनसे मेरा परिचय सन् १९०८ मे प्रिय बन्धु श्रीयुत बदरीनाथजी भट्ट द्वारा हुआ था। उन दिनों मैं "आर्य्यमित्र" का सम्पादक था। भट्टजी आगरा कालेज के विद्यार्थी थे। वे एफ० ए० क्लास मे पढते थे। जून मास-सा गर्मी का विशेष प्रकोप था। प्रोफेसर राममूर्ति कई स्थानो मे अपने अद्भुत खेल दिखलाते हुए आगरे पहुँचे थे। बदरीनाथ जी और मेरी दोनो की इच्छा राममूर्ति के खेल देखने की हुई। भट्टजी

मुझसे कुछ पहले ही खेल देखने पहुँच गये और चार आने का टिकट लिया। मैंने आठ आने का टिकट लिया; पर चार आने और आठ आने के स्थान मे कुछ अन्तर न था। दोनो स्थान एक-से थे। उसपर भट्टजी ने स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त के इस पद्य के आधार पर—

"बढ़े दिल की क्यो कर न अब बेक़रारी।
जो मर जाय यो भैंस लाला तुम्हारी।"

यह कविता पढी--

"बढ़े दिल की क्योकर न अब बेकरारी।
जो यो खर्च होवे चवन्नी हमारी।

भट्टजी की इस कविता पर बड़ी हँसी आई। खेल समाप्त हो जाने पर भट्टजी ने मेरा परिचय सत्यनारायणजी से कराया। साथ ही उन्होने ऊपर वाला वाक्य पढा। इसके पीछे चवन्नी अधिक खर्च हो जाने के विषय में सत्यनारायणजी ने भी कुछ कविता की थी जो पूरी आज तक मेरे देखने मे नहीं आई। उसका एकाध पद्य पण्डित बदरीनाथजी भट्ट ने मुझे सुनाया था और मुझसे कहा था—"पूरी कविता सुनाई जायगी तो आप नाराज हो जॉयगे।" बस उस दिन से ही मेरी सत्यनारायणजी से मित्रता हुई। आगरे मे रहते समय वे प्राय: मुझसे मिला करते थे। "आर्य्यमित्र" छोड़ने के बाद मै बिहार प्रान्त के पुराने अखबार "बिहार-बन्धु" में चला गया। वहाँ से मेरा-सत्यनारायणजी का पत्र-व्यवहार नही हुआ। हाँ, भट्टजी प्राय: अपने पत्र मे कोई न कोई बात सत्यनारायणजी के विषय मे लिखा करते थे और उसमे राममूर्ति के तमाशे में चवन्नी अधिक खर्च हो जाने की चर्चा प्राय: रहती थी।

१९०८ से लेकर सन् १९१० के दिसम्बर तक सत्यनारायणजी से मेरी भेंट नहीं हुई। सन् १९१० में प्रयाग में बहुत भारी प्रदर्शनी हुई और साथ ही कांग्रेस का अधिवेशन भी हुआ। मै बांकीपुर से काग्रेस और

प्रदर्शनी देखने के लिये प्रयाग पहुँचा और उधर सत्यनारायणजी भी आगरे से आये। काग्रेस पण्डाल मे, काग्रेस के अधिवेशन से एक दिन पहले, मैं एक बगाली सज्जन से बाते कर रहा था। बाते समाप्त होने पर उक्त बंगाली सज्जन ने मुझसे मेरा पता माँगा ! मैने अपना एक कार्ड उक्त बंगाली सज्जन को दिया। मेरे पीछे सत्यनारायणजी खड़े हुए थे, पर मुझे इसकी कुछ ख़बर न थी। बङ्गाली सज्जन के चले जाने के पीछे सत्यनारायणजी धीरे से सामने आकर खडे हो गये और झुककर मुझे नमस्कार किया। मेरी स्मरण शक्ति मे एक बडा भारी दोष है। वह यह कि मनुष्य के पहचानने मे सदैव मुझे धोखा देती है जिसके कारण एक दिन मै अपने प्यारे बन्धु बदरीनाथजी तक को नही पहचान सका था। सत्यनारायणजी को भी मै नही पहचान सका था। सत्यनारायणजी ने पहले जो नमस्कार किया वह भी व्यंग्यपूर्ण था पर अब तो उनकी व्यंग्योक्ति का कुछ ठिकाना ही न रहा। उन्होने मजाक करते हुए ब्रज-भाषा-मिश्रित देहाती बोली मे मुझसे कहा—"हम तौ गमार आदमी है, हमारे पास विजिटिङ्ग-फिजिटिङ्ग कार्ड नॉय।" उनके मुख से इस प्रकार के शब्दो की लड़ी निकलती हुई देखकर मै पहचान गया कि ये और कोई नही, सत्यनारायणजी है। हाथ जोड़कर मैने उनसे क्षमा माँगी, पर वहाँ तो बुरा मानने से कुछ सरोकार न था। वहाँ तो 'विजिटिङ्ग कार्ड' और वर्तमान सभ्यता की दिल्लगी थी—और खासी दिल्लगी थी। × × × जब-जब सत्यनारायणजी से मिलना होता था तब-तब साहित्य-समाज, काव्य और देश-सम्बन्धी बाते होती थीं। जब बाते समाप्त हो जाती और बिछुड़ने का समय होता तब वे मुझसे व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहते—"अजी आप एडीटर हैं, हम गमार देहाती आदमी ठहरे। आप इसकी आलोचना अच्छी कर सकते है।"

सत्यनारायणजी की अनेक बाते इन पक्तियों के लिखते समय याद आ रही है और उनकी मधुर मूर्ति आँखो के सामने नाच रही है। क्या कहै ? अधिक कहने-सुनने की अपने मे सामर्थ्य भी नहीं है।"

श्रीयुत गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्यजी

"कविरत्नजी का मेरा साक्षात् सवत् १९६६ मे ब्रज-यात्रा मे हुआ था। मथुरा के स्टेशन पर हम लोगो ने एक-दूसरे को अपनी-अपनी कविता सुनाई थी और इस प्रकार हम लोगों का प्रेम-मिलन हुआ। यद्यपि समय की कमी के कारण विशेष बात-चीत न हो सकी; पर पारस्परिक स्नेह की डोर से मन बँध गये थे इसलिये जब-तब पत्र-व्यवहार होता रहा। जब कविरत्नजी उत्तर रामचरित का अनुवाद करने लगे तब उन्होने मुझे सूचना दी थी कि 'ब्रजभाषा मे उत्तर-रामचरित उदय हो रहा है। देखे आप प्रेमियों तक उसका कैसा प्रकाश पडता है।' मैने हर्ष प्रकट करते हुए लिखा कि सत्य पर भगवान भी रीझते है; फिर मनुष्य क्यो न रीझेगे। इसके पश्चात् छपा हुआ रामचरित अवलोकन किया। जिधर देखें उधर ही उस की सुगन्ध फैलती हुई दीख पड़ी। यहाँ तक कि खड़ीबोली के आचार्य्य मान्यवर द्विवेदीजी ने कविरत्नजी के उत्तर-रामचरित के विषय मे सन्तोष प्रकट करते हुए यह कह दिया कि भाषा रसीली है। इस पर मैने भी कविरत्नजी को बधाई दी। इसके उत्तर में उन्होने लिखा कि भवभूति के उत्तर-रामचरित्र मे मैने कौन सी भलमनसी की ? उल्टी मक्षिका के ठौर मक्षिका कर दी। इस प्रकार विनोद-पूर्ण उत्तर दे उन्होने अपनी निरभिमानता दर्साई थी।

जब आपने सुना कि लखनऊ के पचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति श्रीयुत श्रीधर पाठकजी होगे तब आप बड़े चाव से लखनऊ जाने के लिए तैयार हुए और मुझसे भी कहा—चलोगे ? मैने कहा कि मै तो गोबर्धन मे विचरने जाता हूँ। यदि हरि इच्छा हुई तो पहुँचूँगा। विशेष तो ब्रजविहार की ही इच्छा है। तब आपने कहा—"मैं तो ब्रजभाषा की पुकार लैकें जरूर जाँऊगो। और कछू नाँय तो ब्रजभाषा सुर-सरी की हिलोर मे सबको भिँजाय तो आऊँगो।"

भरतपुर की हिन्दी-साहित्य-समिति के द्वितीय अधिवेशन में नवरत्न श्रीयुत गिरिधर शर्मा, कविरत्नजी और अनेक सज्जन थे। मै भी

सम्मिलित हुआ था। समिति के उत्साही सभासद श्री जगन्नाथदासजी विशारद के उद्योग से एक दिन कवि-सम्मेलन हुआ था, जिसमे पुराने ढङ्ग के उत्तम-उत्तम कवि भी सम्मिलित थे। इस दिन बड़ा ही आनन्द आया। मैने 'सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश' शीर्षक कविता पढी। उस पर गिरिधर शर्मा नवरत्नजी ने कहा कि जबलपुर के सम्मेलन मे यह कविता फिर अवश्य पढी जावे। तत्पश्चात् गिरिधर शर्माजी की "सुकन्या" नाम्नी कविता पढी गई। ये खडीबोली की कविताएँ थी। इनके बाद कविरत्नजी ने "माधव तुमहुँ भये बैसाख" और "माधव आप सदा के कोरे" इन पद्यो को बड़े मधुर स्वर मे पढा। इसका जिक्र करते हुए श्रीयुत अधिकारी जगन्नाथदासजी ने मुझसे कहा था:—

"उस मीटिङ्ग मे अशान्ति थी और काम शुरू नही हुआ था। मैने खड़े होकर कहा—'ब्रजभाषा के कविरत्न और खडीबोली के नवरत्न दोनों यहाँ मौजूद है। आशा है कि दोनो अपनी-अपनी कविताओ का रसास्वादन करावेगे।"

सत्यनारायणजी ने कहा—"नाय-नाय, पडितजी मेरे बड़े है, इनके सामने मै नाय बोलुगो।" फिर गिरिधर शर्माजी के अनुरोध करने पर सत्यनारायणजी ने 'मानुष हौ तो वही रसखान' इत्यादि से कविता-पाठ प्रारम्भ किया। उपस्थित जनता ने उसे बडे प्रेम पूर्वक सुना।" सारी सभा प्रेम मे निमग्न हो गई। उस समय भरतपुर के एक वृद्ध कविने भी अपने कवित्त सुनाये थे। उनके एक कवित्त का पिछला चरण मुझे स्मरण है। वह यह था—

"चन्द्र को चीर चारु राधिका बनायो है।"

वास्तव मे वह कवि बड़े जानकार थे। जितने कवित्त उन्होने कहे थे उन सबके अलङ्कार वे बतलाते गये थे। कविरत्नजी ने खडे होकर कहा था—"मृदुल काव्य के ऐसे-ऐसे प्रोफेसरो से जब तक शिक्षा न ली जायगी तब तक प्रेम-रस बरसाने की गति नूतन कवियों मे कैसे आ सकती है ?"

कविरत्नजी विनोदी बड़े थे। गिरिधरशर्माजी की खडीबोली के कविता-पाठ के पश्चात् अपनी कविता पढने के पूर्व कविरत्नजी ने कहा था—"सज्जनो, जाके मुँह मे रसीली दाखें लग गई है वाद कडुई निबौरी कैसे भावेंगी!" यह विनोद उन्होने खड़ीबोली और ब्रजभाषा के पद्यों के विषय मे किया था।

कविरत्नजी खडीबोली मे भी कविता कर लेते थे; पर आप ब्रजभाषा के पूरे पक्षपाती थे। एक बार मैने उनसे पूछा—"इस समय खड़ीबोली की कविता का प्रवाह इतना क्यो बह रहा है?" आपने उत्तर दिया—"पुरानी कविता मे धड़क्के गड़क्के छडक्के इत्यादि है इस कठिनता के कारण तथा पुरानी ब्रजभाषा मे श्रृङ्गार के कारण"। मैंने कहा—"फिर आप पीछे क्यो लौटते है?" कविरत्नजी ने जवाब दिया—"जिसके लिये विश्वनाथ ब्रजनाथ हुए उस ब्रजभाषा से मुँह मोड़ना परमात्मा को रुठाना है। इस समय ब्रज-भाषा मे पद्य ऐसे होने चाहिए कि पुराना जटिलपना न रहे और भाषा ब्रज की होते हुए भाव नूतन हो।"

इन्दौर के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में जब वे वहाँ गये थे तो मुझसे मिलते ही उन्होने कहा था "लेउ जे "मालती माधव" के प्रूफ़ देखौ, पर पैले मोइ कछू खाइबे को देउ, मैं भूखन मर रह्यौ हौं।" इसी तरह विनोद करते हुए कुछ फल खाकर कविरत्नजी ने कहा—"यह सम्मेलन अच्छी सान कौ दीखि रह्यौ है। जा कौ कारन गाँधीजी कौ यश और यहाँ के कार्य्यकर्तन कौ प्रेम है।"

फिर आपने मुझसे कहा—'उत्तर रामचरित्र और "मालती-माधव" तो आपने देखई लयौ, पर भरतपुर की हिन्दी-साहित्य-समिति के मंत्री श्री अधिकारी जगन्नाथदास के पास मेरी "हृदय-तरग" है। सो उनसे कहिके वाइ छपाइ डारियो; क्योंकि वामे मेरे भावना-भरे पद्य है।"

यह सुनकर मैने कहा—"आप तो मेरे ऊपर ऐसा भार डाल रहे हैं मानों आप कही जा रहे हो।" कविरत्नजी की आँखों में आँसू आ गये

और कहने लगे—"मोइ तो ब्रज में ही छोड़िकें अन्त कहूँ अच्छौ नाय लगैगौ। **मैं तो ब्रज में ही आऊँगो क्योंकि मेरी ब्रज की ही वासना है।"**

मेरी उनकी ये बाते श्री सेवाप्रसाद वकील के बँगले के बगीचे मे हुई थी। इतने मे एक घोड़ा गाडी आई जिसमे बैठकर हम दोनो प्रदर्शिनी देखने के लिये चले गये।

जब सत्यनारायणजी ने सम्मेलन के अवसर पर अपनी कविता पढी तो उसके पूर्व रसखान के कवित्त पढ़े थे।

"जो खग हो तो बसेरौ करो वहि कालिन्दी कूल कदम्ब के डारन।"

कविता-पाठ करने के बाद आप मेरे पास आकर मेरी आधी कुर्सी पर बैठ गये। मैने कहा—'आपने रसखान के कवित्त क्यों पढ़े, उनका यहाँ क्या अवसर था?" कविरत्नजीने कहा—"मैने सम्मेलन के श्राताओ के सामने ये कवित्त इसलिये कहे हैं कि जिससे ये सब साक्षी हो कि चलती बार अवश्य, भगवान से, सत्य ने, चाहे किसी रूप मे हो, ब्रजवास ही माँगा था"। मैने कहा कि बस रहने दीजिये, मृत्यु का विनोद मुझे नही सुहाता।" आपने कहा—"हरि इच्छा।"

इन बातो से अब मुझे निश्चय हो रहा है कि जैसे कविरत्नजी विद्वान्, सरल स्वभाव और अपने देश-वेष-भाव के दृढ भक्त थे वैसे भगवान के भी प्रेमी भक्त थे जो अपनी मृत्यु को जानकर सावधान हो गये थे।"

मेरी तीर्थ-यात्रा

३० अगस्त १९२४

प्रात· काल का सुहावना समय था। सवा छै बजे थे। बादल घिरे हुए थे। कभी-कभी दो-चार बूँदे भी पड़ जाती थी। मै ताँगे मे बैठा हुआ धाँधूपुर की ओर चला जा रहा था। अकेला ही था।

सत्यनारायण की मृत्यु के बाद यह मेरी चतुर्थ धाँधूपुर-यात्रा थी। सत्यनारायण के कई मित्रो से मैने धाँधूपुर चलने की प्रार्थना की थी पर उनके हृदय मे वहाँ चलने के लिये कोई विशेष उत्साह या प्रेम नही पाया गया था। सत्यनारायणजी का एक Enlargement बड़ा चित्र मेरे साथ था और उनकी यह जीवनी तथा जीवन-चरित्र का मसाला भी मेरे साथ ही था। चित्र को मै बड़ी सावधानी से ले जा रहा था। ताँगेवाले से मैने कह दिया था—"देखो भाई, ताँगा धीरे-धीरे चलाना, कहीं मेरी तसवीर टूट न जावे।" नगर के कोलाहल से दूर क़िले के पास होता हुआ मेरा ताँगा चला जा रहा था और मै सोच रहा था—"सत्यनारायणजी के कोई मित्र साथ क्यों नहीं आये? उसी समय मुझे कवि-सम्राट रवीन्द्रनाथ का एक पद्य याद आ गया—

> "एकला चलौ, एकला चलौ, एकला चलौरे।
> यदि तोर डाक सुने केउना आसे,
> तवे एकला चलौरे॥"*

मै सोच रहा था—यह वही सड़क है जिसपर कई वर्ष पूर्व अपनी कविता पढते हुए धुन में मस्त सत्यनारायण प्राय: दीख पड़ते थे। हाँ, कभी

---

* अर्थात्—यदि तुम्हारी पुकार सुनकर कोई न आवे तो अकेले ही चलो, अकेले ही चलो, अकेले ही चलो।

यही आकाश उस ब्रज-कोकिल के मधुर स्वर से गुंजरित होता था। आगे मुझे वृक्षो के निकट एक प्याऊ दीख पडी। ग्रीष्म-ऋतु मे धाँधूपुर से आते हुए सत्यनारायणजी यहाँ कभी-कभी पानी पिया करते थे। क्या इसी को ध्यान मे रखते हुए उन्होने ग्रीष्म-गरिमा में लिखा था—

ताप बस ह्वै अत्यन्त अधीर कहूँ कुलिलत नहि बछरा गाय।
द्रुमन तर पी प्याऊ कौ नीर, फिरत जिय जरनि तऊ ना जाय॥

सड़क के दोनो ओर नीम वृक्ष थे जो सत्यनारायण के साथ ही साथ बड़े हुए थे। मै कल्पना कर रहा था कि कही सत्यनारायण इन्हीं के पास से निकलकर यह कहने लगे—"क्यों भैया, मेरी ही कुटी पै चलतौ का? चलौ।"

मार्ग मे कई बार मेरा हृदय भर आया और आखे डबडबा आई। लगभग एक घण्टे मे धाँधूपुर पहुँचा।

सत्यनारायण का चित्र और उनकी जीवनी का सामान उन्ही के मन्दिर मे जाकर रक्खा। उस समय मै सोच रहा था—अहा! क्या ही अच्छा होता यदि मै कभी सत्यनारायणजी के सामने ही धाँधूपुर आता!

ताँगा धाँधूपुर पहुँचा। गाँववालो को मैंने सत्यनारायणजी के मन्दिर पर बुलाया। गेदालाल जाट, राधाकृष्ण, रामहेत, तुलाराम तथा अतरसिह इत्यादि अनेक आदमी वही आये। जब मैंने सत्यनारायण के चित्र को वहाँ खोला तो गाँववाले बोले—"बस महाराज, जामे तो जान डारिबे की देर हैं। जे तौ मानो बोले इ देतें!" पर सत्यनारायण के बालसखा रामहेत की आँखों में आँसू थे! उन्हे देखकर मैंने कहा—"बस मेरा परिश्रम सफल है। सत्यनारायण के किसी मित्र का उनकी पवित्र स्मृति मे दो आँसू बहाना, इससे अधिक मुझे चाहिए ही क्या?"

बड़ी देर तक बातचीत हुई। जब सत्यनारायण के प्रेमी साथी उनके गुणो का वर्णन अपनी मधुर ग्रामीण भाषा मे कर रहे थे, कई बार उस करुणामय दृश्य से मेरा हृदय द्रवित होगया। लेकिन जब गेदालाल जाट ने

बड़े अभिमान से कहा—"महाराज, नाम तौ सत्यनारायन कौई भयौ। वैसे काव्य तौ हमने मिलि-मिलि केई करी ही। आधी वाकी है, आधी मेरी।" मुझे हँसी आगई और मैने कहा—"क्या आप भी कविता करते थे ?" वह जाट बोला—"अरे महाराज, हम का करते, सरसुती करती ! सत्यनारायन ने बाइस जगह अपनी किताबन मे मेरे नामकी छाप रक्खी है।"

बात यह थी कि सत्यनारायणजी अपनी कविता प्राय गेदालाल को सुनाया करते थे। कभी किसी ग्रामीण शब्द का अर्थ भी पूछ लेते थे। एक बार 'ढपान' शब्द का अर्थ उन्होने पूँछा था। बस इसीसे गेदालालजी भी अपने को "कविरत्न" समझने लगे है ! हाँ, यह ठाकुर साहब की नम्रता है कि वे इस कीर्ति को स्वयं न लेकर अपनी 'सरसुती' को अर्पित करते है ? अस्तु, मैंने कहा—"अब मुझे—सत्यनारायणजी के स्थानो को दिखलाइए।" एक आदमी मेरे साथ हो लिया। उसने एक कोठरी को दिखलाकर कहा—"यह सत्यनारायण की कोठरी है। इसी मे माता के साथ वे रहते थे।" मैने सोचा क्या इसी मे बैठकर, माता की मृत्यु के बाद, उन्होंने वह पद्य बनाया था—

"जो मै जानतु ऐसी माता सेवा करत बनाई,
हाय हाय कहा करु मात तुव टहल नही कर पाई !"

मन्दिर की छतपर जाकर मैने वह अटारी देखी जहाँ बैठकर सत्यनारायण काग़ज-पेंसिल लिये हुए कविता किया करते थे। सामने अनेक वृक्षो के सुन्दर-सुन्दर पत्ते दीख पड़ते थे। यही बैठकर सत्यनारायण ने लिखा था—

"सीतल प्रभात बात खात हरखात गात
धोये-धोये पातनु की बात ही निराली है !"

कोठरी के सामने की छत पर पत्थर की दो पटियाँ बिछी हुई थी। हरियाली ही हरियाली दीख पड़ती थी ! सामने प्रेमपूर्ण कविता का साक्षात्स्वरूप—ताजबीबी का रोजा—दिखाई देता था। कवि की प्रतिभा

के विकास के लिये भला इससे अधिक उपयुक्त स्थान और कहाँ मिल सकता था ?

क्या इसी छत पर से वह ध्वनि कभी निकली थी ?——

"भयो क्यों अनचाहत को संग !"

फिर हम उस कमरे मे गये जहाँ सत्यनारायण ने अपनी अन्तिम स्वाँस ली थी। कमरा टूटा-फूटा और गिरा हुआ था। राधाकृष्ण ने कहा—"मरते समय सावित्री सामने खड़ी थी । सत्यनारायण ने इशारे से उसे सामने से अलग करा दिया !"

श्रीमती सावित्रीदेवी ने अपने १६ । १२ । १८ के पत्र मे लिखा था——"मैंने कई आवाजे दी, सब निष्फल । जोर से घबराकर मैंने अपना हाथ सिरहाने की तरफ पट्टी पर देमारा । एकदम चौककर मेरी ओर देखा और सदा के लिए हतभागिनी से विदा लेली !"

६ वर्ष बाद, उसी स्थान पर——स्थान नही, ब्रजभाषा के अन्तिम कवि के तीर्थ स्थान पर——खडा होकर मै सोचने लगा——"सत्यनारायण की उस अन्तिम दृष्टि मे क्या भाव भरे थे ?"

प्रिय पाठक, क्या आप इस प्रश्न का उत्तर दे सकते है ? आप कल्पना कीजिये और मुझे विदाई दीजिए ।

श्रीगांधी-स्तव

(१)

जय जय सदगुन सदन अखिल भारत के प्यारे।
जय जगमधि अनवधि कीरति कल विमल उज्यारे ॥
जयति भुवन-विख्यात सहन-प्रतिरोध सुमूरति।
सज्जन समभ्रातृत्व शान्ति की सुखमय सूरति ॥
जय कर्मवीर त्यागी परम आतम-त्यागि-विकास-कर।
जय जस-सुगंधि-बितरन करन गाधी मोहनदास वर ॥

(२)

जय परकाज निबाहन कृतबन्दी गृह पावन।
किन्तु मुदित मन वही भाव मजुल मनभावन।
मातृभक्त जातीय भाव-रक्षण के नेमी।
हिन्दी हिन्दू हिन्द देश के साँचे नेमी।
निज रिपुहौ को अपराध नित छमत न कछु शंका धरत।
नव नवनीत समान अस मृदुल भाव जग-हिय हरत ॥

(३)

जयति तनय अरु दार सकल परिवार मोह तजि।
एकहि व्रत पावन साधारन ताहि रहे भजि ॥
जय स्वकार्य तत्परतारत अरु सहनशील अति।
उदाहरन करतव्य-परायनता के शुचिमति ॥

जय देशभक्ति-आदर्श प्रिय शुद्ध चरित अनुपम अमल।
जय जय जातीय तड़ाग के अभिनव अति कोमल कमल॥

(४)

जय बिपत्ति मे धैर्य्यं धरन अविकल अविचल मन।
दृढ ब्रत शुच निष्कपट दीन दुखियन आस्वासन॥
जय निस्स्वारथ दिव्य जोति पावन उज्जलतर।
परमारथ प्रिय प्रेम-बेलि अलबेलि मनोहर॥
तुम से बस तुमही लसत और कहा कहि चित भरैं।
सिवराज प्रताप ऽरु मेजिनी किन-किन सो तुलना करैं॥

(५)

एक ओर अन्याय, स्वार्थ की चिन्ता बाढी।
अत्याचार अपार घृणित निर्दयता ठाढी॥
दूसरि ओर मनुष्यत्व की मूरति निर्मल,
कोमल अति कमनीय किन्तु प्रतिपल प्रण अविचल॥
यहि देवासुर-सग्राम मे विदित जगत की नीति है।
बस किंकर्तव्य विमूढ बहु भूलि परस्पर प्रीति है॥

(६)

अपुहिं सारथी बने कमलदल आयत लोचन।
अरजुन सो बतरात विहँसि त्रयताप-बिमोचन।
धीरज सब बिधि देत यही पुनि-पुनि समझावत।
दैन्यपलायन एकहु ना मोहि रन मे भावत॥
इक निमितमात्र है तू अहे क्यों निज चित विस्मय धरै।
गोपालकृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करै॥

(७)

यहि अवसर जो दियो आत्मबल को तुम परिचय ।
लची निरंकुश शक्ति भई मुदमई सत्य जय ।।
जननी जन्मभूमि भाषा यह आज यथारथ ।
पूत सपूत आप जैसो लहि परम कृतारथ ।।
लखि मोहन-मुखचंद तव याके हृदय उमंग है ।
त्रयतापहरत मन मुद भरत लहरत भाव तरंग है ।।

(८)

निज कोमल बाणी सो हिन्दू जाति जगावौ ।
नवजीवन यहि नीरस मानस मे उमगावौ ।।
अब या हिन्दी को सिर निर्भय उच्च उठावौ ।
सुभग सुमन या के पद पदमनु चारु चढावौ ।।
यह नम्र निवेदन आप सो जिनको प्रेम अनन्य है ।
है न्यौछावर तव चरनु पै हम जीवनधन धन्य है ।।

सत्यनारायण